।। राधास्वामी दयाल की दया, राधास्वामी सहाय ।।

राधास्वामी गाय कर जन्म सुफल कर ले ।
यही नाम निज नाम है मन अपने घर ले ।।

प्रेमपत्र राधास्वामी

पहला भाग

जिसको कि

परम संत सतगुरु हुज़ूर महाराज ने
ज़बान-ए-मुबारक से फ़र्माया

राधास्वामी ट्रस्ट
स्वामी बाग़, आगरा-२८२ ००५

प्रकाशक :

राधास्वामी ट्रस्ट

स्वामीबाग़, आगरा-२८२ ००५

पहली बार	सन्	१८९३	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
दूसरी बार	सन्	१९१६	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
तीसरी बार	सन्	१९३६	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
चौथी बार	सन्	१९५२	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
पाँचवीं बार	सन्	१९६२	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
छटी बार	सन्	१९७३	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
सातवीं बार	सन्	१९८०	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
आठवीं बार	सन्	१९८५	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
नवीं बार	सन्	१९९१	ईसवी	१०००	प्रतियाँ
दसवीं बार	सन्	१९९२	ईसवी	२०००	प्रतियाँ

सर्वाधिकार प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

दसवीं बार २००० प्रतियाँ] सन् १९९२ ई० [मूल्य : अजिल्द २०.०० सजिल्द ३[illegible].५०

30/50

मुद्रक
राष्ट्रीय आर्ट प्रिंटर्स
मोतीलाल नेहरू रोड
आगरा-३

प्रेमपत्र पहला भाग जो कि पहली मई १८६३ ई० से ३० अप्रेल सन् १८६४ ई० तक समाप्त हुआ। उसके बचनों का

सूची-पत्र

नम्बर बचन	सुरखी यानी खुलासा मज़मून बचन	नम्बर पृष्ठ
१	शरण की महिमा	९
२	भक्ति-मार्ग की महिमा	१३
३	परमार्थ में जो-जो विघ्न-कर्ता हैं, उनका हाल	१७
४	परमार्थ की कमाई में खास तीन विघ्नों का हाल	२०
५	अभ्यास में विघ्न और उनके दूर करने का यत्न	२७
६	उपदेश सतगुरु और संतभक्ति का	३५
७	चितावनी	३६
८	भेद मत का	४१
९	उपदेश शब्द के अभ्यास का	४९
१०	सतसंगियों की रहनी का वर्णन	५७
११	संत सतगुरु की महिमा और सुरत-शब्द अभ्यास की बड़ाई	६३
१२	भेद नाम का	६९
१३	सतसंग की महिमा	७५
१४	भक्ति की महिमा	८३
१५	सच्ची शरण और सच्ची करनी के लिए किन बातों का पहले निर्णय करना चाहिए	८८
१६	वर्णन दर्जों का जो संतों ने रचना में मुक़र्रर किये हैं और बड़ाई संत मत की	९७
१७	मालिक के चरणों में भय, भाव और अदब	१०४
१८	जो लोग कि सिवाय संत मत के अभ्यास के, और और काम परमार्थी कर रहे हैं, उनको क्या फ़ायदा होगा	१०९

१९ संत अथवा राधास्वामी मत में जो जो अभ्यास कि जारी हैं उनकी कार्रवाई अन्तर में ऊँचे घाट पर होती है, और बाहर सिवाय सतसंग और सेवा और आरती के, कोई कार्रवाई नहीं होती १३२

२० नेत्र के स्थान से सुरत को अन्तर में चढ़ाना, यही सच्चा मार्ग उद्धार का है १४५

२१ सब जीवों को, अभ्यास सुरत-शब्द का, वास्ते कल्याण और उद्धार अपने जीव के, करना चाहिए १५३

२२ पुरुषार्थ और प्रारब्ध यानी मौज अथवा तदबीर और तक़दीर १५९

२३ परमार्थ में गुरु की ज़रूरत, और उनकी क़िस्में और दर्जे और भेद १६५

२४ परमार्थी कार्रवाई और अभ्यास का उतार और चढ़ाव, पिछले वक़्तों से अब तक १८८

२५ अभ्यास में तरक़्क़ी की परख और पहिचान, और वर्णन उन संयमों का जिनसे अभ्यास दुरुस्त बने १९९

२६ परमार्थ की ज़रूरत हर एक जीव को, और संतों के उपदेश का सच्चा और पूरा फायदा २०७

२७ ज़वाब थोड़े से सवालों के, जो एक सतसंगी ने भेजे ... २१४

२८ रचना का वर्णन कि आदि में कैसे हुई २२२

२९ राधास्वामी मत क्या है ? और उसके अभ्यास, सुरत-शब्द मार्ग का फल क्या है ? २२९

३० सुरत को भी अहार और रस देना चाहिए, जैसे कि तन, मन और इन्द्रियों को दिया जाता है २३४

३१ सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से मन और इन्द्रियों का क़ाबू में आना २३८

३२ मन का प्रबल (ज़बर) झुकाव संसार की तरफ़, और उसकी तरंगों को रोकने की युक्ति २४२

३३ सच्चे और पूरे गुरु की पहिचान जल्दी नहीं हो सकती। इस वास्ते पहिले उनके साथ साध का बर्ताव करे और सतसंग और अभ्यास करे जावे, तब कोई दिन में कुछ-कुछ परख आती जावेगी २५०
३४ जीवों पर सच्चे मालिक की दया का हाल, और वर्णन उनकी ग़फ़लत और बे-परवाही का, उसकी तरफ़ से, और मुनासिब और लाज़िम होना हर एक जीव पर उस दया की परख करके, उससे संत सतगुरु के बचन के मुवाफ़िक़ कमाई करके, अपने सच्चे उद्धार का फ़ायदा हासिल करना २५७
३५ वर्णन हाल सच्चे परमार्थी जीवों का, और दर्जे उनकी प्रीति और और प्रतीत के, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और सच्चे गुरू के चरणों में, और यह कि कैसे यह प्रीति और प्रतीत दिन-दिन बढ़ती जावे २७२
३६ धर्म और कर्म का बयान २८८
३७ मन और इच्छा का बयान २९२
३८ मन की भूल, भ्रम और ग़फ़लत और बे-परवाही ३०१
३९ मन और इन्द्रियों की चाल और उनकी सम्हाल ३११
४० स्वार्थ और परमार्थ, यानी दुनिया और दीन के कामों का बयान ३१६
४१ मन और सुरत का खिलना और ख़ुश होना और कभी भिचना और दुखी होना अभ्यास की हालत में ३२१
४२ करनी और शरण का वर्णन ३३९
४३ अभ्यास के ख़ास विघ्नों का वर्णन और उनके दूर करने और अभ्यास की तरक़्क़ी की युक्ति ३४४
४४ राधास्वामी मत की सहज युक्ति का सहज अभ्यास ... ३५७
४५ सवालात एक सतसंगी की तरफ़ से, और उनके जवाबात ... ३६४
४६ जो सवाल कि सफ़ा २८० पर लिखे हैं उनके जवाब ख़ुलासा तौर पर ३६६

४७ सवाल-जवाब ३७७
४८ सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से जान-पहिचान और मुहब्बत करना ३८२
४९ सच्ची और पक्की प्रतीत और पहिचान सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की ३८७
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--गुरु अचरज खेल दिखाया ... ३९९
५० राधास्वामी अथवा संत मत की निंदा का सबब और निंदकों का हाल ४०१
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--अंत हुआ जग माहिं ... ४३०
अर्थ शब्द सार बचन छंद वंद--गुरु उलटी बात बताई ... ४३३
अर्थ शब्द सार बचन छंद बंद--सुनरी सखी इक मर्म जनाऊँ ... ४३६
५१ राधास्वामी मत का अभ्यास और उसका फल ... ४३८
५२ राधास्वामी मत के अभ्यासियों को, दुनियादारों और दूसरे मतों के लोगों से, और खास कर वाचक ज्ञानियों और सूफ़ियों से, किस तरह बर्ताव करना चाहिए ... ४४५

———

राधास्वामी मौज से प्रेम पत्र जारी ।
दृढ़ विश्वास होय चरण में और प्रीति गाढ़ी ।।

सुमिरन ध्यान और भजन में नित नया आनंद पाय ।
सतसंगी सब उमंग उमंग राधास्वामी महिमा गाय ।।

राधास्वामी दयाल की दया, राधास्वामी सहाय

प्रेमपत्र राधास्वामी

पहला भाग

बचन

शरण की महिमा

१—राधास्वामी दयाल को कुल मालिक और सर्व-समर्थ और कुल दयाल और सर्व-प्रेरक समझ कर, उनके चरणों की शरण इस तौर पर लेवे कि जो काम करे उसका फल मौज पर रक्खे। जैसी मौज हो, उसमें राज़ी हो, और जिस क़दर बन सके, भजन, सुमिरन, और ध्यान और पोथी का पाठ और सेवा और सतसंग करता रहे, और भरोसा दृढ़ करके दया का रक्खे। इतने में कुल जीवों का, जो इस तौर पर बर्ताव करे, गुज़ारा मुमकिन है। जो करतूत करे, अगर उसका फल मौज पर छोड़ दे, तो बंधन नहीं होगा, कर्म करता हुआ निःकर्म हो जावेगा। और अंतर में अभ्यास करके जब ऐसी शरण दृढ़ करी है तो दया का आसरा लेकर जो कुछ पिछले और संचित कर्म हैं, आहिस्ता-आहिस्ता कट जावेंगे और मौज के आसरे पर जो कर्म करेगा तो क्रियावान कर्म नहीं लगेंगे और प्रारब्ध कर्मों का भी ज़ोर बहुत कम हो जावेगा। इस तरह पर, सहज गुज़ारा और उद्धार मुमकिन है। इस रीति से तीनों क़िस्मों के

कर्म अपने जीते-जी कटते हुए देख सकता है। और राधास्वामी दयाल के चरणों का निशाना बाँध कर, और इरादा ऐसा पक्का करके, कि वहीं पहुंच कर ठहरूं और कहीं न ठहरूं, अभ्यास करे और दिन-दिन चरणों में प्रीति-प्रतीत बढ़ावे और संसार की तरफ़ से चित्त को (ज़रूरत के मुआफ़िक़ तवज्जह रख कर) हटाता जावे, तो एक या दो जन्म में धुर मक़ाम पर पहुंचना मुमकिन है, और जो कुछ कसर रही तो तीन जन्मों में। मगर जो जन्म इसको, इसके बाद मिलेगा, वह हाल के जन्म से बेतहर होगा, यानी कमाई ज़्यादा बनेगी और दुनिया का आराम भी ज़्यादा मिलेगा, और सतगुरु से ज़रूर मिलेगा। और उनका सतसंग एक-दो रोज़ करने में ही इस जन्म की कमाई खुल जावेगी। और जितने दिन कि चोला छोड़ने और देह धरने में गुज़रेंगे, तब तक ऊंचे स्थान पर रहेगा और सतगुरु के दर्शन और बचन मिलेंगे। और फिर दूसरे जन्म में भी दर्शन सतगुरु के मिलेंगे और सतसंग भी मिलेगा और जिस क़दर कि कमाई पहले जन्म में कर चुका है, उसके आगे से कमाई करना शुरू करेगा। इस तरह पर जन्म धरने में किसी तरह का हर्ज और नुक़सान नहीं है बल्कि कि ख़ुशी की बात है कि काम पूरा होवे और धुर मक़ाम पर बासा पावे। यह शरण जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ, दर्जा अव्वल की शरण है। हर एक शख़्स को चाहिए कि इसके मुआफ़िक़ शरण लेवे और अभ्यास करे। जिस दर्जे की शरण होगी, उसी क़दर फ़ायदा, जीते-जी और अन्त समय पर, मालूम होगा। शरण

में दर्जे बहुत हैं, मगर अपनी परख कि किस दर्जे की शरण हासिल है, हर जीव आप कर सकता है। यानी जिस क़दर मौज पर राज़ी हो और जिस क़दर दया का भरोसा करके अभ्यास में लगे, उसको मालूम करके परख हो सकती है। पूरी शरण वाले का एक ही जन्म में काम बनेगा और बाक़ी जिस क़दर शरण कम होगी उसी क़दर देर होगी ॥

२–जैसे कि सुरत हर एक देह में बैठ कर कुल देह की कार्रवाई अपनी धारों की ताक़त से करती है, और कुल देह में प्रेरक वही है, इसी तरह से राधास्वामी दयाल कुल सुरतों के ताक़त देने वाले और प्रेरक हैं और हर एक के घट में अंग-संग मौजूद हैं। इस से उनका सर्व-समर्थ होना साबित है। फिर इस तरह प्रतीत करने में कोई दिक़्क़त मालूम नहीं होती है। लेकिन मन का क़ायदा है कि यह अपनी चतुराई और तदबीर से बाज़ नहीं आता, और पूरा-पूरा भरोसा राधास्वामी दयाल की दया का नहीं करता। वजह इसकी यह है कि जिस काम में या जिस चीज़ में इसका बंधन विशेष है, उस काम के करने में पूरा पूरा भरोसा दया का न लाकर अपना यत्न और तदबीर ज़रूर करता है। और जो इसकी मर्ज़ी के मुआफ़िक़ काम न होवे तो रूखा-फ़ीका या दुखी होकर ऐसा ख़्याल करता है कि अगर फ़लां तदबीर करता तो काम दुरुस्त होता, या फ़लाँ बात के मेरे करने में कसर रह गई, और मौज को भूल जाता है और उसके साथ मुआफ़िक़त नहीं करता।

३—जो ऐसे मन हैं, वे पूरे तौर पर शरण का भरोसा

नहीं रखते। वे चाहते हैं कि राधास्वामी दयाल उनकी ख़्वाहिश के मुआफ़िक़ हर एक काम को पूरा करे। और जो ऐसा नहीं होता तो मौज का आसरा छोड़ कर अपनी तदबीर में, जहाँ तक बनता है, कोशिश करते हैं। ऐसी शरण कसर वाली है। मगर जो इरादा पूरी शरण लेने का सच्चा और पक्का है और मेहनत और अभ्यास करता रहेगा तो एक दिन पूरी शरण हासिल हो जायेगी। ऐसी शरण दृढ़ करने के वास्ते किसी क़दर वैराग संसार के पदार्थ और भोगों से ज़रूर है। ज़रूरत के मुवाफ़िक़ चाह उठानी चाहिए और फ़िज़ूल और बे-ज़रूरत चाह, जिस क़दर हो सके, रोकनी और हटानी चाहिए। और मालूम होवे कि यत्न करना मना नहीं है, पर मौज के आसरे रहना चाहिए॥

४—हाल के कर्मों के फल की प्राप्ति में पिछले कर्मों का भी असर संग रहता है। जो पिछले कर्म दुरुस्त हैं तो हाल की करतूत दुरुस्त पड़ेगी, नहीं तो उसके फल के मिलने में कमी और बेशी ज़रूर होगी। हरचन्द कि राधास्वामी दयाल हर वक़्त मददगार हैं, लेकिन हर काम जीव की मर्ज़ी के मुआफ़िक़ नहीं हो सकता और जो पिछले कर्म नाक़िस यानी दुखदाई हैं तो उनका फल भी ज़रूर थोड़ा या बहुत भोगना पड़ेगा। इसमें घबराना नहीं चाहिए। जब तक कि संसार की आशा है, तब तक कर्मों का असर रहा आवेगा। जब संसार से निराश हो जावेगा तो कर्मों का बंधन नहीं रहेगा॥

सवाल १—जो सिर्फ़ परमार्थ की चाह रखता है और

संसार की कोई आस नहीं है, तो उसको भी पिछले कर्मों का भोग भोगना होगा या क्या ?

जवाब १–जिसने कि सच्ची और पूरी शरण ली है और संसार से सच्चा निराश हो गया है, उसको जो कुछ आराम या तक़लीफ़ आवे, वह राधास्वामी दयाल की मौज से होगी, और उसमें उसका परमार्थी फ़ायदा यानी सफ़ाई मन और सूरत की, और चढ़ाई ऊँचे देश की तरफ़ मंज़ूर होगी ॥

सवाल २—जब कोई शरण में आ गया तो क्या फिर भी काल के साथ डोरी लगी रहेगी ?

जवाब २—जिस ने सच्ची और पूरी शरण ली है, तो डोरी काल के साथ नहीं रहेगी। मगर क़र्ज़ा जो पिछले कर्मों का है, जरूर दिलवाया जावेगा, लेकिन मुलायमियत के साथ, यानी मन भर का सेर भर। और ऐसा जीव आइन्दा को यानी हाल के जन्म में काल से व्यवहार नहीं बढ़ावेगा ॥ और काल के साथ व्यवहार से मतलब है कि संसार के भोगों की आसा मन में रख कर उनकी प्राप्ति के लिए यत्न करना और मौज का आसरा छोड़ देना ॥

बचन दूसरा

भक्ति-मार्ग की महिमा

१–संतों ने भक्ति-मार्ग की महिमा विशेष की है और यह कहा है कि भक्ति-मार्ग, दयाल मत और गुरु मत है, और जिस मत में प्रेम और भक्ति नहीं है, वह मन-मत है। कोई २

मत ऐसे भी हैं कि जहाँ कुछ भक्ति और प्रेम है, मगर वे मूर्तों और जड़ निशानों में भूले हुए हैं, और सच्चे मालिक का पता और खोज बिल्कुल नहीं है। संतों ने सिर्फ़ उस भक्ति की महिमा की है कि जो सच्चे मालिक के चरणों में होवे और अन्तर में अभ्यास करके भगवन्त से मिलने का इरादा होवे। ऐसी भक्ति सतगुरु द्वारा हासिल होगी क्योंकि कुल मालिक का भेद देने वाले सन्त सतगुरु ही हैं ॥

२—और जानना चाहिये कि कुल्ल मालिक राधास्वामी प्रेम स्वरूप हैं और सत्तपुरुष भी प्रेम स्वरूप हैं और आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म और पारब्रह्म भी प्रेम रूप और सतगुरु भी प्रेम स्वरूप और जीव भी प्रेम स्वरूप है। बग़ैर प्रेम के, सच्चे मालिक से मिलना नहीं हो सकता। आपस में इतना फ़र्क़ है कि राधास्वामी दयाल कुल्ल मालिक प्रेम का सोत और पोत है यानी खज़ाना और भंडार, और सत्तपुरुष प्रेम का सिंध है। और ब्रह्म और पारब्रह्म, प्रेम की लहर है, और जीव, प्रेम की बूँद है। जीव के साथ इच्छा लगी हुई है और ब्रह्म के साथ माया लगी हुई है। सिंध यानी सत्तनाम पद में माया बहुत कम है, मगर सिन्ध के साथ सिन्ध-रूप हो रही है। पर सोत-पोत में, यानी राधास्वामी पद में, माया का नाम और निशान बिल्कुल नहीं है। जो कोई सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति चाहे, उसको प्रेम-अंग लेकर, सच्चे मालिक का पता लगाना चाहिये। और सच्चे मालिक का पता सतगुरु यानी भेदी गुरू से मिलकर मालूम होगा। और जब सतगुरु मिल जावें और सच्चे मालिक का पता और भेद मालूम हो जावे, तो उसको चाहिए कि सुरत-शब्द

योग का अभ्यास करके अन्तर में चढ़ाई करे, यानी सुरत को शब्द में लगावे, जिस की धुन की धार सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के देश से आती है और घट २ में मौजूद है। उसी धार पर सवार होकर, सिन्ध में और सोत में पहुँचे, और जब वहाँ पहुँच जावे, तो उसी का नाम सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार है ॥

३—मालूम हो कि जो शब्द की धार है, वही नूर और ज्ञान की धार हैं और वही प्रेम की धार है, और सुरत उसी धार के साथ उतर कर पिंड के नाके पर बैठी हुई है। इसी मक़ाम से उसको अव्वल समेट कर और फिर चढ़ाई कर के, निज घर में पहुँचना होगा, और यही संतों का मत है। ऐसे उद्धार के हासिल करने के वास्ते या तो ऐसे सतगुरु का मिलना ज़रूर है जो धुर मक़ाम तक पहुँचे हुए हों, या ऐसे साध का, जो सतगुरु से मिलकर, धुर मक़ाम के पहुँचने की साधना कर रहे हों। इन दोनों में से जो भी मिले, उस से युक्ति दरियाफ़्त कर के, और उसके ब-मूजिब अभ्यास कर के, घर पहुँचना मुमकिन है। और प्रीति के साथ उनका बाहर से सतसंग करना चाहिए ॥

४—संतों के घर का भेद किसी और मत में नहीं है। और न सिवाय सतगुरु के, या जिस को वे बतावें, दूसरा उस से वाक़िफ़ है। और जितने मत दुनिया में हैं, उन सब का सिद्धांत संतों के देश से बहुत नीचे है, यानी ब्रह्म और पारब्रह्म पद के आगे नहीं गया। ये दोनों स्थान और बाक़ी नीचे के मक़ामात मिस्ल सहसदल कँवल और छठा

चक्र वग़ैरा, माया के घेर में हैं। और जो कोई अभ्यास करके इन मक़ामों तक पहुँच कर ठहर गये, या ठहर जावेंगे, वे माया की हद के पार नहीं जावेंगे, और इस वास्ते जन्म-मरण से भी नहीं छूटेंगे, क्योंकि माया के ग़िलाफ़, बारीक या स्थूल, सुरत पर चढ़े हुए हैं और वही ग़िलाफ़ सुरत की देह हो रहे हैं। इन ग़िलाफ़ों से छुटकारा, बग़ैर माया के देश के पार जाने के, किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। ये ग़िलाफ़ हमेशा बदलते रहते हैं। इसी बदलने का नाम जन्म-मरण है। जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, और जिनका सिद्धांत कि माया की हद में है, ये सब मन के मत कहलाते हैं, क्योंकि यह देश मन और माया का है, ब्रह्मांडी मन और ब्रह्मांडी माया का या पिंड़ी मन या पिंडी माया का। जिस मत में भक्ति सच्चे मालिक की नहीं है, वह छिलके के मुआफ़िक़ है यानी बीज से ख़ाली है। उसमें सच्चा उद्धार किसी सूरत में हासिल नहीं होगा। इस वास्ते संत मत में सतगुरु और शब्द की भक्ति पर ज़्यादा ज़ोर दिया गया है। और जो कि धुर मक़ाम तक पहुँचे हैं, उनका ही नाम सतगुरु है और शब्द उनका निज रूप है, गोया शब्द ने ही देह धरी है। इस वास्ते यहां भक्ति सच्ची है। जब ऐसी भक्ति अंतर और बाहर करके सुरत, सत्त देश में पहुँचेगी, तब कारज इसका पूरा होगा। बाहरमुख भक्ति या और किसी मक़ाम तक की अन्तरमुख भक्ति, जो माया के घेर में है, करने से, सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल नहीं होगी। इस वास्ते इस क़िस्म की भक्ति को संतों ने पसन्द नहीं किया है ॥

५—और मालूम होवे कि सिवाय शब्द के अभ्यास के, अन्तर में, ब्रह्मांड की हद्द के परे चढ़ाई मुमकिन नहीं है। जिस मत में निशाना संतों के देश का नहीं है और न चढ़ाई है, तो जो शब्द का अभ्यास भी करते होवें तो भी उससे सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार हासिल नहीं होगा। जो कोई पातंजलि योग-शास्त्र के ब-मूजिब दस प्रकार के शब्द अन्तर में सुनते हैं और उन में मन एकाग्र होकर रस पाता है, पर जो चढ़ाई का भेद और जुगत नहीं है, यानी न तो पता मालूम है कि कौन शब्द की आवाज़ किस मक़ाम से आती है, और न किसी तरह उस मकाम तक रास्ता तै करना चाहते हैं, तो भी सच्चा और पूरा उद्धार नहीं हो सकता है, यानी इस तरह शब्द के अभ्यास से जीव का देश यानी मक़ाम और हाल नहीं बदलेगा। खुलासा यह कि माया के देश से, जहाँ जन्म और मरण जारी है, न्यारा न होगा। इस वास्ते जो जीव अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं, उनको मुनासिब है कि सतगुरु का खोज करके उन की शरन लेवें और सुरत-शब्द योग का भेद और जुक्ति दरयाफ़्त करके अभ्यास शुरू करें और सतसंग करके सतगुरु से प्रीति चढ़ावें और निज स्वरूप राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाते जावें। तब आहिस्ता २ एक दिन सुरत, कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच जावेगी और पूरा काम बन जावेगा।

———

बचन तीसरा

परमार्थ में जो जो विघ्नकर्ता हैं, उनका हाल

१—परमार्थ के हासिल होने में सबसे ज़्यादा विघ्नकर्ता

संसार के भोगों की चाह है और मन में मान और ईर्षा का होना। भोगों की चाह ब-निस्बत भोग करने के ज़्यादा विकार करती है। इससे परमार्थी को मुनासिब है कि फ़िज़ूल चाह भोगों की न उठावे, नहीं तो वह भजन में रस नहीं पावेगा, क्योंकि भजन के वक़्त उसका मन भोगों की गुनावनें उठावेगा, और जो मान और अहंकार की जगह दीनता चित्त में लावे तो प्रेम हृदय में दिन-दिन बढ़ता जावेगा। मालिक और सतगुरु के चरणों में तो थोड़ी-बहुत दीनता कर भी लेवे, मगर जीवों के साथ दीनता से बरतना मुश्किल है। जिसके मन में सच्ची चाह परमार्थ की है और सतगुरु और शब्द के रूबरू सच्चा दीन-अधीन है, तो उसको आम तौर पर सच्ची दीनता आती जावेगी। और परमार्थ में शामिल होकर मन में ईर्षा को तो बिलकुल रखना नहीं चाहिए। अगर परमार्थ की चौंप उसके हृदय में पैदा होवे, तो वह फ़ायदेमन्द होगी यानी जो सच्चे परमार्थी को देखकर यह इरादा करे कि हम भी ऐसो सेवा और प्रेम और परमार्थ की कमाई करें, यह मुफ़ीद है। मगर एक की तारीफ़ सुन कर जलना और बैर-विरोध करना और उसकी तारीफ़ को काटना, परमार्थ में सख़्त विघ्न डालता है।

२—परमार्थी को चाहिए कि हमेशा अपने वक़्त की सम्हाल रक्खे, और उसको बे-फ़ायदा यानी, फ़िज़ूल कामों में ख़र्च न करे। अपने उद्यम यानी नौकरी वग़ैरा में उतना ही वक़्त ख़र्च करे जिस क़दर कि उसमें ज़रूरी है, और अपने घर, बार और देह के कामों में मुनासिब वक़्त लगावे, और बाकी वक़्त भजन, सुमिरन, ध्यान, पोथी का पाठ, मनन-विचार और परमार्थ

की बात चीत में ख़र्च करे, इसमें तरक़्क़ी उसके परमार्थ की होती जावेगी ।

३—संसारी लोगों से, जिनके दिल में संसारी वासनाऐं बहुत भरी हुई हैं, मेल कम रखे क्योंकि वे इधर-उधर की बातें और पिछले हाल सुना कर दुनिया और उसके भोगों की याद पैदा करायेंगे और उसके चित्त को दुखी कर देंगे और ऐसी तरंगें और हालतें और बासनाऐं परमार्थी के अभ्यास में विघ्न यानी ख़लल डालेंगी । जो कोई सतसंग में आकर संसारी बातें सुनाते हैं, निहायत ही अभागी है । क्या उनको घर में फ़ुरसत इस काम के लिये काफ़ी नहीं मिलती है ? और उनसे ज़्यादा अभागी वे लोग हैं, जो उनकी बातें चित्त देकर सुनते हैं और अपने वक़्त की क़दर नहीं जानते ॥

४—जो कोई किसी की बुराई बे-मतलब तुम्हारे सामने करता है तो ख़्याल करना चाहिये कि वह तुम्हारी भी बुराई दूसरे के आगे करेगा । यह आदत परमार्थ में बड़ा विघ्न डालती है और ऐसा शख़्स मुफ़्त में अपने को पापी बनाता है ।

५—अपने मन की हालत को हमेशा और हर एक जगह पर देखना और परखना चाहिये, और परमार्थ में ख़ास कर इसकी होशियारी रखनी चाहिये कि मन में अहंकार न आने पावे, नहीं तो प्रेम उस हृदय में कभी नहीं ठहरेगा ॥

६—जहाँ तक मुमकिन होवे हर एक परमार्थ के चाहने वाले को, जिस क़दर हो सके, मदद देवे । जो मदद न कर सके तो उसका किसी तरह परमार्थी नुक़सान करने का इरादा न करे । इन बातों का ख़्याल हर एक परमार्थी को दिल में रखना चाहिए, तब उसके परमार्थ की तरक़्क़ी होगी और

मालिक उससे खुश होकर प्रेम की बख़्शिश करेगा। और कबीर साहब ने कहा है :—

दोहा

लेने को सत नाम है, देने को अन दान।
तरने को है दीनता, डूबन को अभिमान ।।

— —

बचन चौथा

परमार्थ की कमाई में ख़ास तीन विघ्नों का हाल

१—सन्तों के परमार्थ में शामिल होने और उसकी कमाई करने में तीन विघ्न भारी हैं। पहला, संशय, दूसरा, भ्रम, तीसरा, पिछली टेक और रस्मों में बंधन। (१) संशय– जो कोई सतसंग के बचन चेत करके सुने, और जैसा कि संतों ने निर्णय किया है, उसको ग़ौर के साथ विचार करे और समझे, तो उसको कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का निश्चय आसानी से हो सकता है, क्योंकि ज़मीनी और आसमानी क़ुदरत और रचना को देख कर, इरादा और कारीगरी और मतलब बनाने वाले का साफ़ ज़ाहिर होता है। अपनी देह का हाल जो कोई ग़ौर से नज़र करे तो साफ़ मालूम होता है कि जितने अंग बनाये गये हैं, सब में यह तीनों बातें पाई जाती हैं। यानी हर एक अंग वास्ते एक एक काम के बनाया गया है, और उसकी बनावट में जैसी-कुछ कारीगरी अमल में आई है, साफ़ नज़र आती है, और मतलब यह कि सब अंग से मिलकर इस देह की हर तरह की कार्रवाई दुरुस्त बन आवे। इसी तरह से हर एक स्वरूप यानी देह ज़मीनी और आसमानी का हाल समझ

में आ सकता है। और हर एक देह में क़ुव्वत और ताक़त हर एक रूह की जो उस जिस्म में बिठाई गई है, साफ़ नज़र आती है कि उसकी मदद से कुल्ल कारर्वाई अंग २ की, जो बतौर औज़ार या कल के बनाये गये हैं, जारी है। और यह रूह संतों के बचन के मुवाफ़िक़ एक किरण है उस सूरज की, जो कुल्ल रचना का भण्डार है, और उसी की ताक़त से हर एक रूह ताक़त रखती है। फिर ऐसा भंडार, जहाँ से कि सब रूहें आई हैं, कुल्ल का मालिक हुआ और उसी कुल्ल मालिक का नाम राधास्वामी दयाल है। यह हाल बतौर मुख़्तसिर बयान किया गया है। रचना में बहुत दर्जे हैं बतौर ग़िलाफ़ या तहों के, और ये ग़िलाफ़ या तह बाहर रचना में एक-एक भारी मंडल है और हर एक मंडल में सिवाय बहुत सी रचना के एक-एक बड़ी रूह, मालिक उस मंडल की है, जिसकी ताक़त से कुल्ल कारर्वाई उस मंडल की जारी है। और नीचे के मंडलों में जो इसी तरह पर रूह हर एक मंडल की मालिक क़रार दी गई है, ऊपर की रूह से मदद पाती है। बाद ख़त्म होने इन दर्जों के, जो सब से ऊँचा और अख़ीर दर्जा है, वह राधास्वामी देश कहलाता है। वहीं से आदि में सुरत की धार उतरी और नीचे मंडल बाँध कर रचना करती चली आई। इस बयान से कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ होना राधास्वामी दयाल का, साबित है। जब यह बात अच्छी तरह समझ में आ जावे तो फिर किसी तरह का शक और शुबाह उनके कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ होने में बाक़ी नहीं रहेगा ॥

२—भ्रम उसको कहते हैं कि जो पद् या पदार्थ कि असली नहीं हैं, उनको असली समझ कर उनमें मन और चित्त का लगाना। जबकि राधास्वामी द्याल के कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ होने में कोई शक बाक़ी नहीं रहा, तब नीचे के मंडलों के जो मालिक हैं, उनको कुल्ल मालिक समझना भ्रम में दाख़िल है। नीचे के मंडलों के जो मालिक हैं, वे सब हद्वाले हैं और उन सब के ठहराव की तादाद्-ए-वक़्त मुक़र्रर है। फिर जो कोई उनको कुल्ल मालिक गरदान कर उनका इष्ट धारण करेगा, तो वक़्त प्रलय उनके और उनके लोक के, उसका भी सिमटाव हो जावेगा, और जब फिर रचना वहाँ होगी, तब वह शख़्स भी फिर पैदा होगा।

३—इस वास्ते हर एक सच्चे परमार्थी को मुनासिब और ज़रूर है कि कुल्ल मालिक राधास्वामी द्याल का खोज लगा कर, मुख्य तवज्जह अपनी उनके चरणों में लगावे, और उसी देश में पहुँचने का सच्चा और पक्का इरादा करके जिस क़द्र बन सके, जतन रास्ता काटने का, करता रहे, तो राधास्वामी द्याल की द्या से एक, दो या तीन जन्म में, मुताबिक़ उसकी लगन और प्रेम के, उस मक़ाम में पहुँच कर अजर और अमर हो जावेगा और महा आनन्द् और सुख को प्राप्त होगा। और जिस को तवज्जह दुनिया और दुनिया के पदार्थों में रही, वह मुवा-फ़िक़ अपने कर्मों के, नीचे के लोकों में और नीचे के दर्जों की योनियों में भटकता रहेगा और देह के संग जो दुख-सुख लाज़िमी हैं, वे और जन्म-मरण का दुख हमेशा सहता रहेगा॥

४—इसी तरह दुनिया के जितने पदार्थ हैं, उनमें निहायत दर्जे का मन का बंधन होना भ्रम में दाख़िल है, क्योंकि वे सब पदार्थ नाशमान हैं और उनके वसीले से एक ही वक़्त और थोड़ी सी कार्रवाई जो देह में इन्द्रियों से ताल्लुक़ रखती है, हो सकती है। पर, पूरी कार्रवाई और हर वक़्त मदद उनसे नहीं मिल सकती है। इस वास्ते मुनासिब है कि सिर्फ़ ज़रूरत के मुवाफ़िक़ ही उन से ताल्लुक़ रक्खा जावे और उनमें इससे ज़्यादा बंधन मन को होना कुल्ल मालिक के चरणों में प्रीति करने में ख़लल डालेगा, और नतीजा उसका यह होगा कि ऐसा शख़्स हमेशा दुखी-सुखी होता रहेगा और जन्म-मरण से रिहाई उस की नहीं होगी। इसी तरह पर हाल कुटुम्ब और परिवार और कुल्ल सामान दुनिया का समझ लेना चाहिये, यानी इन सब में अपना मन सिर्फ़ इस क़दर लगाना चाहिये कि जिसमें ज़रूरी कार्रवाई देह की, जब तक यह क़ायम रहे, जारी रहे और इस क़दर बंधन न होवे कि जो हालत वियोग में किसी शख़्स या सामान के सदमा सख़्त पहुंचे या उसकी ज़िन्दगी को ख़राब कर दे और सच्चे मालिक की तरफ़ से तवज्जह हटा दे॥

५—पिछली टेक और रस्मों में बन्धन हर एक शख़्स का, जिस देश में और जिस क़ौम और जिस मत में कि वह पैदा हुआ है, और अक़्ल और समझ के हासिल होने के वक़्त तक जैसा जिसको संग मिला है, और जैसा व्यवहार कि उसने अपने कुटुम्बियों और पड़ोसियों और शहर वालों का देखा है, उसी के मुवाफ़िक़ उस की समझ और ख़्याल और चाह और रहनी होवेगी। हर एक मुल्क और हर एक फ़िरक़े में

किसी न किसी का इष्ट मुआफ़िक़ मालिक के, और कोई न कोई चाल और रस्में जारी हैं। और ब-सबब आदत के, हर एक शख़्स को वही पुरानी और बरताव की हुई रस्में और वही इष्ट और वही चाल और वही ख़्याल और उसी क़िस्म का व्यवहार और वैसी ही चाहें पसन्द आती हैं। सिवाय दुरुस्त करने इष्ट सच्चे मालिक के, संत मत किसी की चाल-ढाल में दख़्ल नहीं देता है। मगर बाज़ी रस्में और व्यवहार और समझ और चाहें ऐसी हैं, कि जब तक आदमी उनको ग़ौर से विचार कर और संतों के बचन का समझ लेकर हेच और पोच यानी छोटा और ओछा (जैसे कि वे असल में हैं) समझ कर, और उनकी कार्रवाई को फ़िज़ूल और अपने अभ्यास में थोड़ा-बहुत ख़लल डालने वाला समझ कर, उनकी क़दर और आदत सच्चे दिल से कम या दूर न करेगा, तब तक वे उस के यक़ीन और अभ्यास की कार्रवाई में ज़रूर ख़लल डालेंगे। और इष्ट को तो फ़ौरन बदलना चाहिये, यानी और सब का, जो कि सिर्फ़ कामदार क़ुदरत के हैं और राधास्वामी देश से नीचे के मंडलों में तैनात यानी मुक़र्रर हैं, इष्ट और यक़ीन हटा कर, सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल का पूरा २ यक़ीन दिल में लाना चाहिये, तब राधास्वामी मत का अभ्यास बन पड़ेगा। और जो पुराने व्यवहार और चाल और रस्म वग़ैरा हैं, उनको जो बिल्कुल न छोड़ सके तो जब तक मुनासिब होवे, ज़ाहिरी तौर पर अपने कुटुम्ब और बिरादरी के साथ उनका बरताव करता रहे। मगर ऐसे बरताव के वक़्त अपने दिल में ध्यान सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल

का करता रहे, ताकि जो नुक़सान कि उन रस्मों के ज़ाहिरा तौर पर बरतने से होना मुमकिन है, दूर हो जावे, और उसकी भक्ति और संत-बचन के मुवाफ़िक़ कार्रवाई में ख़लल न पड़े। असल में जितनी रस्में और व्यवहार कि जहाँ-तहाँ देशों में जारी हैं, वे छोटे २ फ़िरक़ों या गिरोहों के, उनकी समझ और विचार और तजरुबे के मुवाफ़िक़ वास्ते आराम ख़ास लोगों या आम लोगों के बनाये हुए हैं। ज़माने का हाल और आब-ओ-हवा भी थोड़ी और बहुत बदलती रहती है और आदमियों की कार्रवाई और ताक़त और समझ और ख़्याल भी बदलते रहते हैं। इस सबब से, जो क़ायदे और रस्म कि एक वक़्त में मुनासिब और ज़रूर समझ गये, वे किसी अरसे के बाद क़ाबिल-ए-तरमीम हो जाते हैं यानी उनमें मुवाफ़िक़ चाल ज़माना और तबियत और समझ लोगों के, कमी और बेशी और दुरुस्ती की ज़रूरत साफ़ मालूम होती है। मगर मन जो आदत का, निहायत दर्जे का बँधुआ है, वह इस क़िस्म की तरमीम को अपनी ओछी अक़्ल और ख़्याल और समझ के सबब से पसन्द नहीं करता। इस वजह से चाहे उन रस्मों और व्यवहार के सबब से दुखी भी होवे, मगर उनके छोड़ने में लोगों की जान सी जाती है। और ज़ाहिर है कि हमेशा हर एक मुल्क में समझ-बूझ वाले लोग बहुत कम और नादान बहुत ज़्यादा होते हैं। इस सबब से नादानों का बंधन पुरानी चाल और रस्मों में ज़्यादा रहता है और वे अपनी ओछी समझ और पकड़ के मुवाफ़िक़ किसी रस्म को, चाहे वह कैसा ही दुख दाई क्यों न हो, बदलना पसन्द नहीं करते, और ऐसा

ख़ौफ़ करते हैं कि बुज़ुर्गों की और पुराने वक़्त की चलाई हुई रस्मों के छोड़ने में शायद उनका या उनके कुटुम्ब-परिवार का या धन की आमदनी का, किसी तरह का नुक़सान न हो जावे और यह ख़ौफ़ उनको ख़ास कर ग़रज़-मन्दों ने दिलाया है, यानी जो-जो रस्में कि पुरानी चली आती हैं, उनमें किसी न किसी क़िस्म के लोगों का कुछ फ़ायदा और आमदनी है। वे नहीं चाहते कि जिन लोगों को वे इस तौर पर धोका देकर अपना रोज़गार बनाते हैं, असल हाल मालूम पड़े या उनकी अक़्ल की आँख खुले और वे अपने नफ़े और नुक़सान को आप विचार कर चाल-चलन मुनासिब तौर पर इख़्तियार करें। यह ख़ास और बड़ी वजह पुरानी चालों के जारी रहने की है। सतसंगी को चाहिये कि जब संतों के बचन सुन कर, किसी क़दर उसकी अन्तर की आँख खुले और दुनिया और दुनियादारों का जैसा कुछ कि हाल है, असली नज़र आवे, तो अपना नफ़ा और नुक़सान, हाल और आइन्दा का, विचार कर, वह चाल इख़्तियार करे कि जिस से उसका सच्चा फ़ायदा यहाँ का और आइन्दा का हासिल होवे। अगर ज़ाहिर में उस की ताक़त किसी चाल-ढाल के बदलने में पेश न जावे तो अन्तर में ज़रूर ही कारवाई संतों के बचन के मुवाफ़िक़ करे, नहीं तो उसके परमार्थ में ख़लल पड़ेगा। मगर जिन रस्मों के जारी रखने में, मिस्ल खान-पान, गोश्त और शराब और दूसरे नशे की चीज़ों के, कि जिस में इसका भारी नुक़सान मालूम पड़े, तो उन को फ़ौरन ही छोड़ दे, और ऐसी रस्म के छोड़ने

में किसी तरह का हर्ज उसकी ज़िन्दगी का मुमकिन नहीं है, और न कुटुम्ब और बिरादरी के छोड़ने की ज़रूरत होगी। और जो वह ग़ौर से अपनी बिरादरी के हाल और चाल को नज़र करेगा, तो मालूम हो जावेगा कि वे किस क़दर भले और बुरे काम कर रहे हैं और अपने मत और बुज़ुर्गों की चाल के ख़िलाफ़ दुनिया के फ़ायदे और मज़ों के लिये कैसी २ ना-दुरुस्त और बेजा कार्रवाई कर रहे हैं। फिर जो इसने अपने परमार्थ की तरक़्क़ी और फ़ायदे के लिए जो कोई ओछी या ख़राब रस्म पुरानी छोड़ दी, तो उसमें क्या हर्ज बिरादरी और कुटुम्ब वालों का होगा ?

६—इस बयान से यह मतलब नहीं है कि कोई शख़्स अपने कुटुम्ब या बिरादरी से किसी काम में फ़िज़ूल तकरार और झगड़ा करके उनको छोड़ दे, बल्कि संतों के सतसंगी को मुनासिब है कि जहाँ तक मुमकिन होवे, उन लोगों के साथ अपना मेल जारी रक्खे। इसमें उनका फ़ायदा बहुत है और इस का किसी तरह का हर्ज या नुक़सान नहीं है क्योंकि जो मेल रहा आया तो उम्मीद है कि उन लोगों की भी आहिस्ता-आहिस्ता इसके बचन सुन कर किसी क़दर समझ बढ़ती जावेगी, और एक दिन वे भी संतों के बचन की बड़ाई और क़दर जान कर उसके ब-मूजिब कार्रवाई करने लगेंगे ॥

———

बचन पाँचवाँ

अभ्यास में विघ्न और उनके दूर करने का जतन

१—कोई लोग भजन में रस न मिलने की शिकायत करते हैं, या यह कि अन्तर में उनको कुछ नहीं खुला। इसका

सबब यह है कि या तो उन का मन वक़्त अभ्यास के संसारी चाहों या कामों की गुनावन या ख़्याल में लगा रहता है, या संसारी काम या उनकी गुनावन कर के अभ्यास में बैठते हैं, या उन को जो कुछ अन्तर में सुनाई या दिखाई देता है उस की उन को पहिचान और क़दर नहीं है ॥

२—ज़ाहिर है कि जब कोई अभ्यास के वक़्त दुनिया के कामों का ख़्याल या तरंग उठावेगा, उस वक़्त उसके मन और सुरत की धार उसकी इन्द्रियों की तरफ़ जारी होगी। जो कि मन से एक वक़्त में एक ही काम हो सकता है और रस ऊपर यानी ऊँचे की धार में है, तो भजन का रस मन को जब तक कि उसकी धार ऊपर के चैतन्य से चढ़ कर न मिले, क्योंकर आ सकता है ?

३—जो कोई सँसारी काम या उसका ख़्याल करके अभ्यास में बैठता है तो मन और सुरत उसके कामना की धार से भीगे हुए हैं और उस वक़्त उनका झुकाव और ख़्याल नीचे की तरफ़ हो रहा है, तो जब तक गहरा शौक़ और प्रेम अंग लेकर भजन में मुतवज्जह न होगा तब तक सुरत और मन निर्मल होकर न लगेंगे और रस नहीं आवेगा। इस सूरत में मुनासिब है कि कोई चितावनी या विरह या प्रेम के शब्द का, बड़ी पोथी सार बचन नज़म से लेकर होशियारी से पाठ करे और अपने ख़्याल को बदले तो अलबत्ता कुछ रस या आनन्द अभ्यास में मिल सकता है ॥

४—कुछ शख़्सों का यह हाल है कि जैसा कि उनको भेद स्थानों का मिला है, जब अभ्यास में बैठते हैं तो

चाहते हैं कि पहिला मक़ाम तो फ़ौरन ही खुल जावे और जो कुछ उसकी झलक दिखाइ देवे तो चाहते हैं कि बराबर उनके सामने खड़ी या क़ायम रहे और जो आवाज़ उनको पहले मक़ाम की सुनाई देती है तो उस की, जैसा कि चाहिए, क़द्र नहीं करते। इस सबब से अभ्यास रूखा और फीका मालूम होता है। तीसरे तिल या सहसदल कँवल का नज़र आना और उसका ठहरना आसान बात नहीं है। क्योंकि यह मक़ाम वैराट स्वरूप और ब्रह्म के हैं। ऐसी जल्दी इन मक़ामों का देखना और ठहरना मुश्किल है, लेकिन कभी २ उनके स्वरूप या झलक का दिखाई देना और आवाज़ घन्टे की सुनाई देना यह भी बड़ा भाग है। आहिस्ता २ आवाज़ भी साफ़ और नज़दीक मालूम होती जावेगी और कभी-कभी स्थान का स्वरूप भी दिखाई देगा ॥

५—प्रेम और प्रतीत के साथ अभ्यास करते रहना मुनासिब है। और समझना चाहिये कि संत मत के अभ्यास का मतलब यह है कि सुरत और मन, जो पिंड में बँधे हुए हैं, ब्रह्मांड की तरफ़, और फिर उस के पार चढ़ कर पहूँचें। जो कोई ध्यान में अपने मन और सुरत को पहले या दूसरे मक़ाम पर जमावे और थोड़ी देर तक ठहरावे, तो चाहे उसे कुछ नज़र आवे या नहीं, सिमटाव और चढ़ाई का रस तो ज़रूर ही मिलेगा। इसी तरह जो ध्यान और भजन के वक़्त अपने मन और सुरत को जोड़ेगा और जहाँ से कि आवाज़ आ रही है, वहाँ तक आहिस्ता २ पहुँचावेगा, तो ज़रूर उसको आनन्द भजन का आवेगा। इस वास्ते मुना-

सिब है कि ध्यान और भजन के वक़्त दुनिया के ख़्याल छोड़ कर अपने मन और सुरत को पहले स्थान पर जमावे, और जो वे उतर आवें तो फिर वहाँ पहुँचा कर ठहरावे। इसी तरह बारम्बार करता रहे तो थोड़ा-बहुत शब्द भी सुनाई देगा और रूप भी दिखाई देगा और सिमटाव और चढ़ाई का जो आनन्द है, वह भी ज़रूर मिलेगा॥ मगर इन सब कामों के करने के वास्ते शौक़ और तड़प यानी विरह और प्रेम थोड़ा-बहुत ज़रूर दरकार है। जो अभ्यास के वक़्त, मन क़ाबू में न आवे तो मुनासिब है कि बड़ी पोथी में से कोई विरह या प्रेम या चितावनी का शब्द, जिसका दिल पर असर ज़्यादा होता होवे, ग़ौर से पढ़ कर भजन में बैठे तो मन की किसी क़द्र हालत बदलेगी और भजन थोड़ा-बहुत दुरुस्ती के साथ बनेगा॥

६—और कभी कभी अपने मन को इस क़द्र समझौती देना चाहिये कि जब तू दुनिया के काम करता है तो परमार्थ का ख़्याल नहीं करता और जब परमार्थ के काम करता है तो दुनिया के कामों का ख़्याल क्यों करता है, और जब-तब सच्चे मालिक के चरणों में प्रार्थना करता रहे कि मन निर्मल और निश्चल होकर भजन में लगे। ज़रा ग़ौर करने से मालूम होगा कि भजन और ध्यान के वक़्त दुनिया के ख़्याल उठाने में निहायत बे-अदबी सच्चे मालिक के साथ होती है, जैसे कि कोई अपने बाप या हाकिम के सामने जाकर बातें दूसरों से करे और उनका बचन न सुने और उनकी तरफ़ भी देखे, भी नहीं तो वे कैसे

राज़ी होंगे ? इसी तरह मालिक भी राज़ी नहीं होता है। और इसी सबब से अभ्यास में रस नहीं आता है। इस वास्ते मुनासिब है कि जो ज़्यादा न बने तो थोड़ा ही अभ्यास करे, पर जहाँ तक मुमकिन होवे दुरुस्ती और तवज्जह के साथ करे ॥

७—जब कभी भजन या ध्यान के वक़्त देह सुस्त या शिथिल होती हुई मालूम होवे या नींद आती मालूम पड़े तो उस वक़्त अभ्यास को छोड़ कर थोड़ी देर के वास्ते हाथ और पैर फैला देवे और जो ज़्यादा सुस्ती होवे तो उठ कर दो-चार क़दम टहले और फिर बैठ कर अभ्यास करे ॥

८—जब भजन के वक़्त ग़फ़लत या बेहोशी होती मालूम पड़े तो उस वक़्त नाम का सुमिरन और स्वरूप का ध्यान दो-चार मिनट के वास्ते करे और जो ग़फ़लत दूर न होवे तो जब तक ख़ूब होशियार न हो जावे, तब तक यही अभ्यास करे ॥

९—जब कोई ख़राब तरंगे या दुनिया के ख़्याल उठें तो नाम का सुमिरन और स्वरूप का ध्यान करके उनको हटाना चाहिये, और जो ऐसे ख़्याल दूर न होवें तो भजन को मुल्तवी कर के थोड़ी देर के वास्ते सुमिरन और ध्यान का अभ्यास करे और जब वे ख़्याल दूर हो जावें, तब फिर भजन में बैठ जावे। लेकिन जब मन ज़्यादा ज़ोर करे और सुमिरन और ध्यान में भी न लगने देवे, तो उस वक़्त भजन और ध्यान छोड़ देवे और दो-एक शब्द का पाठ समझ २ कर करे, यानी हर एक कड़ी को पाँच २ चार, चार

दफ़े पढ़े और उनका मतलब समझ-समझ कर अपने ऊपर घटावे और फिर अभ्यास में लगे और जो फिर भी मन रुजू न होवे और बे-फ़ायदा तरंगें उठावे, तो उठ खड़ा होवे और फिर दूसरे वक़्त पर अभ्यास करे ॥

१०—मालूम होवे कि राधास्वामी दयाल की दया की धार हर वक़्त जारी है, और जब तक अभ्यासी की सुरत और मन की धार उस धार के साथ न जुड़ेगी या उनको न छुएगी, तब तक उस धार का असर प्रकट मालूम नहीं होगा, और यह बात तब हासिल होगी, जब कि मन और सुरत बिरह, अंग या प्रेम अंग लेकर अभ्यास में लगेंगे या संसार की तरफ़ से किसी सबब से दुखी होकर और राधास्वामी दयाल की तरफ़ सच्चे मन से दया की चाहना कर के, या किसी वक़्त किसी तरह का सच्चा ख़ौफ़ दिल में होगा और उस वक़्त राधास्वामी की मदद सच्चे दिल से माँगने के वास्ते भजन में बैठेंगे। ऐसे वक़्त और हालत में कुछ न कुछ दया की परख ज़रूर होगी और थोड़ा-बहुत रस और शान्ति ज़रूर आवेगी ॥

११—मालूम होवे कि जिस रोज़ खाने-पीने में कुछ ज़्यादती या बे-तरतीबी हो जावेगी, तो भी भजन का रस नहीं आवेगा और जो कोई बुरा काम किसी से बन पड़ेगा जिससे कि किसी के काम में नुक़सान पहुँचता हो, या पहुँचने वाला हो तो इस सबब से भी भजन में रस न आवेगा। ज़्यादा खाने से भजन के वक़्त धार ऊँची नहीं चढ़ती और पाप कर्म करने में सुरत और मन का झुकाव नीचे की

तरफ़ रहता है। इन दोनों बातों का अभ्यासी सतसंगी को ख़्याल रख कर अपनी सम्हाल जैसे मुनासिब होवे, करते रहना चाहिए ॥

१२—जिस किसी का मन दुनिया के ख़ास कामों में या किसी ख़ास शख़्स के साथ ज़्यादा बँधा है, या किसी के साथ उसकी सख़्त दुश्मनी या ईर्षा है, तो भी मालिक के चरणों का प्रेम उस के मन में बहुत हल्का रहेगा और इस सबब से अभ्यास में कम लगेगा और रस कम आवेगा ॥

१३—ख़ुलासा यह है कि सच्चे सतसंगी को चाहिए कि जिस क़दर बने, हर रोज़ दुनिया की प्रीति मन से कम करता जावे और मालिक के चरणों में शौक़ और प्रेम बढ़ाता जावे तो जिस क़दर मन, दुनिया की मोहब्बत से ख़ाली होता जावेगा, उसी क़दर मालिक के चरणों में प्रीति बढ़ती जावेगी और उसी क़दर भजन और ध्यान का रस बढ़ता जावेगा, और दया अंतर में ज़्यादा मालूम होती जावेगी ॥

१४—जो कोई अपने मन को भोगों की तरंग उठाने और फिर उन में बर्तने से बिल्कुल नहीं रोकता है, और चाहता है कि दया ऐसी होवे कि उसका मन बिल्कुल निर्मल हो जावे, तो इस तौर से दया नहीं आती है। उसको चाहिए कि जहाँ तक उसका बस चले मन को रोके और जब कभी रोके से न रुक सके, तो शरमावे और पछतावे और मन को डर दिखावे कि

आइन्दा बहुत दुख भोगने पड़ेंगे और जब-तब प्रार्थना भी करता रहे, तब शायद कुछ मन की हालत आहिस्ता-आहिस्ता बदले। और ऐसे शख़्स को चाहिए कि सिवाय शर्माने, पछताने और प्रार्थना करने के, जिस रोज़ यह चूके और भूले तो उस रोज़ जहाँ तक बने ड्योढ़ा या दूना भजन, सुमिरन और ध्यान करे। इस से जो मलीनता कि भोगों में अन्दाज से ज़्यादा बरतने के सबब से पैदा हुई है, वह उसी दिन किसी क़दर साफ़ और हल्की हो जावेगी।

१५—और मालूम होवे कि पाँचों दूत (काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार) और दसों इन्द्रियाँ जिन का झुकाव संसार की तरफ़ हो रहा है, ये सब परमार्थ के विरोधी हैं। उन में काम, क्रोध और ज़बान और आँख और कान इन्द्रिय जब मुनासिब और वाजिबी तौर से ज़्यादा संसार में वर्ताव करते हैं, तब अभ्यास में ज़्यादा विघ्न डालते हैं। उनकी सम्हाल हर वक़्त मुनासिब तौर पर रखनी चाहिए॥

१—काम के ज़्यादा और ग़ैर-वाजिब तौर के बर्ताव में सुरत और मन का, नीचे को झुकाव और उतार होता है, और इस सबब से अभ्यास में रस नहीं आवेगा।

२—क्रोध के वक़्त सुरत की धार देह में और देह के बाहर फैल कर बिखर जाती है और इस वजह से अभ्यास में रस नहीं मिलेगा॥

३—आँख और कान इन्द्रिय बहुत सी फ़िज़ूल सूरतों और चीज़ों को देख कर और सुन कर, अंतर में अभ्यास के वक़्त उनके ख़्याल पैदा करके हर्ज करती हैं और भजन का रस नहीं आने देती हैं॥

४—ज़बान इन्द्रिय, बहुत चिकना-चुपड़ा और मज़ेदार खाना मिक़दार से ज़्यादा खाकर और बेहूदा और फ़िज़ूल गुफ़्तगू करके अभ्यास में सुस्ती और ग़फ़लत और नापाक ख़्याल यानी मलीन तरंगें पैदा करती है। इस वास्ते मुनासिब है कि जिस क़दर बन सके, उस क़दर, इन के बर्ताव में सम्हाल और होशियारी रखनी चाहिए, नहीं तो अभ्यास में हमेशा ख़लल पैदा करते रहेंगे।

बचन छठा

उपदेश सतगुरु और संत भक्ति का

जिस किसी को कि सतगुरु मिलें तो मुनासिब है कि उनके चरणों में प्रीति करे और सुरत-शब्द का उपदेश लेकर अभ्यास अन्तर में करे, और स्वरूप का ध्यान और नाम का सुमिरन भी जिस नाम को कि वे बतावें, करे। और पहले ध्यान प्रथम मक़ाम पर करना चाहिए और जब ध्यान करते २ वहाँ मन लग जाय और रस आने लगे और सुरत और मन दोनों लगते और ठहरते मालूम पड़ें, तब फिर दूसरे मक़ाम पर ध्यान करे। फिर तीसरे मक़ाम पर और इसी तरह सत्तलोक तक। और जो सचाई और प्रेम अंग लेकर अभ्यास करेगा, उसको अपने मन और सुरत का मिल कर अंतर में थोड़ा-बहुत रेंगना यानी चलना मालूम हो सकता है। इसी तरह ध्यान करता हुआ धुर मक़ाम तक यानी संतों के देश तक पहुँच सकता है। और जिस किसी ने सच्चे मन से, आशा राधास्वामी धाम में पहुँचने

की बाँध कर अभ्यास सुरत-शब्द् का और ध्यान स्वरूप का शुरू किया है, जिस क़द्र कमाई कि उस से इस जन्म में बनेगी, वह उसको ध्यान के अभ्यास से कि कहाँ तक उसकी रसाई हुई है, आप मालूम हो सकती है और अख़ीर वक़्त पर उसको सतगुरु द्याल अपनी गोद् में बैठा कर द्र्शन कुल्ल मालिक राधास्वामी का करावेंगे। फिर अगर अभ्यास पूरा है और उस धाम में ठहरने के लायक़ है तो वहीं रहेगा, नहीं तो उलट कर द्सवें द्वार में या एक-दो मक़ाम उसके नीचे ठहराया जावेगा, और वहाँ द्र्शन और बचन मिलते रहेंगे और चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ती रहेगी। फिर जब संत सतगुरु संसार में वास्ते उद्धार जीवों के, आवेंगे और सतसंग खड़ा करेंगे तो ऐसे जीवों को, जो ऊँचे स्थान पर ठहराये गये हैं, अपने संग लावेंगे और जहाँ-तहाँ जन्म देंगे और फिर वे सब जीव मौज से सतसंग में शामिल हो जावेंगे। और उनको पहिली कमाई एक दो या तीन रोज़ में ही संत सतगुरु का द्र्शन करके और बचन सुन कर याद् आजावेगी, और बाक़ी कमाई जो संत देश में पहुँच कर ठहरने के वास्ते ज़रूर होगी, वे जीव उस जन्म में या एक और जन्म में कर लेंगे, और सतगुरु का संग उनको बराबर मिलेगा जब तक कि धुर मक़ाम यानी राधास्वामी द्याल के चरणों में नहीं पहुँचेंगे।

बचन सातवाँ

चितावनी

१—संसार बिल्कुल नाशमान है और जीव को बार-बार

जन्म लेना और मरना होता है। यहाँ की कोई चीज़ इसके साथ नहीं जा सकती और हर शख़्स के हिस्से में सिवाय मामूली खाने और कपड़े वग़ैरा के कुछ ज़्यादा नहीं आ सकता है। इतनी बात मर्द और औरत सब रोज़मर्रा संसार के बर्ताव में देखते हैं। फिर भी इस क़दर चेत और होशियारी किसी को नहीं है कि दरियाफ़्त करें कि वे कहाँ से आये हैं और कहाँ जावेंगे, और फिर वहाँ जाकर दुख या सुख पावें तो वह कैसे मिलेगा और उसका क्या जतन करना चाहिए ॥

२–इस क़दर बे-परवाही है कि जो कोई दूसरा शख़्स चितावे, तो भी नहीं सुनना चाहते। और यह भी मालूम पड़ता है कि जो संसार के पदार्थों और इन्द्रियों के भोगों की आशा में लिपटे रहे और इन्हीं के वास्ते मेहनत करते रहे, और अपने कुटुम्बी और रिश्तेदारों की ख़ातिरदारी में उम्र भर खोई, तो ऐसी आदत और आशा और मंशा के मुआफ़िक़ इसी चक्र में और ऐसे ही लोक में रहना होगा। और यह चक्र जन्म-मरण और दुख-सुख का है क्योंकि जिस काम की जिसको ज़बर आदत होगी और जिसकी चाह ज़बर होगी, वहीं बासा ज़रूर होगा। यह बड़ी भारी ग़फ़लत का पर्दा आम की तबियत पर पड़ा हुआ है।

३–और जो सतसंग करते हैं, उनके ऊपर भी थोड़ी-बहुत ग़फ़लत छाई रहती है। जानते हैं कि जिस क़दर इस देह में अपनी रूह की सफ़ाई और चढ़ाई कर लें, उतना ही फ़ायदा है और उतनी ही मदद मिलेगी और उतना ही बचाव होगा, और फिर ग़ाफ़िल हैं कि यही काम दुरुस्ती से नहीं करते।

और यह बात ज़रूर है कि संसार के पदार्थों और इन्द्रियों के भोग में वाजिबी और ज़रूरी तौर पर बर्तें और जहाँ तक हो सके, अपने आप को भोग-विलास और ज़्यादातर मेल और मिलाप संसारी लोगों के साथ से बचावें। पर बारम्बार भूलते हैं और उनके मन का असली झुकाव उसी तरफ़ को ज़्यादा रहता है। इसका सबब यह है कि मन का ख़मीर बिल्कुल माया के मसाले का है ॥

४—और ज़ाहिर है कि यह मन निहायत दर्जे का नादान और हठीला और निडर और बे-परवाह और बे-फ़िक्र है। उसकी आदत है कि जब कोई तरंग ज़बर उठावे, उस वक़्त किसी का डर नहीं मानता, बल्कि मौत का डर भी उस वक़्त दिखलाओ तो उसको भी नहीं मानता। किसी-किसी काम में दुख भी पा चुका है, पर ज़बर तरंग के वक़्त में, उस की भी याद दिलाई जावे तो भी कुछ असर नहीं होता है और भूल और ग़फ़लत यहाँ तक है कि परमार्थ के बचन बिल्कुल याद नहीं रखता, पर दुनिया के साथ बर्ताव में, चाहे हमेशा धोका खाता रहे, यानी जिनको अपने साथ प्रीतिवान समझे और अक्सर उन्हीं से दुख पावे, पर उनके साथ ऐसा बँधा है कि उस बँधन को छोड़ नहीं सकता है ॥

५—और यह भी मालूम होता है कि इस के अंतर में कोई समझाने वाली ताक़त ऐसी मौजूद है, यानी जब किसी काम को उल्टा-सीधा करना चाहता है तो अंतर में कोई मना करता है और होशियार करता है कि ख़बरदार!

ऐसा काम मत करना, वरना नुक़सान होगा। पर यह एक नहीं सुनता और जो चाह उपजती है, उसको कर गुज़रता है ॥

६—संत-महात्मा अनेक रीति से समझाते हैं और तरह-तरह डर नरकों और चौरासी के दिखलाते हैं और अमर सुख और आनन्द का, जो संतों के निज देश में प्राप्त होगा, भेद, और जुगत उसकी प्राप्ति की बताते हैं और किसी क़दर यह मन भी अपने बर्ताव की परख करके मालूम कर लेता है कि फ़लाँ बात में उसका नुक़सान है या फ़ायदा, फिर भी झोका नुक़सान की ही तरफ़ खाता है और फ़ायदे के काम की सुध नहीं लाता है। ऐसा जो मन हैं उसकी तरफ़ से परमार्थी को ख़ूब होशियार रहना चाहिए। और चाहिए कि सच्चे मालिक राधास्वामी और सतगुरु की दया का बल लेकर सतसंग ख़ूब होशियारी के साथ करे और सुरत-शब्द के अभ्यास को बराबर शौक़ के साथ जारी रखे तो मुमकिन है कि आहिस्ता-आहिस्ता कोई अर्से में मन दुरुस्त हो जावेगा। सिवाय इसके और काई जतन मन की दुरुस्ती का नहीं है ॥

७—जवानी में मन की तरंगों और इन्द्रियों के ज़ोर का रोकना अलबत्ता किसी क़दर कठिन है, पर अधेड़ अवस्था में और जब कि बुढ़ापे की अवस्था शुरू होती है, मन और इन्द्रियों का भोग-विलास की तरफ़ से रोकना बहुत कठिन नहीं है, पर जो सच्चा शौक़ीन और अनुरागी है, तो राधास्वामी दयाल की दया से उसका यह काम जवानी

में भी किसी क़दर आसानी के साथ बन सकता है, जो उसको सतगुरु का संग भाग से मिल जावे ॥

८—सच्च तो यह है कि हर एक जीव पर फ़र्ज़ है कि मन की सम्हाल जिस क़दर हो सके ज़रूर करे। वाजिबी और मुनासिब तौर पर तो उसका बरताव दुरुस्त है, पर किसी बात में ज़्यादती नहीं होनी चाहिए, नहीं तो परमार्थ की कार्रवाई और तरक़्क़ी में ख़लल पड़ेगा और जो काम कि थोड़े दिन में बन सकता है, उसको बहुत अरसा लगेगा ॥

९—जब तक कि मन और इन्द्रियाँ किसी क़दर क़ाबू में न आवेंगी, तब तक सुरत-शब्द अभ्यास का रस जैसा कि चाहिए, प्राप्त नहीं हो सकता। इस वास्ते जो नहीं चेतेगा और होशियार नहीं होगा, वही बड़ी दिक़्क़तें उठावेगा। यानी जो कोई चेत कर इस तरह की होशियारी नहीं करेगा, तो वह मन और इन्द्रियों और काल और माया के हाथ से झटके खाता रहेगा। बड़ी पोथी सार बचन छंद बंद में लिखा है :—

जगत जाल सब धोखा जानो। मन मूरख संग कीन्ही यारी ॥
इसका संग तजो तुम छिन २। नहिं यह लेगा जान तुम्हारी ॥

१०—इस वास्ते मुनासिब है कि इस बचन की प्रतीत करके और जो वक़्त कि हाथ में है, उसको ग़नीमत समझ कर, जिस कदर कार्रवाई अपनी रूह यानी सुरत की चढ़ाई

और मन से पीछा छुड़ाने की हो सके, ज़रूर होशियारी के साथ करे ॥

११—यह जीव इस संसार में जन्मानजन्म से बराबर धोखा खाता चला आता है। पर जिस जन्म में कि सतगुरु से मेला हुआ और भेद निज घर का मिला और असली हालत संसार की मालूम पड़ी, फिर धोखे के कामों में लिपट कर बर्तना और अपनी सुरत और मन की सम्हाल न रखना, यह बड़ी भारी ग़फ़लत और बे-परवाही की बात है ॥

१२—यह सही है कि मन का ज़ोर बड़ा भारी है और उसका रोकना किसी क़द्र कठिन है और यह जीव बहुत निबल और कमज़ोर है, पर राधास्वामी दयाल की दया और सतसंग की मदद से, जो काम कि यह करना चाहे तो आहिस्ता-आहिस्ता उसका बन जाना और दुरुस्त होना कुछ मुश्किल नहीं है ॥

बचन आठवाँ

भेद मत का

१–जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, सब का मतलब यह है कि मुक्ति या नजात हासिल हो। मुक्ति, बँधन और जन्म-मरण से छूटने और परमानन्द के प्राप्त होने को कहते हैं। इसके वास्ते दरियाफ़्त करना ज़रूर है कि कौन जुगत और तरकीब करके, जीव को यह बात प्राप्त

हो सकती है। दुनिया में जो २ सुख कि उम्र भर उनकी चाह करके हासिल होते हैं, सब नाशमान हैं। संत कहते हैं कि ऐसा देश भी है कि जहाँ अमर सुख और अमर आनन्द है। यहाँ, इस लोक में दुख-सुख मिला हुआ है। अगर्चे चैतन्य आनन्द स्वरूप है, पर उस पर माया के ग़िलाफ़ चढ़े हुए हैं। उन में बँधन कर के दुख-सुख होता है, जैसे जाग्रत में देह का बँधन कर के दुख-सुख मालूम होता है, पर स्वप्न में जो कि सुरत की धार देह के मक़ाम से किसी क़दर हट जाती है, तो इस देह का दुख-सुख मालूम नहीं होता। संत कहते हैं कि ऐसी तरकीब करनी चाहिए कि ग़िलाफ़ों के बँधन से रिहाई हो जावे। सब मतों में किसी न किसी सूरत की नक़्ल की पूजा बताते हैं या किसी निशान की पूजा या पोथी वग़ैरा की, जैसे कि नानक पंथी ग्रन्थ को गुरू मानते हैं। इस सुरत में यानी जीव की तवज्जह बाहरमुख रहती है और निज घर का पता और भेद नहीं मिलता। इस सबब से वहाँ सच्ची नजात हासिल होने का रास्ता, ज़ाहिरा कोई मालूम नहीं होता है। और वास्ते हासिल होने सच्चे उद्धार या मुक्ति के ज़रूर है कि ऐसी तरकीब मालूम होनी चाहिए कि जिससे सुरत यानी रूह का भंडार की तरफ़ लौटना होवे॥

२—सुरत का देह में दिमाग़ की तरफ़ से आना और मरते वक़्त उसी तरफ़ ऊपर को खिंच जाना, इन आँखों से साफ़ दिखाई देता है। और सब कहते हैं कि मालिक सब

जगह है और जीव उसकी अंश है। वह मालिक आनन्द स्वरूप है, और जीव जो उसकी अंश है, यह भी आनन्द स्वरूप है यानी जीव एक किरण उसी आनन्द स्वरूप सूरज यानी भँडार की है, पर इसका, उस भँडार से जुदा होकर, इस दुनिया में जड़ पदार्थों के साथ मुहब्बत कर के बँधन हो गया है। और जितना कि स्वाद, रस और मज़ा है, सब सुरत की धार का है। इसकी धार जिस इन्द्रिय के मक़ाम पर आती है, तब उस इन्द्रिय के भोग का रस और मज़ा मालूम होता है। इससे ज़ाहिर है कि सब रस और मज़े और स्वाद और आनन्द इसी चैतन्य में हैं और जिस जिसमें जिस क़दर कि रूह, चैतन्य की धार है, उसी क़दर रस और आनन्द है।

३—संत कहते हैं कि जहाँ से ये सब धारें रूह की आई हैं, वह भंडार महासुख और आनन्द का है। इसलिए जो कोई सच्ची नजात और पूरा सुख और अमर आनन्द चाहे तो वह उस मक़ाम में पहुँचे कि जहाँ से सुरत की धार आई है। वह देश भी अमर है और वहाँ का सुख भी अमर और अपार है और यह सुरत भी वहाँ पहुँच कर विदेह यानी ग़िलाफ़ों से अलेहदा हो जावेगी।

४—दुख-सुख सिर्फ़ माया की मिलौनी यानी देह या ग़िलाफ़ों के साथ बन्धन और भोगों की चाह के सबब से होता है। इस वास्ते भोगों की चाह कम करके, और ग़िलाफ़ों से रूह को हटा कर, जिस क़दर फ़ुरसत मिले, उस क़दर वक़्त अपना सुरत और मन की सफ़ाई और चढ़ाई

में ख़र्च करे। संत इसकी तरकीब बताते हैं। उसके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करना चाहिए। जैसे कि जाग्रत में सुरत की बैठक आँख में है, चाहिए कि इसी मक़ाम से उस ऊँचे देश की तरफ़, जिसको राधास्वामी धाम कहते हैं और जहाँ से शुरू में सुरत का उतार हुआ है, आहिस्ता-आहिस्ता चलावे ॥

५—सच्चे मालिक का नाम राधास्वामी है और उन्हीं के चरणों में पहुँचना है ॥

६—और मालूम हो कि तरकीब संतों के अभ्यास की ऐसी आसान है कि जिसको लड़का, जवान और बूढ़ा, स्त्री और पुरुष, पढ़ा और अनपढ़, गृहस्थ और विरक्त, सब कर सकते हैं। एक, नशे की चीज़ और गोश्त का खाना मना है। गोश्त खाने से दिल, सख़्त और मोटा होता है और उसकी तवज्जह बाहर की तरफ़ होती है और जिस जानवर का गोश्त खाया जावेगा, उसका भी असर तबीयत में आवेगा। और नशे की चीज़ के इस्तेमाल से दिमाग़ की रगों में ख़लल पैदा होता है। और एक यह भी शर्त है कि अभ्यासी किसी शख़्स को अपने ज़ाती फ़ायदे या मतलब के लिए दुख न दे, मन कर के, बचन कर के या काया करके और जहाँ तक बन सके, सब को सुख पहुँचावे, नहीं तो दुख देने से तो बचे ॥

७–और खाने-पीने में इस क़दर होशियारी रखे कि बहुत पेट भर के न खावे। किसी क़दर हल्का रहे, जिससे

सुस्ती और नींद न आवे। सिर्फ़ यह शर्तें दरकार हैं, और बाक़ी अभ्यास की तरकीब ऐसी है कि बहुत आराम के साथ उसकी कार्रवाई हो सकती है और सब जगह और सब वक़्त बन सकता है। किसी तरह की रोक-टोक नहीं है, और इस अभ्यास में स्वाँस का रोकना नहीं होता है। और मतों में स्वाँस का रोकना बताया है। इस सबब से वह अभ्यास किसी से नहीं बना। और उसमें संजम और ख़तरे सख़्त हैं। इस सबब से गृहस्थी से तो यह अभ्यास हरगिज़ नहीं बन सकता और विरक्त के वास्ते भी मुशकिल और ख़तरनाक है।

८—अब चाहिए कि सुरत को, आशा अपने निज घर की बँधवा कर, आहिस्ता आहिस्ता चलावे। जो ऐसी आशा दृढ़ रही तो आहिस्ता आहिस्ता काम चल निकलेगा, पर इसको मियाद मुक़र्रर नहीं हो सकती कि किस क़दर अरसे में काम पूरा होगा। यह अनुरागी के शौक़ पर मुनहसिर है। जिस क़दर शौक़ तेज़ होगा, उसी क़दर रास्ता जल्दी तै होगा॥

६—चलने का रास्ता यह है कि जिस धार पर या सड़क से कि सुरत आई है, उसी रास्ते जाना होगा।

१०—रचना में कुल्ल कारख़ाना धारों का है, ख़्वाह वह नज़र आवें या नहीं, जैसे जब हम देखते हैं, तब रोशनी की धार आती है। जब सुनते हैं, तब शब्द की धार और जब सूंघते हैं, तब खुशबू या बदबू की धार आती है। और

सूरज की रोशनी यहाँ किरणों के बसीले से आती है। ऐसे ही सुरत किरण जिस धार पर कि उतर कर आई है, उसी धार पर उसको सवार कराकर ऊँचे की तरफ़ को चलाना चाहिये ॥

११–आदि ज़हूर, कुल्ल मालिक का, शब्द है और वही जान की धार है। और जहाँ धार होगी, वहाँ शब्द भी ज़रूर होगा और शब्द की बराबर कोई रास्ता दिखाने वाला और अँधेरे में प्रकाश करने वाला नहीं है। इस वास्ते चाहिये कि शब्द को पकड़ कर चढ़े और उसका भेद, भेदी से मिल सकता है। रूह यानी सुरत की धार पिंड में पहले दोनों आँखों के मध्य में जो तिल है, आकर ठहरी और वहाँ से सब देह में फैली। चाहिये कि इसी मक़ाम से इस धार को पकड़े। पहिले अभ्यास उसके समेटने का करे, जैसे नाम का सुमिरन और स्वरूप का ध्यान, और फिर शब्द का अभ्यास करे, उससे चढ़ाई होगी ॥

१२–शब्द अन्तर में जो हो रहा है, वह हर एक स्थान के मालिक के दरबार से आता है और हर एक स्थान का शब्द जुदा-जुदा है। इसका भेद लेकर चलना चाहिए।

१३–जैसे बाहर रचना धारों की है, ऐसे ही इस देह में भी कुल्ल कारख़ाना धारों का है, जिसको नरवस सिस्टम (nervous system) यानी रगों का मंडल कहते हैं। इन्हीं रगों में होकर रूहानी क़ुव्वत तमाम बदन में फैली हुई है। कुल्ल रचना में शब्द भरपूर है और सब बदन में काम उसी की

धारों से चल रहा है, पर जो शब्द कि आसमानी है, उसी को पकड़ कर चलना और चढ़ना होगा। पहले वक़्त में मूलाधार यानी गुदा चक्र से अभ्यासी चलते थे। संत कहते हैं कि असल बैठक जीव की आँखों के बीच में है। इस वास्ते संतों का रास्ता आँखों के मुक़ाम से चलता है ॥

१४–संतों ने रचना को तीन बड़े दर्जों में तक़सीम किया है–एक, निर्मल चैतन्य देश जहाँ माया का नाम और निशान भी नहीं। दूसरा, निर्मल चैतन्य और निर्मल माया देश जहाँ कि माया निहायत पाक और शुद्ध है। और तीसरे, निर्मल चैतन्य और मलीन माया देश। हमारा देश मलीन माया के देश में है। जहाँ कि शुद्ध माया है, वह ब्रह्म देश है। और निर्मल चैतन्य देश में चैतन्य ही चैतन्य है वही संतों का दयाल देश है ॥

१५–और फिर हर दर्जे में छोटे दर्जे शामिल हैं। दयाल देश, बतौर सिंध, अपार है। और ब्रह्म उसकी लहर है। और जीव बतौर बूंद के है ॥

१६–संत मत की सब तरह बड़ाई है कि वह धुर स्थान का भेद देता है। और बाक़ी मत ब्रह्म देश से आगे नहीं गये। और संत देश की किसी को ख़बर न पड़ी क्योंकि सहसदलकँवल जोकि दूसरे दर्जे में नीचे का मुक़ाम है, यहाँ सब मतों का अंजाम है यानी यही पद सबका सिद्धान्त है। और संत मत यानी राधास्वामी पंथ में जो आसान तरक़ीब अभ्यास की बताई जाती है, वह हर एक शख़्स कर सकता

है। दूसरे मतों में जो जुगत चलने की मुक़र्रर है, वह निहायत मुश्किल और ख़तरनाक है और जो कि शब्द आदि ज़हूर कुल्ल मालिक का है, इस सबब से इसकी धार को पकड़ कर अभ्यासी धुर स्थान तक पहुँच सकता है। सिवाय शब्द के, जो और धारें हैं, वे नीचे के स्थानों से निकली हैं। उनको पकड़ कर अभ्यासी धुर तक नहीं जा सकता।

१७–और मालूम हो कि सुरत-शब्द का रास्ता प्रेम से तै होगा, क्योंकि जिसको जिस बात का सच्चा शौक़ है, वह उस काम को अच्छी तरह कर सकता है। जो कि यह मार्ग सच्चे मालिक के चरणों में, निज प्रेम का है, इस वास्ते चाहिये कि ऐसी प्रीति राधास्वामी के चरणों में पैदा करे, जैसे कि पुत्र-पिता के साथ करता है। जिसके हृदय में सच्चा शौक़ मालिक से मिलने का है, वही अधिकारी इस मत का है, और उसी को इस अभ्यास में रस और आनन्द आवेगा। और जिसको सच्चा शौक़ नहीं है, उससे यह अभ्यास भी नहीं बन सकता, क्योंकि यह काम इन्द्रियों और देह का नहीं है कि ज़बरदस्ती कराया जावे। जब तक मन में सच्चा शौक़ न पैदा होगा, यह मार्ग चल नहीं सकता। इन्द्रियों का काम ज़बरदस्ती भी आदमी कर सकता है। पर अन्तर में मन का चलना, बग़ैर प्रेम के, नहीं हो सकता है।

१८—दान, पुण्य वग़ैरा शुभ कामों में दाख़िल हैं, पर इन से मुक्ति हासिल नहीं हो सकती और अन्तर का परम सुख और परम आनन्द प्राप्त नहीं हो सकता। और दर-शन कुल्ल मालिक राधास्वामी का भी, जब तक कि सुरत उलट कर ऊँचे देश में न जावेगी, नहीं पा सकती है॥

१६—जिस शख़्स के हृदय में सच्चा शौक़ है और मालिक के चरनों में प्यार है, उसको शब्द सुनाई दे सकता है। और जो कि मालिक का मक़ाम दूर है और उसका जल्दी दर्शन हासिल नहीं हो सकता है, इस वास्ते उसका जलवा कभी-कभी अभ्यासी को दिखलाई देना, यह भी बहुत बड़ी बात है कि उसी को देखकर होश नहीं रहेगा और निहायत आनन्द और रस प्राप्त होगा। और फिर इसी तरह दिन-दिन रस और आनन्द बढ़ता जावेगा और एक दिन काम पूरा बन जावेगा॥

बचन नवाँ

उपदेश शब्द के अभ्यास का

१—इस दुनिया में सब जीवों के मन में सुख की चाह मालूम होती है और हर रोज़ उसके वास्ते मेहनत और मशक़्क़त करते हैं, और जो कुछ सुख यहाँ के हासिल होते हैं, वे पूरे-पूरे नहीं मिलते और जो मिले, तो वे सब नाशमान हैं और उनमें आनन्द थोड़ी देर का है॥

२–अक़्लमंद वह है कि जो दुनिया के हाल और सुखों को देख कर कि कोई यहाँ ठहराऊ नहीं है, खोज यानी तलाश करे कि परम सुख जो हमेशा एक-रस क़ायम रहे, वह कहाँ है। और जब कि इस दुनिया के छोटे-छोटे सुखों के वास्ते उम्र भर खपता रहता है और फिर वे सब सुख यहाँ के यहीं छोड़ जाता है, फिर उस सुख के लिये जो हमेशा एक-रस रहे, ज़रूर तवज्जह करना मुनासिब मालूम होता है ॥

३–दुनिया के सुखों की प्राप्ति की ख़्वाहिश में बार-म्बार जन्मना और मरना पड़ता है। इसलिए हर एक को चाहिए कि इन में प्रीति कम करे, और ऐसे मक़ाम के हासिल करने के वास्ते कोशिश करे कि जहाँ हमेशा पूरा आनन्द प्राप्त होवे ॥

४–विचारवान आदमी इस दुनिया की नाशमान हालत को देखकर ज़रूर दिल में ख़्याल करता है कि कोई ऐसा स्थान भी है कि जो अमर होवे, और जो सर्व सुख का भंडार हो, और जिसकी प्राप्ति के लिए एक-बार मेहनत करनी पड़े, और फिर हमेशा का आनन्द प्राप्त होवे और बारबार मेहनत न करनी पड़े, जबकि यहाँ हर जन्म में नये सिरे से मेहनत करके दुनिया के सुख मिलते हैं और फिर मरने के वक़्त वे एक दम सब छोड़ने पड़ते हैं ॥

५–संत कहते हैं कि यह परम सुख का भंडार तुम्हारे घट में मौजूद है ॥

६—आदि में सुरत, राधास्वामी के चरणों से उतर कर ब्रह्मांड में होती हुई और वहाँ से मन को संग लेती हुई दोनों आँखों के मध्य में आकर ठहरी। और वहीं इसकी असल बैठक है। फिर वहाँ से सुरत तमाम देह में फैली और एक-एक सुख या एक-एक क़िस्म का रस जो दस इन्द्रियों के वसीले से हासिल होता है, सुरत की एक-एक धार का है, जो इन्द्रिय द्वारे बैठ कर लेती है। अगर सुरत की धार उस इन्द्रिय पर न हो तो वह इन्द्रिय कुछ काम नहीं दे सकती है। और वह सुरत क़तरा या बूँद है, सत्त-पुरुष राधास्वामी सिंध की। अब जब कि एक क़तरा इस क़दर सुखदायक है तो उस सिंध के सुख की क्या महिमा की जावे ?

७—संत फ़रमाते हैं कि जो सुख कि सुरत के भंडार में है, वह अविनाशी है, और वह देश भी अविनाशी है, और तुम भी अविनाशी हो। पर, मन और माया का संग करके इस मृत्युलोक में दुख-सुख और जन्म-मरण भोगना पड़ता है। जब कि दुनिया के नाशमान और तुच्छ सुखों के लिए, रात-दिन उम्र भर मेहनत करते हो, तब उस सुख के लिए जो सर्व-सुखों का भंडार है, किस क़दर मेहनत करनी चाहिए ? जिस क़दर मुमकिन हो, कम से कम दो घंटे सुबह और शाम या चार घंटे सुबह और शाम तवज्जह के साथ, इस काम के वास्ते अभ्यास करना मुनासिब है, जो शौक़ होवे, क्योंकि हर एक गृहस्थी चार घंटे अभ्यास दो-

तीन दफ़े करके, हर रोज़ कर सकता है। बहुत से आदमी छः, सात या आठ घंटे रोज नौकरी करते हैं और कोई-कोई दस घंटे और बारह घंटे रोज़ मेहनत करते हैं। फिर जो कोई चाहे, वह कम से कम दो घंटे और भी चार घंटे बल्कि छः घंटे परमार्थ के काम के वास्ते निकाल सकता है॥

८—यह भी ज़ाहिर है कि सुरत यानी जीव का रास्ता आने-जाने का घट में होकर है। पैदा होने के वक़्त मस्तक से सुरत की धार पिंड में उतरती है और मरते वक़्त उसी तरफ़ को खिंचती हुई नज़र आती है। तो जिस धार पर सुरत उतरी है, उसी धार को पकड़ कर चलना चाहिए, क्योंकि जब मरते वक़्त चढ़ाव सुरत का मालूम होता है, तो उस वक़्त किस क़दर तकलीफ़ होती है ? इस से पेश्तर उस को रोज़मर्रा आदत उस मकाम की तरफ़ चढ़ने की डालनी चाहिए। और इस अभ्यास में हर रोज़ नवीन आनंद मिलता जायगा और मरते वक़्त जो कष्ट या तकलीफ़ गृहस्थियों-संसारियों को होती है, वह अभ्यासी को नहीं होगी, बल्कि अंतर में खिंचाव के साथ आनंद बढ़ता जावेगा॥

९—दुनिया का सब सामान और सारे बाहरमुखी काम, सुरत के बहकाने वाले और भर्माने वाले हैं। यह सुरत के निज घर में पहुँचने का रास्ता नहीं है। जो कुछ यहाँ का सामान है, उस में से कोई चीज़ संग नहीं जाती। इस

वास्ते उनमें वाजिबी और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ ही दिल लगाना चाहिए ॥

१०—जो दुनिया के भोग-विलास की चाह रखते हैं और जिन्होंने इसी देश को अपना वतन माना है और उसी के वास्ते मेहनत करते हैं, ऐसों के वास्ते संत-मत नहीं है। वे कर्मकाँड में यानी जो परमार्थी चाल कि उनके बुज़ुर्गों से चली आई है, उसी में लगे रहते हैं। उसी में थोड़ा-बहुत फ़ायदा उन को हासिल होगा यानी कुछ शुभ कर्म उनसे बन जावेगा और उसका फल यानी थोड़ा सुख मिल जावेगा, पर ये जीव चौरासी के चक्कर और जन्म-मरण से बच नहीं सकते। जिनको दुनिया और क़ुदरत का कारख़ाना देख कर, जन्म-मरण और देह के दुख-सुख से बचने और मालिक से मिलने का शौक़ पैदा हुआ है, उनके वास्ते राधास्वामी यानी संत-मत है। और उनको चाहिए कि जिस क़दर बन सके, विरह और प्रेम अंग लेकर, सुरत और मन को, शब्द में, जो घट-घट में भरपूर है, लगावें। और शब्द का भेद और जुगत चलने की, भेदी से मालूम होवेगी। कोई दिन के अभ्यास से अन्तर में ख़ुद मालूम होता जावेगा कि किस क़दर अभ्यास में तरक़्क़ी हुई, और पर्चे भी मिलते जावेंगे और दिन-दिन प्रेम बढ़ता जावेगा।

११—जो कोई ऐसा मान रहे हैं कि मालिक सब

जगह मौजूद है, फिर जाना-आना कहाँ है, यह बात दुरुस्त नहीं है, क्योंकि ख़ुद जीव, यानी सुरत, इस क़दर पर्दों या ग़िलाफ़ों में पोशीदा है कि जब तक वे न फोड़े जावें, तब तक अपना रूप नज़र नहीं आवेगा। और फिर वहाँ से सच्चे मालिक यानी भंडार का दर्शन और भी दूर है और कितने ही पर्दों में गुप्त है। इसी तरह यह भी पर्दे फोड़ कर धुर मक़ाम तक पहुँचना हो सकता है। इन लोगों की जब भी नज़र पड़ेगी तो बाहर के पर्दे या ग़िलाफ़ पर पड़ेगी, जिसको स्थूल शरीर कहते हैं और यह हर दम बदलने वाला और नाशमान है। फिर उनको सत्तपद का दर्शन कैसे मिल सकता है? वेदान्त शास्त्र कहता है कि अन्नमई कोश, प्राणमई कोश, मनोमई कोश और ज्ञानमई कोश के परे जो आनन्द मई कोश है, वहाँ जीव यानी आत्मा का वासा है। इन पर्दों को फोड़ कर जीव यानी सुरत का दर्शन हो सकता है। और जब इन पर्दों के फोड़ने का अभ्यास कुछ भी नहीं किया जाता, तो इन बातों का कहना और सुनना बे-फ़ायदा है, क्योंकि ख़ाली बातों से मुक्ति या सच्चा उद्धार हासिल नहीं हो सकता। देखो किसी दरख़्त के बीज को कि उसकी रूह कितने पर्दों यानी तहों या छिलकों में और फिर उसके मग़ज़ के अन्दर किसी जगह पोशीदा है, जहाँ से कि वक़्त उगने के, कुला फूटकर, धार रूप होकर निकलता है। इसी तरह सब शरीरों में रूह यानी जीव या सुरत कितने ही पर्दों में पोशीदा है, और

उसका दर्शन सब पर्दे हटा कर अन्तर के चैतन्य यानी रूह की दृष्टि से हो सकता है। बाहर की रचना में यह एक-एक पर्दा एक-एक मंडल के साथ मुआफ़िकत रखता है। सो जब तक भेद इन पर्दों का दरियाफ़्त करके और उनके पार जाने की जुगती का अभ्यास नहीं किया जावेगा, तब तक रास्ता तै न होगा, और न जब तक सच्चे मालिक का दर्शन मिल सकता है। राधास्वामी मत में भेद इन पर्दों का, और जुगत उनके तै करने की, साफ़-साफ़ बताई जाती है और उसका अभ्यास करने से आहिस्ता-आहिस्ता सुरत यानी रूह, देह के मक़ाम से ब्रह्मांड की तरफ़ सरकती जावेगी। और जिस क़दर उस तरफ़ को चलती जावेगी, उसी क़दर उसको अन्तर में आनन्द और रस मिलता जावेगा। और देह और संसार के दुख-सुख और भोगों की चाह का असर कम होता जावेगा॥

१२—सोते वक़्त रूह यानी सुरत की धार आँखों और सब इन्द्रियों के मक़ाम से किसी क़दर अन्तर की तरफ़ हट जाती है। फिर चिन्ता और दुख-सुख, देह और संसार का, बिल्कुल नहीं व्यापता है। इसी तरह से जब डाक्टर लोग शीशी की दवा यानी क्लोरोफार्म सुँघाते हैं, उस वक़्त बदन के काटने की तकलीफ़ नहीं मालूम होती। और ऐसे ही नशे की हालत में भी सुरत किसी क़दर मामूली यानी आँख के मक़ाम से सरक जाती है कि उसी वक़्त सरूर यानी नशे का आनन्द आ जाता है, और चित्त भी उदार हो

जाता है क्योंकि उस वक़्त कोई इसके पास आवे, सब को उसी नशे की चीज़, चाहे जैसी क़ीमती होवे, मिस्ल शराब या अफ़यून के, खिला-पिला कर, अपने मुवाफ़िक़ नशे के सरूर में मस्त करना चाहता है। और दुनिया के सोच और फ़िक्र और रंज, किसी क़द्र, बिल्कुल हट जाते हैं या दूर हो जाते हैं और इसका मन भी निष्कपट हो जाता है, क्योंकि नशे के वक़्त में जो कोई इस से कोई भेद की गुप्त बात पूछे तो बे-तकल्लुफ़ फ़ौरन ज़ाहिर कर देता है॥

१३—अब ख़्याल करना चाहिए कि जब कि नशे या क्लोरोफ़ार्म की मदद से, सुरत के थोड़े-बहुत आँख के मक़ाम से सरकने में इस क़द्र दुख और दर्द और फ़िक्र देह और संसार का दूर हो जाता है, और अन्तर में एक तरह का आनन्द या रस आता है, तो जो कोई अभ्यास की कमाई से बा-इख़्तियार अपने यानी स्वतन्त्रता के साथ, चाहे जब अन्तर में सुरत को इधर से हटा कर ऊपर को चढ़ाने की ताक़त हासिल करेगा, उसको किस क़द्र क़ुद्रत की ताक़त नज़र आवेगी और आनन्द प्राप्त होगा? और सफ़ाई रूह और मन की होती जावेगी और देह और संसार के दुख-सुख का असर दिन-दिन कम होता जावेगा? इससे ज़ाहिर है कि सच्ची मुक्ति और सच्चा उद्धार एक दिन इसी जुगत यानी सुरत-शब्द की कमाई से हासिल होना मुमकिन है। और जो बाहरमुखी परमार्थी पूजा या चालें हैं या अन्तर में हृदय और नाफ़ के मक़ाम

के अभ्यास हैं, उनसे सच्चा उद्धार और रूह की अपने निज घर की तरफ़ चढ़ाई मुमकिन नहीं है ॥

बचन दसवाँ

सतसंगियों की रहनी का वर्णन

सवाल—राधास्वामी मत के सतसंगी की रहनी क्या होनी चाहिए कि जिससे प्रीति और प्रतीत रोज़मर्रा बढ़ती रहे और अभ्यास का भी रस मिलता रहे ?

जवाब—सतसंगी को चाहिए कि जब से राधास्वामी मत का उपदेश लेवे,

(१) अपना खाना आहिस्ते-आहिस्ते चार-छः महीने के अर्से में अन्दाज़न चौथाई, और जो ज़्यादा शौक़ीन अभ्यासी है तो तिहाई, कम करे ;

(२) संसारी लोगों से मेल इस क़द्र रक्खे कि जितना उसके व्यवहार की कार्रवाई के लिए ज़रूर है और फ़िज़ूल बैठक और बात-चीत उनके साथ न करे ;

(३) अपने रोजगार में किसी को धोखा न दे, अपने फ़ायदे के वास्ते, और न दूसरे का हक़ बे-वाजिब लेवे, और काम अपना दुरुस्ती और होशियारी से करे ;

(४) जहाँ तक बन पड़े, ऐसी बात-चीत कि जिसमें बे-मतलब और बे-ज़रूरत किसी की निंदा या स्तुति करनी

पड़े, न करे, और जहाँ तक बने, किसी से ईर्षा और विरोध और क्रोध न करे ;

(५) अपने फ़ुर्सत के वक़्त में सिवाय मामूली अभ्यास यानी भजन, सुमिरन और ध्यान के परमार्थी विचार या चिंतवन करता रहे, या दुनिया के हाल पर नज़र करके उससे अपने मन को समझौती देता रहे और क़ुद्-रत का हाल और मालिक की कारीगरी हर तरह की देख कर, उसकी महिमा मन में करता रहे । (हर तरह के कहने में कुल्ल रचना आसमान की और ज़मीन पर चारों खान की, सब आ गई) और जब कोई सख़्त वाक़आ या वार-दात क़ुद्रती सुनने में आवे, तब अपनी हालत की निरख-परख करके होशियारी बढ़ावे और मालिक का शुक्राना करे कि ऐसी आफ़तों से बचाये रक्खा है ;

(६) नशे की चीज़ों और मांस अहार से बिल्कुल परहेज़ करे ;

(७) मन में तरंगें बे-फ़ायदा, और फ़िज़ूल दुनिया की चाहों की न उठावे ;

(८) जो कोई संसारी चिंता या फ़िक्र या दुख, मन में आवे तो उसका रूप न बन जावे । जहाँ तक बने, विचार करके उस ख़्याल को हटावे और राधास्वामी दयाल की मौज का आसरा ले । और जो वह न हटे तो मुनासिब है कि उस वक़्त प्रार्थना के साथ ध्यान या भजन में बैठ जावे और उस रोज़ ज़्यादा तवज्जह और होशियारी के

साथ अभ्यास करके अपनी चिन्ता या दुख को राधास्वामी के चरणों में अर्ज़ करे, पर जवाब न माँगे। और बाहर जो तद्‌बीर या जतन, दस्तूर के मुवाफ़िक मुनासिब होवे, वह उस के हटाने या दूर करने के वास्ते करे। पर फल उसका मौज के ऊपर छोड़ दे और पहिले ही से अपने मन में विचार करके सीधी और उलटी मौज के साथ मुवाफ़िक़त करने को तैयार हो जावे। इससे यह फ़ायदा होगा कि चिन्ता बार-बार और ज़्यादा नहीं सतावेगी ;

(९) जब सामान ख़ुशी का मयस्सर आवे तब उसमें बहुत न हरषे और न फूले, क्योंकि इस में सुरत फैलती है। उस वक़्त ऐसा ख़्याल करे कि जो अपने मन को सम्हाले रक्खेगा तो उसके अभ्यास में ख़लल न पड़ेगा, और नहीं तो मौज उसके मन को किसी न किसी तरह से उदास करके सम्हालेगी। ऐसा डर और ख़्याल मन में रख कर अपनी सम्हाल करता रहे ;

(१०) जब कभी तबियत बीमार होवे या और तरह की तकलीफ़ होवे जिससे भजन और ध्यान में बैठ न सके, तो जैसे बने, लेटे-लेटे या बैठे-बैठे, मन या चित्त से चरणों का सेवन करता रहे। जो इसका मन या चित्त चरणों में लगा रहेगा, तो वह बीमारी या तकलीफ़ इसको कम व्यापेगी और जो ज़्यादा बीमारी या तकलीफ़ में यह भी न बन पड़े, तो मन से राधास्वामी नाम का सुमिरन ही

करता रहे और संग-संग थोड़ा-बहुत स्वरूप का भी ख़्याल रक्खे। इस तरह से भी तकलीफ़ ज़रूर थोड़ा-बहुत कम हो जावेगी ;

(११) जहाँ तक बन सके, किसी आदमी या जानवर या चीज़ में अपने चित्त का बंधन हद से ज़्यादा न करे, क्योंकि ज़्यादा बंधन में दुख-सुख ज़्यादा भोगना पड़ता है और अपना ख़्याल भी बँटा हुआ रहता है और भजन या ध्यान में कम सिमटता है ;

(१२) हर एक के साथ जिन से इसको काम पड़े, जहाँ तक मुमकिन होवे, मुलायमत या दीनता या प्यार के साथ बर्ताव करे। सो मुलायमत तो उनके साथ जो अपने से छोटे हैं, जो बराबर के हैं उनके साथ प्यार, और जो बड़े हैं उनके साथ दीनता ;

(१३) अपने मतलब के वास्ते किसी को न दुखावे, बल्कि जहाँ तक बन सके, सुख पहुँचाना चाहिए और जो कोई ऊँच-नीच बचन कहे, तो जहाँ तक मुनासिब होवे, उसकी बर्दाश्त करे, और किसी के साथ झगड़ा न पैदा करे। और जो अपना थोड़ा सा नुक़सान भी होवे तो भी जहाँ तक मुनासिब होवे, उसका सोच और ख़्याल न करे और अपनी तबीयत को झगड़े-बखेड़े और तकलीफ़ से बचाता रहे।

मंसा बाचा कर्मना, सब को सुख पहुँचाय।
अपने मतलब कारणे, दुक्ख न दे तू काय ॥ १ ॥

जो सुख नहिं तू दे सके, तो दुख काहू मत दे ।
ऐसी रहनी जो रहे, सोई शब्द रस ले ।। २ ।।

(१४) और जब अभ्यास में बैठे तो जो उस वक़्त विरह या प्रेम अंग नहीं है, तो अपनी कसरों के ऊपर ख़्याल करके, चित्त में दीनता लाकर प्रार्थना करता हुआ भजन करे, तो ज़रूर थोड़ा-बहुत मन स्थिर होकर रस पावेगा, क्योंकि जब मन का अंग दीन हुआ, उसी वक़्त थोड़ा-बहुत प्रेम अंग जागेगा । और जब प्रार्थना का असर दिल पर हुआ, उसी वक़्त प्यार अंग थोड़ा-बहुत पैदा हो जावेगा, तो उस तरफ़ से भी दया आवेगी ; और

(१५) मुनासिब है कि अपने मन की थोड़ी-बहुत चौकीदारी करता रहे कि फ़िज़ूल तरंगें न उठावे, और जो उठें तो उनको जल्द हटाता रहे, और जहाँ तक बन सके, दूसरों की कसरों पर नज़र न डाले और किसी पर तान न लगावे । हमेशा अपनी कसरों को देखता रहे और उनके दूर करने का जतन करता रहे । लेकिन जो कोई कि इसके सुपुर्द हैं या इसके साथ प्यार-भाव रखते हैं या इसके बचन को मुहब्बत के साथ सुनते हैं, तो उनको प्यार के साथ ख़ौफ़ दिला कर या जिस तौर से मुनासिब होवे, समझावे और कसरों के दूर करने का जतन बतावे । या जो कोई कि इसके संग में हैं और उनकी कोई चाल-ढाल इस क़िस्म की है कि जिससे बहुत हर्ज और नुक़सान होता

मालूम पड़ता है तो उनको एकांत में, या जिस तरह पर मुनासिब हो, समझाना वास्ते उस चाल के छोड़ने के और नसीहत करना दुरुस्त है। और जो वे न मानें तो उन के संग से जिस तौर से मुनासिब होवे, अपने तईं हटा ले और अपना बचाव कर लेवे ॥

यह थोड़ा सा हाल रहनी का बयान किया गया है। जो कोई परमार्थी है, वह अपनी हालत के मुआफ़िक़ हर जगह और हर वक़्त और हर काम में राधास्वामी दयाल की दया की तरफ़ नज़र रख कर जैसी-कुछ सम्हाल दरकार है, अपने आप विचार कर के कर सकता है। इस वास्ते इस मामले में कोई क़ायदा ख़ास मुक़र्रर नहीं हो सकता। हर एक आदमी अपने निर्मल मन और बुद्धि से थोड़े विचार के साथ हर एक काम में भलाई और बुराई आप समझ सकता है। और जो यह परमार्थी है, तो परमार्थ के क़ायदे के मुआफिक़ जिस तरह इसको अपने और पराये के साथ बर्ताव करना चाहिए, यह आप समझ कर मुनासिब तौर पर कर सकता है। थोड़ा सा दया भाव और कोमलता हृदय में होनी चाहिए। बाक़ी राधास्वामी दयाल की दया से सच्चे परमार्थी की सम्हाल आप हर हालत में होती रहेगी ॥

———

बचन ग्यारहवाँ

संत सतगुरु की महिमा और सुरत-शब्द अभ्यास की बड़ाई

१—सब लोग मालिक की तलाश में टटोलवाँ चले हैं। जिसको जहाँ तक का भेद मालूम हुआ, उसी को उसने सिद्धान्त समझा। और सच्चे मालिक का पता सिवाय संतों के, किसी को नहीं मिला। अक्सर लोग समझते हैं कि प्राण की साधना से सच्ची मुक्ति हासिल हो सकती है और तीन लोक के मालिक का दर्शन मिल सकता है। लेकिन प्राण की साधना गृहस्थी जीवों से तो बिल्कुल नहीं हो सकती, क्योंकि उसके संयम यानी पर-हेज़ ऐसे हैं कि जब तक गृहस्थी घरबार और रोज़गार को छोड़ कर अलेहदा न हो जावे, तब तक कुछ अभ्यास नहीं बन सकता। और फिर अभ्यास में ज़रा सी भी बद्-परहेज़ी से ख़ौफ़ बहुत हैं—या तो कोई बीमारी ऐसी लग सकती है कि जन्म भर न जावे या फ़ौरन मृत्यु हो सकती है। जब गृहस्थियों से यह अभ्यास न बन सका तो गोया बड़ा हिस्सा जीवों का तो उद्धार के क़ाबिल नहीं हुआ। अब विरक्त जो जवान हैं, उनसे तो कुछ बन भी सकता है, पर वे भी उसके सख़्त संयम और परहेज़ वग़ैरा से लाचार होकर रह गये, और जो बूढ़े हैं, उनसे तो बिल्कुल नहीं बन सकता। जब परमार्थ का ऐसा हाल देखा, तब सब

जीव कर्म-धर्म और मूर्ति-पूजा और तीर्थ-व्रत वग़ैरा में लग गये और कोई २ थोड़ी विद्या हासिल करके उस में मग्न हो गये। पर सच्चे मालिक का पता और सच्चे पद की प्राप्ति की जुगत किसी के हाथ नहीं लगी। कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल ने जीवों के उद्धार का दरवाज़ा बंद देख कर आप संत सतगुरु रूप धर कर संसार में आकर अपना निज भेद आप प्रकट किया। और वह निज भेद किसी मत की पुरानी किताब में नहीं है। शब्द की महिमा सब मज़हबों में गाई गई है। और शब्द की जुगत हिन्दुओं और मुसलमानों के मज़हबों में थोड़ी-बहुत बयान की गई है, पर प्राण के रोकने के साथ। इस सबब से वह जुगत, किसी बिरले से बन पड़ी, पर आम लोग उसकी कमाई न कर सके, और इस वास्ते उनका उद्धार या मुक्ति नहीं हुई। कुल्ल मालिक ने सतयुग, त्रेता और द्वापर युगों में इस तरफ़ तवज्जह कम की, क्योंकि सब जीव माया के सामान के साथ खुश थे, यानी उस वक़्त में लोग ऐसे दुखी न थे, जैसे कि अब रोग, शोक और निर्धनता के सबब से दुखी हैं। और जब तक कोई दुख न होवे, तब तक जीव को चेत नहीं होता। अब इस वक़्त घोर यानी सख़्त कलयुग में लोग दुखी और रोगी और शोकी बहुत हैं, और माया के पदार्थों का विस्तार तो बहुत हुआ है, मगर निर्धन लोग बहुत हैं। इस सबब से वह सामान माया का हाथ नहीं आता और फिर उम्र भी कम हो गई है। ऐसी हालत देख कर, कुल्ल मालिक ने इस कलयुग में आप औतार

धर कर अपने मिलने की जुगत ऐसी आसान कर दी कि जिसमें प्राण रोकने की कुछ ज़रूरत नहीं, और ऐसा अभ्यास बतलाया कि जो सौ वर्ष का बुड्ढा भी कर सके और आठ वर्ष का लड़का भी कर सके, और हर उम्र के मर्द और औरत लेटे-लेटे और बैठे-बैठे कर सकते हैं ।

२—अब समझना चाहिए कि आदमी का रूप चित्त यानी तवज्जह है । जहाँ जिस का चित्त है, वहीं वह आप मौजूद है । जब किसी ने भेद लेकर अपनी पूरी तवज्जह कुल्ल मालिक के चरणों में लगाई, तो वह उस वक़्त वहीं यानी चरणों में मौजूद है और वहीं शब्द भी मौजूद है । शरीर जहाँ पड़ा है, वहीं पड़ा है । आँख इन्द्री से दृष्टि बाहर की तरफ़ जाती है और सूरतों को देखती है और कान के वसीले से बाहर का शब्द सुना जाता है । और जब कि आँख और कान दोनों बन्द करके और अन्तर का भेद ले कर, तवज्जह चरणों में लगाई तो जो आवाज़ आसमानी अन्तर में हो रही है और जिसकी धार हर वक़्त जारी है, वह आसानी से सुनने में आ सकती है और मालिक के नूर का जलवा भी दिखलाई दे सकता है । और इसी आवाज़ को पकड़ कर सुरत, दर्जे-ब-दर्जे ऊपर को चढ़ कर एक दिन राधास्वामी के चरणों में पहुँच सकती है । जितने रास्ते में ठेके या स्थान हैं, उतनी ही आवाज़ें भी हैं । उनका भेद संत सतगुरु या उन के साध या ख़ास सतसंगी से मिल सकता है ॥

३—संत सतगुरु, ख़ास मालिक का औतार हैं या

उसके ख़ास मुसाहिब हैं और कभी उस से जुदा नहीं रहते। अगर थोड़ी देर के वास्ते जुदा भी दिखलाई देते हैं, तो सिर्फ़ जीवों के उपकार के वास्ते, मगर असिल में वे कभी जुदा नहीं होते। हर हालत में इधर भी हैं और उधर भी हैं, यानी उनकी सुरत की डोरी थोड़ी-बहुत हर वक़्त कुल्ल-मालिक के चरणों में लगी रहती है। सिवाय उनके, या उनके साध या ख़ास सतसंगी के, कुल्ल मालिक और उसके धाम का भेद कोई नहीं दे सकता है और सुरत और शब्द का लखाव खोजी और दर्दी परमार्थी को इस तौर पर कि उसके चित्त में बचन ब-ख़ूबी समा जावे और तसल्ली हो जावे, दूसरा नहीं कर सकता॥

४—शब्द, असली जौहर की धार है और वही सुरत की धार है यानी जहाँ पर कि वह धार आकर ठहरी, उसी को 'सुरत' कहा जा सकता है, और जब वहाँ से ब-दस्तूर फिर धार जारी हुई, तब उसी का नाम 'शब्द' हुआ और वह धारें 'शब्द' ख़्वाह 'सुरत' की धार कहलाईं। देह में शब्द और सुरत की कार्रवाई का एक दृष्टांत दिया जाता है, उस से कुछ हाल उस कार्रबाई का समझ में आ सकता है। और वह दृष्टाँत यह है—

५—जैसे कपड़ा बुनने की कल में या रेलवे या किसी और कारख़ाने में जहाँ एन्जिन से काम लिया जाता है, एन्जिन ऊँचे के मकान में लगाया जाता है और वहाँ से एक बड़ी धार पहले बड़े रस्से पर आती है, और उस बड़े

रस्से से छोटी छोटी रस्सियों पर, जो कितनी ही कलों से लगी हुई हैं, वह धार आती है और उस धार की ताक़त से सब कलें छोटी और बड़ी चलती हैं। पर यह क़ुव्वत की धार जो कार्रवाई करती है, दिखाई नहीं देती। अगर रस्सो टूट जावे तो धार का आना और उस कल का काम जिस से रस्सी बँधी थी, बन्द हो जावे। लेकिन यह रस्सी आप धार या धार की क़ुव्वत नहीं है। यह तो औज़ार है जिसके ऊपर धार सवार होकर आती है॥

६—इसी तरह से आदमी की देह में भी रगें हैं और उन्हीं रगों में होकर रूह की धार मस्तक से आती है और देह के अंग अंग को, जो एक एक कल के मुवाफ़िक़ है, ताक़त देती है। यह धार भी नज़र नहीं आती, लेकिन उसकी कार्रवाई से उसका शरीर में आना मालूम पड़ता है, जैसे जब कोई सोते से जागा और कुछ काम करने लगा तो मालूम हुआ कि शरीर में रूह की धार आई। इन्द्रियों की कार्रवाई से रूप की धार का देह में आना मालूम होता है। इसी तरह जब बच्चा पैदा होता है, तब जो वह शब्द करता है, उससे मालूम होता है कि वह ज़िन्दा पैदा हुआ और जान की धार उसका देह में आई और नहीं तो वह मुरदा समझा जाता है॥

७—अब मालूम करना चाहिए कि सुरत और शब्द उस जौहर का नाम है जिसके सबब से तमाम शरीर में चैतन्यता और ताक़त फैली हुई है। सिर्फ़ आवाज़ का नाम शब्द नहीं है॥

८—कोई अजान लोग कहते हैं कि शब्द, आकाश का गुण है। यह लोग शब्द को सिर्फ़ आवाज़ समझते हैं। यह उनकी बड़ी भूल है। क्योंकि वह जौहर जिसको संतों ने 'शब्द' करके पुकारा है, आकाश की जान और उसका चैतन्य करने वाला है। उस जौहर यानी उस शब्द का कोई ख़ास रूप नहीं है और न उस में रंग और रेखा है। वह अकह, अपार और अनंत है और वही कुल्ल का कर्त्ता है। शब्द से ही कुल्ल रचना ज़ाहिर हुई और उसी के बल से ठहरी हुई है, और उसी की ताक़त और चैतन्यता तमाम रचना में है। उसी की धारें इन्द्रियों और देह को ताज़ा कर रही हैं और वह शब्द घट घट में मौजूद हैं। जो कोई अपने अन्तर में संतों के बचन के मुवाफ़िक़ ध्यान व तवज्जह करे, वह उस धार की आवाज़ को सुन कर और उस धार से मिल कर, उसका आनन्द ले सकता है॥

९—इस देह में दस इन्द्रियाँ, चार अंतःकरण और पाँच दूत यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की धारों ने बहुत भारी शोर डाल रक्खा है। इनकी तरफ़ से तबीयत जब किसी क़दर हटे, तब शब्द सुनाई दे। इस तरफ़ से तवज्जह को हटाना और उस तरफ़ को जाना, इस को 'शौक़' कहते हैं। जिस क़दर यह शौक़ बढ़ता जावेगा, उसी क़दर शब्द साफ़ २ और ऊँचे देश का सुनाई देगा और आनन्द बढ़ता जावेगा॥

बचन बारहवाँ

भेद नाम का

१—नाम की दो क़िस्में हैं; ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक। ध्वन्यात्मक उसको कहते हैं, जिसकी धुन घट घट के आकाश में आप ही आप हो रही है और वर्णात्मक वह है कि जो ज़बान से बोला जावे और लिखने में आवे। वर्णात्मक नाम, ध्वन्यात्मक नाम का लखाने वाला है यानी उसका स्वरूप है, जिस क़दर कि बोलने में आ सकता है ॥

२—ध्वन्यात्म नाम के तीन दर्जे हैं, उसी मुवाफ़िक़ जैसे कि संतों ने कुल्ल रचना के, तीन दर्जे मुक़र्रर किये हैं। पहले दर्जे का ध्वन्यात्मक नाम वह है कि जो निर्मल चैतन्य देश यानी संतों के देश में गाज रहा है, और वह "राधास्वामी" नाम है कि जो कुल्ल और सच्चे मालिक का नाम है और जो आदि धार के साथ अनामी पुरुष से प्रगट हुआ और जिसकी धुन ऊँचे से ऊँचे देश में, जिसको राधास्वामी धाम कहते हैं, आप ही आप हो रही है। इस नाम के अर्थ यह हैं कि 'राधा' आदि सुरत या आदि धुन या आदि धारा का नाम है और 'स्वामी' कुल्ल मालिक है, कि जिस में से कि वह धुन या धारा निकली। दूसरा नाम इसी दर्जे में "सत्तनाम" सत्तपुरुष है, जहाँ से दो धारें निरंजन और जोत की निकलीं और जिन्होंने नीचे उतर कर ब्रह्मांड की रचना करी ॥

३—दूसरे दर्जे का ध्वन्यात्मक नाम ओंकार है। इस दर्जे में निर्मल चैतन्य और निर्मल माया की मिलौनी

है। इसी को अनहद शब्द और मूल नाद कहा है। इसी से हिन्दुओं के सूक्ष्म वेद की धुन, कि जो लिखने में नहीं आ सकती है, प्रगट हुई और इसी में से तीन लोक की रचना का मसाला निकला और इसी को ओंकार पुरुष कहते हैं। इस नाम का, वेद मत की महा प्रलय और संतों की प्रलय में, अभाव हो जाता है। पर सत्तपुरुष और राधास्वामी नाम हमेशा क़ायम रहते हैं। वहाँ किसी दर्जे की प्रलय या महा प्रलय का असर नहीं पहुँच सकता।

४—रचना के तीसरे दर्जे में भी जहाँ कि निरमल चैतन्य और मलीन माया की मिलौनी है, ध्वन्यात्मक नाम है। पर यह नाम सुरत यानी जीव चैतन्य कि जिसको बैराट स्वरूप कहते हैं उसके और मन के नाम हैं। और संत मत में इनका अभ्यास नहीं कराया जाता क्योंकि सुरत की बैठक छठे चक्र में है जोकि तीसरे दर्जे का सिर या चोटी है और उसके ऊपर से संतों का अभ्यास शुरू होता है। ओंकार पुरुष को गुरु और सत्तनाम सत्तपुरुष को सतगुरु और राधास्वामी को कुल्ल मालिक कहते हैं॥

५—इस से ज़ाहिर है कि राधास्वामी नाम सच्चे कुल्ल मालिक का सबसे ऊँचा और गहरा और पूरा नाम है। जो कोई अपना सच्चा और पूरा उद्धार चाहे, वह बग़ैर धुर धाम में पहुँचने के, नहीं हो सकता है और जब तक राधास्वामी नाम को अपने हृदय में नहीं बसावेगा और उसकी धार को पकड़ कर और रास्ते की मंज़िलों का भेद लेकर, और इस नाम को अपना साथी बना कर नहीं

चलेगा, तब तक काल और माया के जाल और विघ्नों से बचाव और धुर धाम में पहुँचना नहीं हो सकेगा। जैसे कि आदि में धुर स्थान से धार प्रकट होकर नीचे उतरी और किसी ठिकाने पर ठहर कर वहाँ की रचना उसने करी, इसी तरह उस स्थान से भी धार प्रकट हुई और ब-दस्तूर नीचे उतर कर दूसरे ठेके पर ठहरी और फिर वहाँ, पहिले स्थान के मुवाफ़िक़ रचना हुई और फिर वहाँ से धार नीचे को आई, इसी तरह जैसे कि ठेके और स्थान धुर धाम से सुरत के मक़ाम तक रचे गये, वही इस तरफ़ से चलने वाली सुरत के वास्ते मंज़िलें मुक़र्रर हुईं। और हर एक स्थान का शब्द जुदा-जुदा है। जो कोई संत सतगुरु या उनके निज सतसंगी अभ्यासी से भेद इन मंज़िलों और उनके शब्दों का लेकर विरह और प्रेम अंग के साथ उन शब्दों की धार, धुन को (जिसको ध्वन्यात्मक नाम कहते हैं) पकड़ कर चले, वही एक दिन आहिस्ता-आहिस्ता धुर मक़ाम तक पहुँच सकता है। राधास्वामी नाम जो कि मुराद आदि धुन या धार से है, वह कुल्ल नीचे के शब्दों की धार या धुन की जान है यानी उन सब शब्दों की धार के अंतर्गत वह धुन या धार मौजूद है। लेकिन वह, जिस क़दर धुर धाम से दूरी होती गई और जैसे मंडल में होकर उसका गुज़र हुआ, वैसे ही नीचे के चैतन्य और माया के ख़ोलों में गुप्त होती चली आई। इस वास्ते राधास्वामी मत के अभ्यासियों को मुनासिब और ज़रूर है कि राधास्वामी नाम को अगुवा करके अंतर में अभ्यास

करें तो उस धुन या धार के साथ जो रास्ते के हर एक स्थान के शब्द से प्रकट हुई है, मेल होता जावेगा और उस धार को पकड़ कर सहज में सुरत चढ़ती जावेगी और आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन राधास्वामी के चरणों में पहुँच कर अपने निज मालिक का दर्शन पावेगी ॥

६—वर्णात्मक नाम के अभ्यास से, जो क़ायदे के ब-मुजिब हो और दुरुस्ती से किया जावे, सफ़ाई हासिल होगी, और ध्वन्यात्मक नाम के अभ्यास से सुरत यानी रूह आकाश में यानी घट में ऊँचे की तरफ़ चढ़ेगी। लेकिन आज-कल ध्वन्यात्मक नाम का भेद, और जुगत उसके अभ्यास की, सिवाय राधास्वामी मत के अभ्यासियों के, और किसी मत में जारी नहीं है। वर्णात्मक नाम का अभ्यास अलबत्ता कर रहे हैं, लेकिन वह भी बग़ैर भेद और जुगत के। इस सबब से सफ़ाई का भी फ़ायदा जैसा कि चाहिए, उनको हासिल नहीं होता।

७—जो वर्णात्मक नाम कि आज-कल मशहूर हैं, वे दूसरे या तीसरे दर्जे के नाम हैं, और जो अभ्यास कि लोग कर रहे हैं, वह या तो ज़बानी सुमिरन है, बग़ैर पते नामी और उसके रास्ते के, या स्वाँसा से जाप करते हैं और या हृदय और नाफ़ के मक़ाम पर उसका उच्चारण शुरू करते हैं। मगर इन सब सूरतों में ठीक-ठीक पता नामी और उसके धाम और उसके रास्ते का किसी को मालूम नहीं। इस सबब से इस क़िस्म के अभ्यासियों को मेहनत और वक़्त मुफ़्त बर्बाद जाते हैं, और कुछ असर नाम के अभ्यास

का उनके दिल पर नहीं होता, यानी नामी की मुहब्बत और उसके मिलने का शौक़ पैदा नहीं होता। इस तरह पर चाहे कोई लाखों नाम लेवे पर उससे कुछ फ़ायदा परमार्थी नहीं उठा सकता है। जो वर्णात्मक नाम का अभ्यास जुगत के साथ और नामी का पता मालूम करके किया जावे तो जल्द अंतर में सफ़ाई हासिल होती हुई मालूम पड़े और मन में शौक़ भी पैदा हो। यह जुगत राधास्वामी मत में बहुत खोल कर समझाई जाती है और उसका फ़ायदा भी अभ्यासियों को जल्द मालूम होता है॥

८—अब जो कोई अपना सच्चा उद्धार चाहे, उसको मुनासिब है कि वर्णात्मक और ध्वन्यात्मक नाम का अभ्यास, राधास्वामी मत की जुगत के मुवाफ़िक़, शुरू करे तो कोई दिन में, उसको, अपने अंतर में इस अभ्यास से मुक्ति प्राप्त होने का यक़ीन हो जायगा और सच्चे मालिक के चरणों में प्रेम दिन-दिन बढ़ता जावेगा।

९—सब मतों में नाम की महिमा कही है और हिन्दुओं के मत में ख़ास कर लिखा है कि बग़ैर नाम के उद्धार नहीं होगा। मगर लोग नहीं जानते कि यह महिमा किस नाम की है और कौन जुगत से उसका अभ्यास करना चाहिए जिससे सच्ची मुक्ति हासिल हो। अब यह भेद खोल कर कहा जाता है कि जिस नाम की ऐसी महिमा हिन्दू और मुसलमान और और मतों में कही गई है, वह ध्वन्यात्मक नाम संतों के दूसरे दर्जे यानी ब्रह्मांड के

धनों का नाम है और जिस नाम की संतों ने महिमा कही है, वह ध्वन्यात्मक नाम संतों के अव्वल दर्जे यानी निर्मल चैतन्य देश का है। इन नामों की आवाज़ को अंतर में चित्त देकर सुनना और उनकी धार को पकड़ कर दर्जे-ब-दर्जे चढ़ना, यह सुरत-शब्द का सच्चा अभ्यास है। जो कोई इस तौर से अभ्यास करे, वह थोड़े दिन में आहिस्ता-आहिस्ता अपने उद्धार होने का सबूत अपने अंतर में देख सकता है, और वर्णात्मक नाम, बे-ठिकाने, चाहे उम्र भर जपा करे, कुछ हासिल नहीं होगा॥

१०—जो कोई दूसरे दर्जे यानी ब्रह्मांड के ध्वन्यात्मक नाम का अभ्यास राधास्वामी मत की जुगत के मुवाफ़िक़ करेगा और उससे आगे चढ़ने का, यानी सत्त-पुरुष राधास्वामी के चरणों में पहुँचने का, इरादा नहीं रखता है, तो उसका भी पूरा उद्धार नहीं होगा, यानी जन्म-मरण उसका, चाहे बहुत देर बाद होवे, जारी रहेगा। इस वास्ते सबको चाहिये कि पहले और दूसरे दरजे के ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक नाम का भेद और जुगत लेकर अभ्यास में लगें तो कार्य पूरा होवेगा॥

११—मालूम होवे कि ब्रह्मांड के ध्वन्यात्मक नाम को लक्ष और वर्णात्मक को वाच्य स्वरूप ब्रह्म का कहते हैं॥

१२—सिवाय ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक नाम के, जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ, एक और क़िस्म के नाम भी हैं

जिनको कृत्तम कहते हैं यानी जो करतूत के ब-मूजिब नाम रक्खे गये, जैसे गोपाल, गिरधारी, वग़ैरा। यह नाम जिस वक़्त कि वह करतूत ख़त्म हुई, जाते रहते हैं और कर्ता भी उस काम का गुप्त हो जाता है। फिर ऐसे नामों के जपने से कुछ भी परमार्थी यानी जीव के उद्धार का फ़ायदा नहीं हो सकता। मगर लोग इस बात से बिलकुल बे-ख़बर हैं। और मालूम होवे कि जितने नाम तीसरे दर्जे के हैं, वे सब थोड़े बहुत इसी क़िस्म के हैं। इनके जाप से चाहे थोड़ी-बहुत सिद्धि और शक्ति हासिल हो जावे, पर वे ऐसे अभ्यासी को, मन और माया यानी काम और क्रोध और मान-बड़ाई के चक्र में डाल कर तहतुलसराय, यानी चौरासी जोनों में भरमावेंगे ॥

बचन तेरहवाँ

सतसंग की महिमा

१—सतसंग की महिमा सब मतों में वर्णन की है, पर बहुत थोड़े लोग हैं जो इसकी क़दर जानते हैं। बहुत से लोग तो यह भी नहीं जानते कि सतसंग किसको कहते हैं। तीर्थों और मन्दिरों में बे-शुमार लोग जाते हैं पर सतसंग का खोज और उसमें शामिल होने की चाह किसी के दिल में मालूम नहीं होती। इन कामों में फल बहुत कम है और जो कुछ है भी, वह सैर और तमाशे में जाता रहता है ॥

२—सतसंग का फ़ायदा बहुत ज़्यादा है पर लोगों को उसकी क़दर और चाह बहुत कम है। सच तो यह है कि जब तक कोई संतों का गहरा संग नहीं करेगा और उनके बचनों को चित्त देकर नहीं सुनेगा और उन बचनों का मनन और विचार करके अपने फ़ायदे की बातों को छाँट-कर, थोड़ा या बहुत, उनके मुवाफ़िक़ बरताव नहीं करेगा तब उक उस पर परमार्थ का रंग किसी तरह नहीं चढ़ेगा और न उसके मन और बुद्धि की हालत बदलेगी और न उसका चलन दुरुस्त होगा। इस वास्ते सब जीवों को ज़रूर चाहिए कि अपने शहर में और जहाँ कहीं कि वे जावें, सतसंग का खोज कर के उस में जिस क़दर बन सके, शामिल होकर उससे फ़ायदा उठावें॥

३—अब समझना चाहिये कि सतसंग किसको कहते हैं। संतमत अथवा राधास्वामी मत में सतसंग नाम ऐसी सभा और संगत या जलसे का है, जहाँ कि सच्चे मालिक का निर्णय और उसकी महिमा और उस से मिलने के सच्चे रास्ते और जुगत का बयान होता होवे, और राजाओं और सूरमाओं और दातारों की तारीफ़ और हाल का ज़िक्र न होवे, और मुखिया ऐसी संगत के संत सतगुरू या साध गुरू होवें या उनका निज सतसंगी, जो प्रेम और सचौटी के साथ अभ्यास कर रहा हो, होवे, क्योंकि ऐसा सतसंग, बग़ैर संतों की मदद के जोकि आप मालिक से मिल रहे हैं या मिलने के लिए सच्चा अभ्यास कर रहे हैं और अपने तन, मन और इन्द्रियों को साधना के बल से पूरा २

या किसी क़द्र क़ाबू में लाये हैं, नहीं चल सकता और न किसी को उससे जैसा कि चाहिए, फ़ायदा हासिल हो सकता है ॥

४—ज़ाहिर है कि जिस ने जिस बात की कमाई आप करली है, वह उस को दूसरों को भी अच्छी तरह समझा सकता है और कमाई भी करा सकता है और उसके बचन में भी किसी क़द्र असर होगा। और जो कि विद्या और बुद्धि की मदद से महात्माओं की बानी और बचन को पढ़ कर सुनाते और समझाते हैं, न तो उनका बचन ठीक और दुरुस्त हो सकता, और न वे किसी को उसकी कमाई की जुगत बता सकते हैं और न कमाई करने वाले को मदद दे सकते हैं, बल्कि अंतर के भेद को, जिससे कि वे आप बिल्कुल ना-वाक़िफ़ हैं, उल्टा-पुलटा बयान करके लोगों को ग़लती में डालेंगे और कर्म-धर्म में भरवावेंगे। इस वास्ते उनका संग, सतसंग नहीं है, बल्कि सच पूछो तो कुसंग में दाख़िल है ॥

५—अब मालूम करना चाहिए कि जहाँ संत सतगुरु या साधगुरू बिराजते हैं या उनका कोई निज सतसंगी, सतसंग का मुखिया है तो वहाँ ज़रूर सच्चे मालिक का निर्णय होगा और यह भी बयान होगा कि किस तरह उसके चरणों में सच्चा प्रेम और भक्ति पैदा होवे, और कैसे वह दिन-दिन बढ़ती जावे, और कौन जुगत और अभ्यास से मन और इन्द्रियों का ज़ोर कम होवे, और दुनिया और उसके

सामान की चाह और क़दर किस तरह दिन-दिन हलकी होती जावे, और किस तौर से जीवों को व्यवहार और परमार्थ की कार्रवाई करनी चाहिए कि जिससे उनके पिछले कर्म कटते जावें और आयंदा को उनके सिर पर दुखदाई और फिर जन्म दिलाने वाले कर्म न चढ़ते जावें ॥

६—जब ऐसा सतसंग जीवों को मिले और वे चित्त देकर सच्चे शौक़ के साथ बचनों को सुनें, तब ज़रूर उनको परमार्थी समझ दिन-दिन बढ़ती जावेगी, और दुनिया और उसके भोगों का भाव और प्यार आहिस्ता-आहिस्ता घटता जावेगा, और जो जो भूल और भ्रम और उल्टी-पुल्टी समझ संसारियों और अनेक तरह के लोगों का संग करके उनके दिल में समाई हुई हैं, आहिस्ता-आहिस्ता दूर होती जावेंगी, और नाशमान और दुखदाई पदार्थों में उनकी पकड़ ढीली और कम होती जावेगी, और प्रेमी और भक्तिवान लोगों के साथ जो सच्चे मालिक के सच्चे चाहने वाले हैं और ख़ुद सच्चे मालिक के चरणों में, जोकि सर्व-ज्ञान और सर्व-आनन्द और सुखों का भंडार है, दिन-दिन प्रीति और प्रतीत बढ़ती जावेगी, और पाप कर्मों से, सच्चे मालिक का ख़ौफ़ करके, तबीयत हटती जावेगी। और जब ऐसे सतसंगियों को भेद रास्ते का घट में, और जुगत मालिक के चरणों में पहुँचने की सुनाई जावेगी तो वे शौक़ और उमंग के साथ उसके अभ्यास में लगेंगे और अंतर में रस और स्वाद अभ्यास का उनको आता जावेगा और सच्चे मालिक की दया की, जैसी कि वह सच्चे प्रेमियों के ऊपर

अपनी कृपा से करता है, अपने अन्तर में परख आती जावेगी। और तब सच्चा यक़ीन आहिस्ता-आहिस्ता मालिक की हर वक़्त अपने अन्तर में मौजूदगी का, और हाज़िर-नाज़िर होने का दिल में पैदा होता जावेगा, और तब ही वे सच्चा ख़ौफ़ और सच्चा प्यार मालिक का अपने दिल में लाकर सचौटी के साथ बुरे कामों से परहेज और नेक कामों में कोशिश और पैरवी करेंगे ॥

७—जो कोई थोड़े दिन भी ऐसा सतसंग करेगा तो उस के भर्म ज़रूर दूर हो जावेंगे और अनेक तरह की फ़िज़ूल पूजा और रस्मों में अपना तन, मन, धन वृथा खर्च नहीं करेगा, और धोखा देने वालों के फंदे में नहीं फँसेगा, और तक़लीफ़ और आराम के वक़्त अपने मालिक को भूल कर इधर और उधर चित्त नहीं चलावेगा, यानी उनका मन डावाँडोल नहीं होगा, क्योंकि जिस वक़्त कोई शख़्स अपने मालिक को छोड़कर दूसरों से मदद माँगता है, तो साबित होता है कि या तो उसने अपने मालिक को समर्थ न जाना या उसकी मौजूदगी का यक़ीन उसके दिल में नहीं आया, तो इन दोनों सूरतों में वह शख़्स मुनकिर यानी नास्तिक हो गया। और जो दुनिया की जरा सी तकलीफ़ में ऐसी डावाँडोल हालत हो गई तो आख़ीर यानी मौत के वक़्त की हालत का क्या भरोसा हो सकता है। इस तरह का परमार्थ कुछ कार-आमद नहीं हो सकता है, न जीते जी और न मौत के बाद ॥

८—ग़ौर करके दुनिया का हाल देखने से मालूम होता है कि थोड़ी या बहुत लोगों की ऐसी हालत है। और सबब इसका यह है कि उनको सतसंग नहीं मिलता है और इसी वजह से मन और चित्त उनके हमेशा डावाँडोल रहते हैं, और बजाय मालिक पर यक़ीन और उस से मुहब्बत के, दुनिया का प्यार और ख़ौफ़ दिल में ज़बर समाया रहता है, और परमार्थ और स्वार्थ में अनेक तरह के भर्म और कर्म और संशयों में गिरफ़्तार रहते हैं, और अपने कर्मों का, फल (जो कि मन और इन्द्रियों को चाह के मुवाफ़िक़ पाप और पुण्य का ख़्याल छोड़ कर करते हैं) दुख-सुख भोगते रहते हैं। और अपने जीव के कल्यान के वास्ते कोई काम उनसे नहीं बनता, क्योंकि ख़ुद-मतलबी लोगों के बहकाने से जिस क़द्र परमार्थी काम वे करते हैं, उनमें किसी क़द्र आशा संसार के भोग-बिलास की लगी रहती है। इस सबब से उनका सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है। हमेशा ऊँची-नीची देहों में दुख-सुख भोगते रहेंगे और जन्म-मरण की फाँसी कभी नहीं काटी जावेगी ॥

९—इस वास्ते सब जीवों को, जिन को थोड़ा-बहुत भी दर्द परमार्थ का है, मुनासिब है कि ऐसा सतसंग जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ है, खोज कर, उसमें जिस क़द्र बन सके, शामिल होवें और अभ्यास की जुगत लेकर जितना बन सके, उसकी कमाई करते रहें तो सच्चे मालिक की दया और संत सतगुरु के प्रताप से एक दिन उनका सच्चा उद्धार हो जावेगा यानी जन्म-मरण से छूट कर अपने

निज घर में, जो कि सच्चे मालिक का धाम है, पहुँच कर अमर हो जावेंगे और पर्म आनन्द को प्राप्त होंगे ॥

शब्द

आज करो गुरु संग प्रीति सम्हार ॥टेक॥
मन इन्द्री भोगन में अटके । जगजीवन संग अधिका प्यार ॥ १ ॥
जग की चाह बसी नित मन में । छिन-छिन उसका करत विचार ॥ २ ॥
ऐसे जीव करें जो सतसंग । बचन गुरू नहीं चित में धार ॥ ३ ॥
संशय भर्म धसे उन मन में । जग और कुल की रीति न टार ॥ ४ ॥
सतसंगी अपने को कहते । गुरू भक्ति दई रीति विसार ॥ ५ ॥
गुरू सतसंगी जो समझावें । रूसें निनिंद्या करें पुकार ॥६॥
यह जीव रहते दया से ख़ाली । गुरू को धोखा देत लबार ॥ ७ ॥
उनको भी स्वामी पर्म दयाला । देर अबेर लगावें पार ॥ ८ ॥
याते सच्ची भक्ति कीजे । सोच समझ कर धर गुरू प्यार ॥ ६ ॥
संत मत है सब मतों से ऊँचा । धुर घर का पहुँचावन हार ॥१०॥

सच्चा सीधा सहज अभ्यासा। सहज करे सच्चा उद्धार ॥ ११ ॥

सतसंग कर समझौती लीजे। संशय भ्रम को दूर निकार ॥ १२ ॥

जगत वासना मन से तजना। जग जीवन को मत कर यार ॥ १३ ॥

अनेक तरंग उठें अस मन में। उनको जस तस मन में मार ॥ १४॥

प्रीति प्रतीत बसाओ हिय में। राधास्वामी नाम का कर आधार ॥ १५ ॥

जहाँ-जहाँ प्रीति लगी अब तेरी। वहीं-वहीं हुआ तेरा बंधन यार ॥ १६ ॥

सहज हटाओ मन को वहाँ से। ध्यान धरत गुरू रूप निहार ॥ १७ ॥

जब गुरू चरणन होय दृढ़ प्रीती। शरण धार परतीत सम्हार ॥ १८ ॥

सबसे गुरू जब प्यारे होई। तब कुल मालिक होय दयार ॥ १९ ॥

मेहर करें तुझ पर वे हरदम। सुरत चढ़ावें नौ के पार ॥ २० ॥

एक दिन पहुँचावें धुर घर में। राधास्वामी परम पुरुष दातार ॥ २१ ॥

———

बचन चौदहवाँ

भक्ति की महिमा

१—भक्ति नाम, प्रेम और इश्क़ का है और खैंच शक्ति और मिलाप शक्ति उसका स्वरूप या ज़हूर है। सब रचना प्रेम की शक्ति से प्रकट हुई और उसी के आसरे ठहरी हुई है॥

२—कुल मालिक प्रेम स्वरूप है और सब रचना का भी प्रेम स्वरूप है और प्रेम के आसरे सब काम इस रचना के जारी हैं। बिना प्रेम यानी शौक़ के, कोई आदमी काम नहीं कर सकता। इससे ज़ाहिर है कि बिना प्रेम या शौक़ के, कोई काम न तो दुनिया का दुरुस्त हो सकता है और न परमार्थ का। इस वास्ते संतों ने परमार्थ की कार्रवाई में प्रेम यानी भक्ति की मुख्यता रखी है।

३—भक्ति कुल्ल को पसंद है, क्या आदमी क्या जानवर। और भक्ति से हर कोई राज़ी होता है। प्यार और दीनता, भक्ति और प्रेम का ज़हूरा है, यानी जहाँ सच्चा प्रेम होगा, वहाँ सच्ची दीनता भी ज़रूर होगी। जैसे जिस किसी को धन की सच्ची मुहब्बत और चाह है, वह जहाँ से कि उसे धन प्राप्त होवे, वहाँ सच्ची दीनता के साथ बर्तता है। इसी तरह जिसको जिस चीज़ की सच्ची चाह है, वह उस चीज़ के हासिल करने को, जिस के वसीले से होवे, उसके साथ उस वक़्त सच्ची मुहब्बत और दीनता से पेश आता है॥

४—अब समझना चाहिए कि जिस किसी को सच्चा डर चौरासी और नर्कों का, मन में आया है और दुनिया के हाल और यहाँ के सब सामान के नाशमान होने की कैफ़ियत देखकर सच्ची चाह सच्चे सुख और अमर पद के हासिल करने की पैदा हुई है, वह जब तक कि सच्चे मालिक के साथ और उस शख़्स से, जो कि उसका भेद और उसके मिलने का रास्ता और जुगत बतावे, सच्ची मुहब्बत और दीनता नहीं करेगा, तब तक उस को भेद और रास्ता मालूम नहीं होगा और न सच्चे मालिक से उसका मेल होगा ॥

५—इस वास्ते संतों ने खोलकर कहा है कि जिन मतों में गुरू और मालिक के चरणों में प्रेम और दीनता की मुख्य करके ज़रूरत नहीं वर्णन की है, वे सब मत थोथे और ख़ाली हैं, और मन और बुद्धि के रचे हुए हैं और उन से जीव का कारज कुछ नहीं होगा यानी सच्चा उद्धार और सच्चो मुक्ति प्राप्त नहीं होगी ॥

६—सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति से यह मतलब है कि देहियों के बंधन और उनके संग से दुख-सुख से छुटकारा पाकर, और मन माया के देश से न्यारा होकर, अपने निज देश यानी सच्चे मालिक के चरणों में प्राप्त होवे, जहाँ कष्ट और क्लेश और जन्म-मरण बिल्कुल नहीं है, और पूर्ण आनन्द और परम सुख सदा एक-रस रहता है ।

७—यह भी मालूम होना चाहिए कि जब तक

सच्ची दीनता और भक्ति, कुल्ल मालिक के चरणों में न होगी तब तक कारज पूरा न होगा। और भक्ति के वास्ते नाम, रूप, लीला और धाम भगवंत यानी मालिक का, मालूम होना ज़रूर है। जहाँ तक माया की हद्द है, वहाँ तक जितने नाम और रूप हैं, देर-अबेर वे सब नाशमान हैं। सन्तों का देश माया की हद्द के पार है और वहाँ का नाम और रूप और धाम, अमर और अविनाशी है, और वहीं सच्चे मालिक का स्थान है, और वहीं से आदि धार प्रकट हुई, और उसी से सब रचना उस देश की और फिर तीन लोक की पैदा हुई, और उसी धाम से सुरत यानी जीव अंश आया। इस वास्ते सब को, जो अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं, मुनासिब है कि सच्चे मालिक का भेद लेकर भक्ति और प्रेम उसके चरणों में करें, और जुगत तै करने उस रास्ते की, संत सतगुरु या साध गुरू या उनके निज सतसंगी से दरियाफ़्त करके, प्रीति और प्रतीत और दीनता के साथ अभ्यास करें, तो सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की मेहर और सतगुरु की मदद से, आहिस्ता-आहिस्ता अभ्यास कर के, एक दिन धुर मक़ाम पर पहुँच कर, जीव का सच्चा कल्याण और पूरा कारज हो जावेगा।

८—और जुगत चलने की यह है कि जिस धार पर, सुरत, धुर मक़ाम से उतर कर आई है, उसी धार को पकड़ कर, घर को लौट जावे। और वही धार रूह और जान की धार और प्रकाश और नूर की धार और शब्द की धार है। जो संतों ने शब्द का भेद बताया है, उसी

मुआफ़िक़ धुन को सुनती हुई, सुरत, ऊपर को चढ़ सकती है। इस जुगत को सुरत-शब्द योग कहते हैं और उस के अभ्यास से दिन-दिन सच्चे मालिक के चरणों में मेल होता जावेगा, और इसी अभ्यास का नाम प्रेमाभक्ती है॥

९—जो लोग कि सच्चे मालिक से बे-ख़बर हैं, और सिवाय उसके, औरों की पूजा या भक्ति कर रहे हैं और उनके भी असली नाम, रूप और धाम की ख़बर नहीं रखते, तो ऐसी भक्ति से उनके इष्ट धाम की भी प्राप्ति नहीं होगी, और जो कि नक़ल बना कर पूजा और भक्ति करते हैं, उसका फ़ायदा तो बहुत कम है, और जीव का उद्धार इन दोनों सूरतों में किसी तरह मुमकिन नहीं है। इन से, शुभ कर्म का थोड़ा सा फ़ायदा होगा यानी कुछ सुख मिलेगा, पर जन्म-मरण कभी दूर न होगा।

१०—और जो लोग कि मालिक को अनाम और अरूप और सर्व-व्यापक समझ कर मानते हैं, उनके हृदय में मालिक के चरणों की भक्ति पैदा नहीं होगी, और न कभी उस सर्व-व्यापक स्वरूप से उनका मेल होगा, और न सच्चा उद्धार उनके जीव का मुमकिन है। ये लोग विद्या और बुद्धि के विलास वाले हैं। इन से मन और इन्द्रियों के रोकने और उनको क़ाबू में लाने की जुगत बिल्कुल नहीं कमाई जा सकती है। इस सबब से यह लोग ज़ाहिर में तो बहुत बातें बनाते हैं, पर अन्तर में हमेशा ख़ाली रहते हैं। जिस वक़्त यह लोग मालिक की स्तुति करेंगे या उसकी महिमा गावेंगे, उस वक़्त थोड़ा प्रेम

इनके हृदय में और ज़बान से ज़ाहिर होगा, पर वह ठहराऊ नहीं होगा और न उस की तरक़्क़ी होवेगी, क्योंकि उनका घाट बिना अंतरी अभ्यास के नहीं बदल सकता, यानी हमेशा मन और बुद्धि और इन्द्रियों के घाट पर उन की बैठक रहती है और वह घाट दुनिया की कार्रवाई का है। उस में मालिक का प्रेम थोड़ी देर के वास्ते जब तक उसका ज़िक्र या सिफ़्त करें, आ सकता है। और जब ज़िक्र हो चुका तो फिर ब-दस्तूर दुनियावी हालत में उनका बरताव रहेगा। और वह हालत मालिक के प्रेम से ख़ाली रहती है॥

११–इस वास्ते संत मत ही सच्चा मत है, और जो कोई उस को मानेगा और सुरत-शब्द का अभ्यास करेगा, उस का सच्चा उद्धार होगा। और बाकी जीवों का जन्म मरण और नीच-ऊँच योनियों में चक्कर और फेरा किसी सूरत में बच नहीं सकता है॥

१२–जो कोई सच्चा खोजी और दर्दी है, वह सतगुरु या साध गुरू या संत मत के भेदी से मिल कर, सुरत-शब्द योग की जुक्ति दर्याफ़्त करके, उसके अभ्यास में लग कर, दिन दिन अपने अंतर में आनन्द और रस लेता जावेगा और गुरू राधास्वामी कुल्ल मालिक के चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाता, जावेगा और सच्ची शरण लेकर, कोई दिन अभ्यास करके, अपने उद्धार की सूरत अपने अंतर में आप देखेगा॥

———

बचन पन्द्रहवाँ

सच्ची शरण और सच्ची करनी के लिए किन बातों का पहिले निर्णय करना चाहिये

१—राधास्वामी मत के हर एक सतसंगी को चाहिये कि तीन बातों को अच्छी तरह निर्णय करके समझ ले, और उनकी सच्ची प्रतीत मन में धारण करे, तब सच्ची शरण कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की थोड़ी-बहुत मन और चित्त और सुरत से ली जावेगी, और थोड़ा-बहुत अभ्यास सुमिरन, ध्यान और भजन का सचौटी के साथ बन आवेगा और उससे जीव का कारज एक दिन बन जावेगा ॥

२—वे तीन बातें ये हैं—पहले, प्रतीत इस बात की कि राधास्वामी दयाल कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ हैं और हर वक़्त घट घट में मौजूद हैं। दूसरे, यह कि सुरत यानी जीव उन की अंश है, जैसे सूरज और सूरज की किरण। तीसरे, यह कि बिना सुरत-शब्द के अभ्यास के, और कोई मार्ग धुर पद में सहज और निर्विघ्न तौर से पहुँ-चाने वाला नहीं है, और न इससे बढ़ कर दूसरा रास्ता रचा गया है ॥

३—जब इन बातों की पूरी प्रतीत मन में आ जावेगी और कोई संशय या भ्रम इन के सच्चे होने की निसबत नहीं रहेगा, तब कुछ अभ्यास बन पड़ेगा और उसका फ़ायदा भी अन्तर में मालूम पड़ेगा। फिर थोड़ा-

बहुत सच्चा भाव और सच्चा भय सच्चे मालिक का मन में पैदा होगा और उसी मुवाफ़िक़ जीव का व्यवहार अंतर और बाहर सम्हलता जावेगा और दिन दिन प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जावेगी और आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन पूर्ण प्रेम हासिल हो जावेगा ॥

(४)—अब इन तीनों बातों का निर्णय खोल कर किया जाता है और वह इस दृष्टान्त से अच्छी तरह हर एक की समझ में आ सकता है : (१) देखो किसी दरख़्त का बीज, जैसे दाना ख़शख़ाश (जो कि पोस्त या अफ़ीम का बीज है) किस क़दर छोटा है, पर उस पर तीन तह यानी ग़िलाफ़ चढ़े हुए हैं और उसके अंदर मग़ज़ सफ़ेद रंग का है और उस मग़ज़ के किसी मक़ाम पर उस बीज की रूह, सुरत, का वासा है ॥

(२)—यह ग़िलाफ़ जो तह के मुवाफ़िक़ चढ़े हुऐ हैं, उसके दरख़्त के स्थूल और सूक्ष्म रूप का मसाला लिये हुए हैं। जब उस दाने की रूह या सुरत के मक़ाम से कुला फूटता है, यानी आदि धार सुरत की प्रकट होती है, उसी वक़्त से पाँचों तत्त्व और तीनों गुण और रोशनी और बिजली और खैंच-शक्ति और हटाव-शक्ति और चुम्बक-शक्ति वग़ैरा उस दरख़्त के रूप के बनाव में आपस में रल-मिल कर, सब तरह की मदद देते हैं और आकाश से मसाला खैंच कर उस दरख़्त का पूरा रूप बनाते हैं। और जब तक कि सुरत का उस देह यानी दरख़्त में वासा है, तब तक, ये शक्तियाँ और तत्व और

गुण उसकी ताबेदारी में हाज़िर रह कर, आपस में मेल के साथ कार्रवाई करते हैं। और इन में से कोई २ एक दूसरे के विरोधी भी हैं, पर जब तक सुरत मौजूद है, वह विरोध अंग ज़ाहिर नहीं होता, और जब सुरत देह को छोड़ देती है, तब वह सब आपस में लड़ कर, उस देह के रूप को बिगाड़ देते हैं। और जो मसाला कि आकाश से लिया था, वह भी ज़र्रा ज़र्रा होकर फिर आकाश में मिल जाता है। इसी तरह सब देहियों की रचना का हाल समझ लेना चाहिये। क्या मनुष्य, क्या चौपाये, क्या परिंद, क्या कीड़े-मकोड़े, क्या दरख़्त और बनस्पति—सब के बीज में सुरत, कई तह या ग़िलाफ़ों के अन्दर मग़ज़ में गुप्त रहती है, और जब समय पाकर अपने तईं प्रकट करती है, उसी समय से जिस क़दर रचना का मसाला है और जितनी शक्तियाँ हैं, वे सब उसकी ताबेदारी में हाज़िर रह कर, उसकी रचना के विस्तार में मदद देते हैं। इस से ज़ाहिर है कि यह अंश, समर्थ और ताक़त वाली है और कुल्ल रचना के मसाले और, शक्तियों पर इसका हुक्म है, यानी जिस क़दर रचना कि इस लोक में दिखाई देती है वह सुरत की की हुई है। यानी

(३)—सुरत अंश जो कि किरण रूप होकर सच्चे मालिक के चरणों में से अपनी धार पर सवार होकर इस देश में आई है, वह हर एक देश में बैठ कर कार्रवाई करती है। असल में वही सत्य है, और बाक़ी नाम और

रूप जो नज़र आता है, वह उसके आसरे सत्य मालूम पड़ता है, पर सुरत के देह छोड़ने पर नष्ट हो जाता है ॥

(४)—जब इस किरण रूप सुरत अंश की ऐसी गति है और समर्थता है, और सुरतें बे-शुमार इस रचना में आई हैं, तो वह भंडार जहाँ से सब सुरतें आईं, कुल्ल का मालिक और सर्व-समर्थ और सर्व-आनन्द और सर्व-ज्ञान रूप साबित हुआ ॥

(५)—यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि जिस क़दर आनन्द और रस और स्वाद जीव को इस देह में मिलता है, वह सुरत की धार में है, क्योंकि जो वह धार इन्द्रिय के स्थान पर न आवे तो उस इन्द्रिय के भोगों में कुछ भी रस न मालूम पड़ेगा। इसी तरह जितनी किताबें और इल्म और हुनर और कारीगरी वग़ैरा जो इस लोक में मनुष्य या जानवरों से ज़ाहिर हुईं या होती हैं, उन सब का भंडार वही देहधारियों की सुरत है ॥

(६)—इससे सुरत और कुल्ल मालिक राधास्वामी का आनंद स्वरूप और ज्ञान स्वरूप होना, साबित हुआ, यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी सर्व-समर्थ और महा आनन्द और महा ज्ञान स्वरूप और हर एक घट में मौजूद हैं और यह जीव यानी सुरत उन की अंश है, क्योंकि जो शक्तियाँ कुल्ल मालिक में हैं, वे इस सुरत में भी मौजूद हैं।

(७)—कुल्ल मालिक की मौज से कुल्ल रचना हुई, और हर एक सुरत अंश उसी क़ायदे के मुआफ़िक़, एक

एक पिंड रच कर उसका विस्तार करती है। और पिंड और ब्रह्मांड की रचना एक सी है और एक ही तौर और क़ायदे के ब-मूजिब होती है। सिर्फ़ इतना फ़र्क़ है कि कि वह छोटी है और यह बड़ी है, पर जो दर्जे और कार्रवाई बाहर की बड़ी रचना में जारी हैं, वैसे ही पिंड में भी हैं ॥

(५)—कुल्ल रचना धारों की है। जितनी देह हैं, सब धारों या तारों की बनी हैं। जैसे कपड़ा तारों से बुना हुआ है या दरख़्त के डाले और डालियाँ तारों के मुट्ठे हैं, इसी तरह से मनुष्य की देह, धारों या तारों से बनी हुई है। और यह एक एक तार या रग एक एक नल है, जिन में होकर धार जारी रहती है। यही बनावट कुल देह की है। जब कोई बोलता है तो आवाज़ की धार के वसीले से बोल सुनाई देता है। ऐसे ही दृष्टि की धार के वसीले से दुनिया दिखलाई देती है ॥

(६)—जब कुछ रचना नहीं हुई थी, तब प्रथम कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों से धार प्रकट हुई। यह धार शब्द और ज्ञान और प्रकाश की धार है। इसी से सब रचना ऊपर-नीचे के लोकों की हुई ॥

(७)—कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का तख़्त हर एक के घट में मौजूद है। और वहीं से सुरत यानी ज्ञान की धार उतर कर दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश और ब्रह्मांड और पिंड की रचना करती चली आई, और पिंड में दोनों नेत्रों के मध्य में अन्तर की तरफ़ बैठ कर

मन और इन्द्रिय और अंग अंग को अपनी धारों से ताक़त दे रही है और जो कि सुरत की धार ही आनन्द और रस और स्वाद और ज्ञान की धार है, तो उसी के सबब से रस और आनन्द देह धारियों को इन्द्रियों के द्वारे प्राप्त होता है ॥

(८)—अब जो कोई चाहे कि इस धार के भंडार में जो कि पूर्ण आनन्द और पूर्ण रस और पूर्ण ज्ञान का ख़ज़ाना है, पहुँच कर पर्म आनन्द और हमेशा के सुख को प्राप्त होवे, तो उसको चाहिये कि इस धार को पकड़ कर, उसके भंडार यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी के चरणों में लौट जाय। और सिवाय इसके और कोई जुगत या रास्ता उस भंडार के प्राप्ति का नहीं है ॥

(९)—पिंड में मलीन माया, निरमल चैतन्य के साथ मिली हुई है और इस सबब से यहाँ देहियों का जल्दी भाव और अभाव यानी जन्म-मरण होता है ॥

(१०)—और ब्रह्मांड में शुद्ध माया की, निर्मल चैतन्य के साथ मिलौनी है। वहाँ की रचना की देहियों का बहुत काल पीछे अभाव होता है। और

(११)—निर्मल चैतन्य देश में, जो संतों का अथवा सच्चे मालिक का देश है, सब देहियाँ रूहानी यानी चैतन्य की बनी हुई हैं। वहाँ जन्म-मरण और क्लेश बिलकुल नहीं है। इस सबब से वहाँ का परमानन्द और विलास सदा एक-रस रहता है। इस देश की आज तक किसी मत को, जो दुनिया में जारी हैं, ख़बर नहीं हुई।

उसका हाल और वहाँ पहुँचने की जुगत, शब्द यानी सुरत और जान की धार पर सवार होकर, इस जुग में, दया करके, कुल्ल मालिक ने आप संत रूप धर के बताई। जो कोई अपना सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति चाहे, तो वह सुरत-शब्द योग का अभ्यास करके, निज घर में पहुँच सकता है ॥

(१२)—और जितनी धारें, जैसे प्राण की धार और दृष्टि की धार और अमी की धार हैं, वे सब ब्रह्मांड यानी उस देश से जहाँ कि निरमल चैतन्य की निरमल माया के साथ मिलौनी हुई है, निकली हैं। इन में से किसी धार को पकड़ कर जो कोई चलेगा, वह ब्रह्मांड से आगे नहीं जा सकता है। इस वास्ते उसका जन्म-मरण भी चाहे बहुत काल के पीछे होवे, छूट नहीं सकता और पूर्ण आनन्द, बे-मिलौनी माया के, उसको प्राप्त नहीं हो सकता ॥

(१३)—इस सबब से संतों ने क़तई हुक्म दिया है कि जो अपने जीव का सच्चा कल्यान चाहे, वह शब्द की धार को पकड़ कर चले, तो एक दिन अभ्यास करता हुआ निज घर में पहुँच जावेगा ॥

(१४)—और मालूम होवे कि मालिक को सब कोई अरूप कहते हैं, सो अरूप का ध्यान किसी तरह नहीं बन सकता। पर शब्द जो उस के चरणों से प्रकट हुआ है, वह भी अरूप है। उस शब्द के आसरे मालिक का ध्यान और उस को धार को पकड़ कर, उस के चरणों में पहुँचना,

मुमकिन है। और किसी तरह से न तो उसका ध्यान हो सकता और न वह मिल सकता है ॥

(१५)—सब मतों में कहा है कि आदि में शब्द हुआ और शब्द ही मालिक का स्वरूप है, और शब्द मालिक के संग है, और सब रचना शब्द से हुई। फिर जाहिर है कि जो कोई शब्द की धार को पकड़ कर चलेगा, वह उस पद में, जहाँ से कि आदि में शब्द प्रकट हुआ, पहुँच सकता है। और किसी तरह उस पद की प्राप्ति हरग़िज़ हरग़िज मुमकिन नहीं है।

(१६)—ऊपर की लिखी हुई दलीलों से साफ़ साबित है कि सिवाय सुरत-शब्द के अभ्यास के, और कोई जुगत धुर पद में पहुँचने यानी सच्चे मालिक से मिलने की नहीं है। और जो कि शब्द की धार ही जान और सुरत या रूह की धार है और सुरत या जान से (जो कि कुल्ल रचना की पैदा करने वाली और चैतन्य करने वाली और पालन करने वाली है) बढ़ कर और कोई धार नहीं है, तो इससे साबित हुआ कि सुरत-शब्द योग से बढ़ कर, और कोई जुगत सच्चे मालिक से मिलने की रचना भर में नहीं है। अब जीवों को इख़्तियार है, चाहे इस बात को मानें या न मानें। पर जो कोई सच्चा खोजी और दर्दी परमार्थ का है, वह तो संतों के बचन के मुआफ़िक़ एक सुरत-शब्द योग का अभ्यास करेगा। और जिनके मन में इस लोक या परलोक के भोगों और मान-बड़ाई की चाह है, वे लोग संतों के बचन को नहीं मानेंगे, और अनेक रास्ते

और जुक्तियाँ जो पिंड के ऊँचे देश में अथवा ब्रह्मांड में पहुँचने की हैं, उन्हीं में भ्रमते और भटकते रहेंगे और उन्हीं देशों के आनन्द को पर्म आनन्द और वहाँ के मालिकों को सच्चा मालिक मान कर, उसके आगे जो कि संतों का देश है और जहाँ सच्चे मालिक का दर्शन प्राप्त हो सकता है, चलने और पहुँचने की इच्छा नहीं करेंगे। बल्कि जो उनको समझौती दी जावेगी तो ये लोग, बजाय मानने के वाद-विवाद करेंगे और झूँठी और बे-फ़ायदा तकरार उठा कर संत बचन की परतीत नहीं लावेंगे, और ऐसे जीवों के वास्ते संत मत का उपदेश भी नहीं है ॥

(१७)—जब कि सतसंग में निर्णय करके सच्चे परमार्थी को इन तीन बातों का निश्चय हुआ कि (१) राधास्वामी दयाल कुल्ल और सच्चे मालिक और सर्व समरथ हैं और (२) जीव उनकी अंश है और (३) सुरत-शब्द योग की कमाई से जीव, काल और माया देश से न्यारा होकर अपने निज घर यानी दयाल देश में पहुँच सकता है, और किसी तरह नहीं, तब उसको चाहिए कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की शरण दृढ़ करके और संत मत के भेदी से जुगत सुरत-शब्द योग की दरियाफ़्त करके, इसी अभ्यास को, जितना बन सके, नियम से रोज़मर्रा करता रहे और उनकी दया की अपने अंतर में परख करता हुआ चले और अपने मन और इन्द्रियों की चाल की भी निरख करता रहे, और जब-तब चरणों में, वास्ते प्राप्ति दया के, प्रार्थना भी करता रहे, तो राधास्वामी दयाल की मेहर से, दिन दिन उसका

कारज बनता जावेगा और प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जावेगी और उनकी दया से एक दिन कारज पूरा हो जावेगा। इस तरह हर एक सच्चा परमार्थी अपने जीव का कल्याण राधास्वामी दयाल की दया के बल से कर सकता है, और जीते जी कोई दिन अभ्यास करके अपने सच्चे उद्धार का सबूत अन्तर में देख कर उसका पूरा यक़ीन और विश्वास कर सकता है, और ज्यों ज्यों ऐसी प्रतीत बढ़ती जावेगी, उसके साथ ही प्रेम भी बढ़ता जावेगा और एक दिन प्रेम-सिंध या सच्चे मालिक से मेला हो जावेगा और फिर जन्म-मरण और काल-क्लेश से पूरा छुटकारा हो जावेगा।

बचन सोलहवाँ

वर्णन दर्जों का जो संतों ने रचना में मुक़र्रर किये हैं, और बड़ाई संत मत की

१—राधास्वामी दयाल ने जो दर्जे रचना में वर्णन किये हैं अथवा जो स्थानों का भेद दिया है, उस को सही मानना चाहिए और उसकी प्रतीत करके उसके मुआफ़िक़ अभ्यास में चाल चलनी चाहिए और धुर स्थान का पूरा पूरा यक़ीन करके वहाँ के पहुँचने का इरादा सच्चा और पक्का मन में धरना चाहिए॥

२—एक दृष्टांत दिया जाता है। उस से हाल कुल्ल दर्जों का जो राधास्वामी दयाल ने वर्णन किये हैं, अच्छी तरह समझ में आ सकता है। तिल का जो दरख़्त है,

उसके देखने से मालूम होता है कि उसकी ज़ाहिरी सूरत स्थूल रूप में दाख़िल है, और अंतर में जो अर्क़ कि जड़ से डाली और पत्तों तक रगों में होकर जारी रहता है, वह उसका सूक्ष्म रूप है, और बीज उसका कारण रूप है। और जिस वक़्त कि बीज को पेला यानी उस का मंथन किया, तब उससे तेल प्रकट हुआ और स्थूल और कारण रूप के खोल खल रूप होकर जुदा हो गए। यह तेल तुरिया रूप है। जब उसका भी मथन किया गया यानी उसको रोशन किया, तब उसकी रोशनी की लौ में यह दर्जे ज़ाहिर होते हैं :—

(१) पहले, सफ़ेद और साफ़ रोशनी। यह दयाल देश का रूप है। और इसका जो अख़ीर सिरा ऊपर की तरफ़ को है वह सुन्न के मक़ाम से मुआफ़िक़त रखता है या वह सुन्न के स्थान का वाचक है। और बाक़ी सफ़ेद रोशनी में दयाल देश की रचना के दर्जे गुप्त हैं ॥

(२) और जहाँ से कि सफ़ेदी के ऊपर सुर्ख़ी शुरू हुई, वह त्रिकुटी का नमूना है ॥

(३) और जहाँ से कि सुर्ख़ी के ऊपर जर्द रोशनी सब्ज़ी मायल शुरू हुई, वह सहसदलकँवल का नमूना है ॥

(४) जहाँ से कि सियाही मायल रोशनी शुरू हुई और फिर धुआँ वग़ैरा, वह पिंडी रचना का वाच रूप है ॥

३—इस दृष्टाँत में कुल दर्जे रचना के जो कि संतों ने पिंड के ऊपर ब्रह्मांड और दयाल देश में वर्णन किये हैं, साफ़ नज़राई पड़ते हैं और पिंड के दर्जे बीज और दरख़्त रूप में ज़ाहिर हैं, और उनका सूक्ष्म मसाला उस सियाही मायल रोशनी और धुएँ वग़ैरा में मौजूद है ॥

४—खोजी और समझने वाले परमार्थी को इस दृष्टांत से कुल दर्जों का जो पिंड, ब्रह्मांड और दयाल देश में बयान किये गये हैं, पूरा पूरा यक़ीन आ सकता है, और इस दृष्टांत के समझने में नज़र उन रूपों पर कि जिनका हाल लिखा गया है, रखनी चाहिए और इधर-उधर ख़्याल को नहीं फैलाना चाहिए ॥

५—इस दृष्टांत से सिर्फ़ इसी क़दर मतलब है कि उस से सुर्त के स्थूल, सूक्ष्म और कारण देह का स्वरूप समझ में आ जावे और फिर जो स्वरूप कि सुर्त ने ब्रह्मांड में उतार के वक़्त, सुन्न से सहसदलकँवल तक, धारण किये हैं, उनकी कैफ़ियत भी मालूम हो जावे और फिर यह भी मालूम हो जावे कि दयाल देश और उसके रचना के दर्जे सही हैं और वह देश पिंड और ब्रह्मांड के ऊपर है ॥

६—दयाल देश की रचना निहायत दर्जे की सूक्ष्म और लतीफ़ है। इसके दर्जों की तमीज़ इन आँखों से उस सफ़ेद रोशनी में जुदा २ नहीं हो सकती, पर उस सफ़ेदी में वह दर्जे ज़रूर गुप्त हैं।

७—एक दृष्टांत और दिया जाता है। उस से भी इसी क़ायदे पर दर्जों की समझ थोड़ी-बहुत आ सकती है। पर इस में वह दर्जे ऐसे साफ नहीं मालूम होते जैसे कि तिल और उसके तेल के दृष्टांत में। और यह दृष्टांत गाँडे का है। इसमें जड़ से शुरू करके अख़ीर पोरी तक तीन बड़े दर्जे हैं। पहले दर्जे में इसका अर्क़ बिल्कुल मीठा है और खारीपन नहीं है। और दूसरे दर्जे में थोड़ा २ खार शुरू हुआ। और तीसरे दर्जे में खार ज़्यादा है और मिठाई कम। फिर हर एक दर्जे में मुआफ़िक़ उसकी पोरियों के कितने ही दर्जे हैं कि वह स्थानों से जैसा कि संतों ने तीन बड़े दर्जे रचना में यानी दयाल देश और ब्रह्मांड और पिंड में वर्णन किये हैं, मुआफ़िक़त रखते हैं। और पहिले दर्जे में भी जो बिल्कुल मीठा है, कई दर्जे हैं और उनकी जांच उस की मिठाई के दर्जों से हो सकती है। इसी तरह, दूसरे और तीसरे हिस्सों में भी दर्जे मिठाई या कि मिलौनी ख़ार के साफ़ मालूम होते हैं। ऐसे ही कुल्ल रचना में और हर एक पिंड में तीन बड़े दर्जे और फिर हर एक दर्जे में छोटे दर्जे मुआफ़िक़ उसी क़ायदे के, जो संतों ने बयान किया है, गुप्त या प्रकट मौजूद हैं ॥

८—तिल और तेल के दृष्टांत में पिंड और ब्रह्मांड और दयाल देश के स्थान, रोशनी रूप में, बहुत अच्छी तरह रंग और रूप के साथ आँखों से नज़र आते हैं। और इस दृष्टांत से सच्चे खोजी को अच्छी तरह से संतों के बचन का यक़ीन हो सकता है, और कुल्ल रचना में वह

इन्हीं दर्जों की पहिचान, गुप्त या प्रकट, कर सकता है क्योंकि क़ुद्रत का क़ानून और क़ायदा सब जगह और हर एक पिंड में, बड़ा हो या छोटा, थोड़ी कमी-बेशी के साथ यकसाँ है और यही सबूत संतों के मत की ऊँचाई और गहराई और पूरेपन का है ॥

९—इससे साबित होता है कि संतों का मत क़ुद्रती है और उस में किसी तरह की बनावट या मन और बुद्धि की चतुराई और छल-बल को दख़ल नहीं है और जितनी कार्रवाई उस की है, क़ुद्रती क़ानून के मुवाफ़िक़ है। पर मन और माया के क़ानून के बर-ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनका मिलान और झुकाओ बाहर और नीचे की तरफ़ है और इसी सबब से सब जीवों की सुर्त, माया की रचना में और पिण्ड के नीचे के अंगों में फैल कर फँस गई। अब जो कोई संतों के बचन के मुवाफ़िक़ अपने निज घर की यानी दयाल देश की (जहाँ से कि आदि में धार प्रकट होकर ब्रह्मांड और पिन्ड की रचना करती हुई उतर आई) सुध लेकर, और इन बड़े दर्जों की रचना का, और हर एक छोटे दर्जे का, जिन को स्थान करके वर्णन किया है, भेद लेकर, उसी धार पर (जो कि शब्द की धार है) सवार होकर, कुल्ल भंडार यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रेम अंग के साथ चले, तो मन और माया की हद्द से पार होकर, एक दिन दयाल देश में पहुँच कर अमर आनन्द को प्राप्त होगा ॥

१०—और मालूम होवे कि माया की हद्द में जो दर्जे

हैं, यानी पिन्ड और ब्रह्मांड में चलने वाली सुर्त को ज़रूर मन और माया से मुक़ाबिला करके, उसके बल को राधास्वामी दयाल की दया की ताक़त लेकर तोड़ना पड़ेगा, यानी उसके रुख़ को, जो नीचे और बाहर की तरफ़ को झुकाओ रखता है, ज़रूर उलटाना पड़ेगा। यह काम अलबत्ता मुश्किल है पर राधास्वामी दयाल की दया से, जो उनके चरणों का प्रेम पैदा हो जावे, आसानी से, आहिस्ता आहिस्ता बन सकता है ॥

११—जो जीव कि माया के भोग और बिलास में फँस गए और उसी की आशा और मंशा दिल में रखते हैं, उनका छूटना, उनके पंजे से, मुश्किल है क्योंकि वे संतों के बचन को नहीं मानेंगे और न उनके हुक्म के ब-मूजिब कार्रवाई यानी अभ्यास करने को तैयार होंगे। इस वास्ते ऐसे जीव, ज़ाहिरी और विद्या-बुद्धि के परमार्थ में अटक कर रह गए और सच्चे परमार्थ की कमाई उन से न हो सकी। यही सबब है कि दुनिया में कसरत इसी क़िस्म के जीवों की है और उन्होंने अपने मन और इच्छा के मुवाफ़िक़ विद्या और बुद्धि से बहुत से मत गढ़ लिए, और उनहीं में राज़ी और मग्न हैं और नतीजे से बिल्कुल बे-ख़बर हैं। और जो सच्चे परमार्थ का हाल उन से कहा जावे, तो बजाय मानने के अपनी ओछी समझ से उसमें दोष निकालने को तैयार होते हैं और अपना असली नफ़ा और नुकसान नहीं विचारते हैं ॥

१२—यहाँ पर यह बात बयान करना ज़रूर है कि

सिवाय संत मत के जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, वे या तो ब्रह्म और ईश्वर के (जिस को संत ब्रह्मांडी मन कहते हैं) या पिंडी मन और बुद्धि के बनाये हुए हैं। और इन दोनों का असली झुकाओ बाहर और नीचे की तरफ़ है, यानी निज घर का भेद और पता इन मतों में बिलकुल नहीं है और न चलने की जुगत का ज़िक्र है ॥

१३–और जो इनकी (यानी मन और माया की) हद्द में किसी दर्जे के हासिल करने के लिये किसी किसी मत में हिदायत भी है, तो उसके चलने की जुगत ऐसी मुशकिल राह से बताई गई है कि जिसकी कारवाई आम तौर पर मुमकिन नहीं है यानी पिन्ड और ब्रह्मांड में भी आला दर्जा किसी को हासिल नहीं हो सकता, और इसी सबब से किसी का सच्चा उद्धार क़तई नहीं हो सकता यानी जन्म-मरण और देहियों के साथ बन्धन नहीं छूट सकता ॥

१४–संत किसी पर जब्र और ज़बरदस्ती नहीं करते और न किसी को लोभ और लालच दिखलाते हैं, सिर्फ़ बचन सुना कर निज घर का भेद और उसके पहुँचने की जुगत समझाते हैं। जो कोई माने तो उसको मदद देकर निज घर में पहुँचने का अभ्यास कराते हैं और पहुँचाते हैं, और जो न माने तो उन पर उनके आइन्दा की बेहतरी के वास्ते दया की नज़र फ़र्माते हैं, पर उनकी मौजूदा हालत के बदलने के वास्ते, किसी तरह का ज़ोर या दबाओ नहीं डालते ॥

———

बचन सत्रहवाँ

मालिक के चरणों में भय, भाव और अदब

१—दुनिया में सब कोई पुरुष और स्त्री और लड़के अपने अपने बड़ों का भय, भाव और अदब करते हैं, जैसे स्त्री, पति का, पुत्र और पुत्री, माता और पिता का, लड़के, उस्ताद और शिक्षा देने वाले का, नौकर, अपने हाकिम और मालिक का, वग़ैरा २। और ये लोग जो काम या चाल या व्यवहार, जो इन के बड़ों की मर्ज़ी के मुवाफ़िक़ नहीं है या उनके ना-पसन्द है, नहीं करते, और उनके डर से ऐसे कामों में प्रवृत्त नहीं होते। इसी तरह सिवाय अपने बड़ों के, लोग अपनी २ बिरादरी और फ़िरक़े का भी ख़ौफ़ और ख़्याल रखते हैं कि कोई चाल ऐसी न चलें कि जिसमें बिरादरी और फ़िरक़े के लोग नाराज़ होकर तान मारें। और जो कोई जिस संगत या जलसे में शामिल होता है, उस संगत या जलसे के क़ायदे के मुवाफ़िक़ अपना बर्ताव करता है, नहीं तो उस संगत या जलसे में रहने के लायक़ नहीं समझा जाता है। और जो समझौती न माने तो निकाल दिया जाता है॥

२—जब दुनिया की सब कार्रवाई में लोगों का ऐसा बरताओ है तो सतसंग में जो मालिक का घर और जहाँ उसके मिलने की जुगत और रास्ता बताया और कमाया जाता है, किस क़दर सफ़ाई और सचौटी और होशियारी और प्रीति के साथ बरताओ और व्यवहार परमार्थियों का (जो उस सतसंग में दाख़िल होवें) होना चाहिये, यानी हर

हाल में यह ज़रूर और मुनासिब मालूम होता है कि उनका चाल-चलन और व्यवहार अपने-अपने दर्जे के मुवाफ़िक़, किसी क़दर दुनियादारों के चाल-चलन से जुदा होना चाहिये, यानी दुनिया के लोग तो अकसर अपने मन और मतलब के मुवाफ़िक़ कार्रवाई करते हैं, और उसमें किसी के दुखी-सुखी होने का ख़्याल बहुत कम करते हैं, पर परमार्थी को चाहिये कि दुनिया के कामों में अपने ज़ाती फ़ायदे के वास्ते किसी को दुख और तकलीफ़ न पहुँचावे और दूसरों के औगुन देखने और सुनने और उनको मशहूर या प्रकट करने की आदत छोड़ता जावे और बरताओ अपना हर एक के साथ सचौटी से रक्खे, और किसी को धोखा न देवे। इतना फ़र्क़ सतसंगी और संसारी लोगों के चाल और चलन में, जब से कि वे सतसंग में आये और सच्चे मालिक और संतों के बचन सुने और समझे, ज़रूर आहिस्ता आहिस्ता होना चाहिये, और नाक़िस जगह और नाक़िस कामों और नाक़िस सोहबत से परहेज़ करें। इसी तरह जितने विकारी अंग हैं, उनमें सतसंगी प्रेमी का बरताओ ब-निस्बत संसारी लोगों के दिन-दिन कम होना चाहिये और यह बात ठीक-ठीक जब बन आवेगी कि जब उस के मन में सच्चे मालिक का (जिसके चरणों में वह पहुँचना चाहता है और इस कारण उससे प्रीति लगाई है) सच्चा ख़ौफ़ और सच्चा प्यार और सच्चा अदब थोड़ा-सा [illegible] होगा। और यह ख़ौफ़ और प्यार और अदब, जो उ[illegible] मालिक को मालिक जाना है, थोड़ा-थोड़ा करके ज़रूर मन[illegible] पैदा होना चाहिये ॥

डर जैसा चाहिए, मन में नहीं लाता (इस सबब से कि मालिक नहीं दीखता) तो भक्त और प्रेमी जन, जो सतसंग में मौजूद हैं, उन का डर और लज्जा जैसे कि लोग अपनी बिरादरी और फ़िरक़े का रखते हैं, ज़रूर दिल में आना चाहिए। और इस डर और लज्जा से भी बहुत बचाओ मुमकिन है। और जो ऐसा भी नहीं होता यानी सतसंगी का भी ख़ौफ़ और शर्म किसी के मन में नहीं आता, तो मालूम करना चाहिए कि जिसकी ऐसी हालत है, वह परमार्थी भी नहीं है या निहायत दर्जे का नादान और अपने परमार्थी नफ़े और नुक़सान से बे-ख़बर है। ऐसे लोग नाक़िस चाल-चलन से संगत को लाज लगाते हैं। इस वास्ते हर एक परमार्थी को, जो सतसंग में दाखिल हुआ है, इस बात का सोच और विचार ज़रूर चाहिये कि मैं पहिले किस ग़ोल या संगत में था और अब किस सोहबत में दाख़िल हुआ और इस सोहबत का कैसा बरताव और क्या क्या क़ायदे हैं, और कोशिश करना चाहिये कि जहाँ तक बन सके, उन क़ायदों और बरताओ के मुवाफ़िक़ थोड़ी-बहुत कारवाई शुरू करे, नहीं तो उसका परमार्थी संगत में शामिल होना बे-फ़ायदा है ॥

६—जो कोई कहे कि मन और इन्द्रियाँ बड़े ज़बर हैं, उन से बस नहीं चलता, तो ख़्याल करो कि ऐसे ही मन और इन्द्रियाँ लड़कियों और लड़कों और मर्दों की ज़बर थीं, पर जब से लड़कियों की शादी हुई और लड़के उस्ताद के सुपुर्द हुए, और मर्द हाकिम के नीचे काम करने लगे,

तब से अपने तन, मन और इन्द्रियों की चाह और शौक़ को नीचे डाल कर अपने अपने बड़ों के हुक्म में बरतने लगे। फिर जो परमार्थी कहलाते हैं, वे गुरू और मालिक और सतसंगियों का ज़रा भी ख़ौफ़ न करके जो पुरानी चालों में बरतते रहें तो वे कैसे परमार्थी समझे जावें, और कैसे यक़ीन होवे कि उन्होंने गुरू और मालिक को बड़ा समझा और सतसंगियों और प्रेमी जनों को अपनी बिरादरी क़रार दिया ?

१०—ऐसे लोग जो सतसंग में पड़े रहेंगे तो कुछ थोड़ा परमार्थ उनको हासिल होगा, और वह सिर्फ़ दया से मिलेगा, पर बहुत देर और कुछ कष्ट और कलेश के बाद, क्योंकि उनके मन और इन्द्रियाँ सीधी तरह चलना नहीं चाहते और बिना दंड पाये दुरुस्त नहीं होंगे ॥

बचन अठारहवाँ

जो लोग कि सिवाय संत मत के अभ्यास के और और काम परमार्थी कर रहे हैं, उनको क्या फ़ायदा होगा

जो परमार्थी कार्रवाई आज कल दुनिया में जारी है, वह या तो (१) कर्मकांड या दान-पुण्य या (२) तीर्थ और मूर्ति और निशानों की पूजा या (३) व्रत या (४) नाम का जाप या (५) हठ योग या (६) प्राणायाम या (७) ध्यान या (८) मुद्रा की साधना या (९) वाचक ज्ञान या

(१०) पोथी और ग्रन्थ का पाठ करना और मन से स्तुति गाना और प्रार्थना करना वग़ैरा हैं। इन साधनों से संतों के बचन के मुवाफ़िक़ जीव के सच्चे उद्धार की सूरत नज़र नहीं आती, क्योंकि इन कामों में मालिक के चरणों का प्रेम और उसके दर्शन की चाह बिल्कुल नहीं पाई जाती। अब हर एक का हाल थोड़ा सा लिखा जाता है ॥

(१) कर्मकांड और दान-पुण्य

जो जीव कि इन कामों में बर्त रहे हैं, चाहे जिस मत में होवें, उनका मतलब इन कामों के करने से या तो इस दुनिया के सुख और मान, बड़ाई और धन और सन्तान की प्राप्ति और वृद्धि का है, या बाद मरने के, स्वर्ग या बैकुंठ या बहिश्त में सुख भोगने का। इनके मत में न तो सच्चे मालिक का खोज और पता है और न उसके मिलने की जुगत का ज़िक्र है। जितने काम कि ये लोग करते हैं, सब बाहरमुखी हैं और उनका सिलसिला अंतर में सुरत और शब्द की धार के साथ बिल्कुल नहीं है। इस सबब से इन कामों में जीव का सच्चा उद्धार नहीं हो सकता ॥

(२) तीर्थ और मूर्ति और निशानों की पूजा

जो लोग कि इन कामों में लगे हैं, उन के मन में थोड़ी-बहुत प्रीति और प्रतीत अपने इष्ट की रहती है, पर उसकी तरक़्क़ी नहीं होती और संसार की मुहब्बत, उस प्रीति पर हमेशा ग़ालिब रहती हैं यानी इष्ट की प्रीति का मुक़र्ररा वक़्तों पर थोड़ा—बहुत ज़हूर होता है, और थोड़ा-

बहुत तन, मन, धन भी उसके निमित्त लगाया जाता है। और बिशेष करके इस काम के करने में आशा संसार के पदार्थों की प्राप्ति की रहती है। और बहुत कम जीव हैं, जो मुक्ति की चाह लेकर इन कामों को करते हैं। ये लोग अपने इष्ट के भेद से कि वह कैसा है, और कहाँ है और कैसे उसकी प्राप्ति होगी, बे-ख़बर हैं, और वे यह भी नहीं जानते कि सच्ची मुक्ति का क्या स्वरूप है। और पहिले तो यह कसर है कि उनके इष्ट कृत्रिम यानी पैदा किये हुए हैं, और इस वजह से कोई मुद्दत उनके उम्र और ठहराव और उनके मक़ाम की मुक़र्रर है। जो कोई अपने इष्ट के धाम तक भी पहुँचे तो भी प्रलय या महा प्रलय के समय में उनका और उनके इष्ट का अभाव हो जायेगा और फिर रचना में आवेंगे। भक्ति के वास्ते चार बातों का जानना ज़रूर है :–(१) अपने इष्ट का असली नाम और (२) रूप और (३) धाम और (४) वहाँ पहुँचने का रास्ता और जुगत सो इन बातों से मूर्ति और निशानों की पूजा करने वाले बिल्कुल बे-ख़बर दिखलाई देते हैं। और जब ऐसा हाल है तो उनकी भक्ति ऊपरी रहेगी और अपने इष्ट के धाम में पहुँचना भी नहीं बन सकता। ये सब लोग टेकी हैं और जो कुछ कि ये अपने इष्ट के निमित्त तन, मन, धन थोड़ा-बहुत लगाते हैं, वह शुभ कर्म में दाख़िल होकर उसका फल थोड़ा-बहुत सुख इस दुनिया में या स्वर्ग-लोक, पितृ-लोक वग़ैरा में मिल जाता है॥

(३) ब्रत

१—ब्रत धारण करने से किसी क़दर सफ़ाई और सुबकी तन-मन की हो सकती है, पर शर्त यह है कि क़ायदे के साथ उसकी कार्रवाई की जावे। और जब कि बजाय भूखे रहने और जागरन और सुमिरन और भजन करने के, उमदा उमदा खाने फल-अहार के नाम से बना कर खाये जावें और बाक़ी वक़्त सोने और दुनिया के दिल बहलाओ के कामों में ख़र्च किया जावे, तो बजाय हासिल होने परमार्थी फ़ायदे के, और नुक़सान होने का ख़ौफ़ है। यह भी एक तरह का संयम वास्ते अभ्यासी परमार्थी लोगों के मुक़र्रर किया गया था, पर इस ज़माने में सिर्फ़ ब्रत रखने पर मुक्ति का हासिल होना ठहराया गया है। सो यह बात सही नहीं मालूम होती और ऐसा ख़्याल दिल में बाँधना एक क़िस्म का भ्रम है। जो यह काम किसी से दुरुस्त बन पड़ा और वह शख़्स अभ्यासी नहीं है तो इसका फल यानी थोड़ा सुख उसको इस लोक में या परलोक में मिल जावेगा, पर मुक्ति का प्राप्त होना या इष्ट के धाम में पहुँचना, ब्रत रखने से मुमकिन नहीं मालूम होता। और जो कोई अभ्यासी ब्रत रक्खेगा, तो उसके अंतर में सफ़ाई और अभ्यास में किसी क़दर आसानी होगी, पर सच्चा उद्धार बग़ैर संतों के अभ्यास सुरत-शब्द योग के, किसी सूरत में नहीं हो सकता है ॥

(४) नाम का जाप

१—आज-कल जो लोग नाम का जाप करते हैं, वे बहुत करके (१) ज़बानी नाम लेते हैं और मन और उनके चित्त और दृष्टि उस वक़्त डावाँडोल रहते हैं, यानी सुमिरन में शामिल नहीं होते हैं। इस सबब से ऐसे सुमिरन से, सिवाय थोड़ी सफ़ाई के, और कुछ हासिल नहीं होगा। (२) कोई कोई मानसी सुमिरन करते हैं पर उसमें नामी का पता और धाम का भेद नहीं मिलता, यानी बे-ठिकाने सुमिरन करते हैं। (३) इसी तरह स्वाँस के साथ यानी दम के आते-जाते वक़्त, बाज़े नाम लेते हैं, और (४) कोई कोई नाम की ज़र्ब दिल पर लगाते हैं, यानी चाहे बलन्द आवाज़ के साथ, चाहे हल्की आवाज़ के साथ नाम लेते हैं ॥

२—ये सब लोग नामी और उसके धाम के पते और भेद से बे-ख़बर हैं और इस सबब से सिवाय सफ़ाई या किसी-किसी को थोड़ी सिद्धि के सिवाय और कुछ फ़ायदा हासिल नहीं हो सकता है, यानी न तो नामी के स्थान में पहुँच सकते हैं और न उसका दीदार और दर्शन पा सकते हैं। और जो कि उनका घाट नहीं बदलता, इस वास्ते न तो उनके मन में प्रेम प्रकट होता है और न उनका सच्चा उद्धार होना मुमकिन है ॥

३—संतों ने नाम की बहुत महिमा करी है और कहा है कि बग़ैर गुरू और नाम के किसी का उद्धार नहीं होगा। पर उनका नाम सच्चे मालिक का ध्वन्यात्मक नाम है और उसका अभ्यास यह है कि मन और चित्त से नाम

को धुन को, जो घट २ में हो रही है, सुनना और धुन की डोरी पकड़ के नामी के सन्मुख पहुँचना। जब तक ऐसा न होगा, गहरा प्रेम मन में नहीं आवेगा और न हालत बदलेगी और न सच्चा उद्धार यानी मन-माया के देश से रिहाई होगी। और संत, नामी के धाम का रास्ता और स्थानों का भेद वग़ैरा समझाते हैं ॥

(५) हठ योग

१—इस से मतलब यह मालूम होता है कि हठ करके अपने अंग-अंग को तोड़ना और मोड़ना और साफ़ रखना। और फ़ायदा उसका यह है कि तन और उसके अंगों की सफ़ाई और तन्दुरुस्ती हासिल होवे। पंच अग्नि तपना, और जल सेवन करना, खड़े रहना, मौन साधना, नंगे रहना, नेती, धोती और बसती क्रिया करना, और कीलों पर या मैदान में बैठना, और उल्टे लटकना वग़ैरा वग़ैरा-ये सब काम हठ योग में दाख़िल हैं। इनके करने से थोड़ी सफ़ाई अंतर की हो सकती है। पर न तो वह सफ़ाई क़ायम रह सकती है और न मालिक के चरणों का प्रेम दिल में पैदा हो सकता है, बल्कि बजाय उसके, अहंकार और मान और अपनी स्तुति और बड़ाई की चाह बहुत ज़बर मन में समा जाती है। और अक्सर लोग इन में से बहुत से कम चौराहों पर और मेलों और तमाशों में सड़क पर, आम तौर से करते हुए नज़र आते हैं, और ज़ाहिरा उनका मतलब धन पैदा करना और अपनी स्तुति कराना मालूम होता है।

२—पिछले वक़्तों में ये काम स्थूल शरीरधारी और स्थूल बुद्धिवाले जीवों की दुरुस्ती के लिए संयम के तौर पर जारी किये गये थे। यानी उस वक़्त के बुज़ुर्गों ने जैसी-जैसी जिसकी हालत देखी, उसकी सफ़ाई और स्थूलता के दूर करने के लिए और आहिस्ता-आहिस्ता ऊँचे साधन जैसे अष्टांग योग, यानी प्राणायाम या मुद्रा के साधन के लिए तैयार करके के वास्ते, इन कामों की हिदायत की थी। पर समझना चाहिए कि ये सब काम जो उन्होंने बताये, एक-एक अंग के साधन के वास्ते थे। और यह निहायत स्थूल तरीक़ा नये सीखने वालों के लिए जारी किया था कि जिससे वर्षों तक सफ़ाई कराते रहें और फिर भी बहुत कम जीव ऐसे निकले कि जिन से यह साधन बन पड़े हों और फिर वे ऊँचे साधनों में लग गये हों। बल्कि ऐसा हुआ कि एक-एक साधन में सब के सब अटक कर रह गए, और उसी को परमार्थ समझ कर और लोगों की वाह-वाह और बड़ाई सुन कर मगन हो गये, और जगत को अपने साधनों को तमाशे के तौर पर दिखाकर अपने रोज़गार की सूरत निकाली और अहंकार बढ़ा कर जो सफ़ाई का उस साधन से मतलब था उसको भी खो बैठे और अहंकार और लोभ की मलीनता और पैदा करली ॥

३—इन कामों के करने वालों के मन में ज़रा भी प्रेम मालिक का नहीं आता और न उसके मिलने की ख़्वाहिश रखते हैं। फिर ऐसे जीवों का उद्धार कैसे होवे ?

इस करनी का फल चाहे मान, बड़ाई और धन, इसी जन्म में, इसी लोक में पावें, या थोड़ा सुख अपनी-अपनी सफ़ाई के मुवाफ़िक़ परलोक में यानी स्वर्ग वग़ैरा में हासिल करें, या अपनी चाह के मुआफ़िक़ दूसरे जन्म में राजा या हुकूमतवान या धनवान होकर दुनिया का भोग-विलास करें ॥

(६) प्राणायाम यानी अष्टांग योग

१—इस योग के अभ्यासी, योगी और योगेश्वर कहलाते हैं। इस में प्राणों की साधना इस तौर से की जाती है कि मूल द्वार से प्राणों को चढ़ाते हैं और बीच के चक्रों को बेध कर छठे चक्र में पहुँचा कर चिदाकाश में, जो छठे चक्र के ऊपर है, लय करते हैं। यह अभ्यास बहुत कठिन है और इसके संयम भी बहुत कठिन हैं और जरा सी बद-परहेज़ी और भूल-चूक में, ख़ौफ़ सख़्त बीमारी या मर जाने का है। पिछले वक़्त में बहुत कम ऐसे लोग हुए कि उनसे यह साधन बन पड़ा हो। पर हाल के वक़्त में ज़ाहिरा कोई बिरला होगा कि जिससे यह अभ्यास थोड़ा सा बनता होगा, नहीं तो चार-छः महीने या एक वर्ष कुछ साधना करके इस योग के अभ्यासी या तो बीमार हो जाते हैं या ख़ौफ़ के मारे और ना-कामयाबी के सबब से छोड़ देते हैं ॥

२—इस अभ्यास में त्याग, वैराग और पुरुषार्थ पर ज़्यादा जोर दिया है और मालिक के चरणों की भक्ति और

प्रेम की मुख्यता नहीं है। जिस किसी से यह अभ्यास पूरा-पूरा बन आया तो वह सहसदलकँवल में पहुँच कर रह गया या उसके नीचे चैतन्य आकाश में लय हो गया। और यह मक़ाम वह है कि जहाँ से संतों का अभ्यास शुरू होता है। और इसके ऊपर सात मक़ाम तै करके सच्चे मालिक के धाम यानी राधास्वामी पद में पहुँचना होता है। फिर योगी और योगेश्वरों को सच्चे मालिक का भेद और पता नहीं मिला और न उनको सच्चे उद्धार का दर्जा हासिल हुआ।

२—अब समझना चाहिए कि जब कि चारों युगों में प्राणायाम की मुख्यता रही, और बग़ैर इस अभ्यास के, ब्रह्मपद भी किसी को (सिवाय उन बिरले शख़्सों के जिन से यह अभ्यास पूरा-पूरा बन आया) प्राप्त नहीं हुआ, तो ज़ाहिर है कि योग-मत के ब-मूजिब, किसी को भी, और ख़ास कर गृहस्थियों को उसका सिद्धांत हासिल नहीं हुआ, और सब जीव आवागवन के चक्र में रहे और किसी का भी कल्याण नहीं हुआ, और संतों के पद की, जो कि उनके सिद्धान्त पद के सात दर्जे ऊपर है और बग़ैर जहां पहुँचने के सच्चा उद्धार किसी का नहीं हो सकता है, किसी को ख़बर भी नहीं हुई, और न सुरत-शब्द का हाल कि जिस से कुल्ल रचना प्रकट हुई और जारी है, किसी को अब तक मालूम पड़ा। फिर योगी और योगेश्वर और आम लोग संतों की और उनके अभ्यास की महिमा कैसे जान सकते हैं?

(७) ध्यान

१—ध्यान करने वालों की तीन क़िस्में हैं—पहले, जो मालिक को अरूप समझ कर और आकाशवत व्यापक मानकर ध्यान करते हैं। इन का ध्यान बे-ठिकाने है और ये चैतन्य आकाश का ख़्याल या अनुमान करके ध्यान करते हैं और जो रोशनी अंतर में नज़र आवे, उसी को आत्मा का दर्शन समझ कर तृप्त हो जाते हैं। दूसरे, जो मूर्ति या निशान का ध्यान करते हैं। इनका भी ध्यान बे-ठिकाने है और उनको उस मूर्ति का दर्शन भी बहुत कम होता है, और जो कभी हो गया तो जैसी मूर्ति देखी है, उसी के मुवाफ़िक़। वह मूर्ति न तो कभी बोलती है और न चलती है। तीसरे, वे जो गुरु स्वरूप का ध्यान करते हैं। इनको अक्सर दर्शन भी होते हैं और प्रीति भी किसी क़दर बढ़ती है, पर इनका भी ध्यान बे-ठिकाने है, इस सबब से इनकी भी तरक़्क़ी नहीं होती है॥

२—इन सब ध्यानियों का ख़्याल बाहर के आकाश में या अंतर में हृदय यानी मन के आकाश में जमता है और वहीं का चमत्कार देख कर ये लोग तृप्त हो जाते हैं। ऐसा ध्यान सख़्ती और तकलीफ़ के वक़्त में बहुत कम काम देता है, सो अपनी इस बात की ये लोग परख नहीं करते। मालूम होवे कि मन-आकाश जीव के देह छोड़ने से पहले सिमट कर ऊपर को खिंच जाता है। फिर उस वक़्त ध्यान नहीं बन सकता और किसी क़दर बेहोशी ग़ालिब होती जाती है। और इसी तरह ज़्यादा तकलीफ़

और बीमारी के वक़्त भी, ब-सबब बे-आरामी और चंचलता मन के, यह ध्यान बहुत कम बन सकता है ॥

३—ख़ुलासा यह कि इन सब को न तो सच्चे मालिक की ख़बर हुई और न अपने इष्ट के असली रूप और मक़ाम का हाल मालूम हुआ और न इस सबब से इनको कुछ तरक़्क़ी हासिल होती है और न घाट बदलता है और न ये मन और माया के घेर से बाहर जाते हैं। ये लोग अपनी करनी का फल किसी क़दर इस लोक में और कुछ परलोक यानी स्वर्ग वग़ैरा में भोगते हैं, यानी इन को थोड़ा-बहुत सुख और आनन्द मिलता है, पर जन्म-मरण के चक्र से ये नहीं बच सकते हैं। और जो सुख और आनन्द उनको प्राप्त होता है, वह भी थोड़ी देर ठहरने वाला है, पर अहंकार अपने अभ्यास का बहुत बढ़ जाता है ॥

४—संतों ने जो ध्यान बताया है, उसके साथ ध्येय का (यानी जिसका ध्यान किया जाता है) स्वरूप (चाहे रूपवान है या अरूप) और धाम और रास्ता अंतर में और उसके चलने की जुगत का भेद भी समझाते हैं। इस तरह ध्यानी अभ्यासी की सुरत दिन-दिन रास्ता तै करती हुई ऊँचे को चढ़ती जाती है और आनन्द भी बढ़ता जाता है और तन, मन और इन्द्रियों के घाट से अभ्यासी आहिस्ता-आहिस्ता न्यारा होता जाता है और अपने ध्येय यानी इष्ट और मालिक का, जो घट-घट में मौजूद है, जब-तब दर्शन करके निहायत मगन होता है। और उसकी मेहर और दया और रक्षा अपने अंतर में परख कर अभ्यासी की प्रीति और

प्रतीत दिन-दिन ज़्यादा होती जाती है। और जिस क़दर आनन्द उसको ऊँचे से ऊँचे देश का प्राप्त होता जाता है, उसी क़दर संसार और उसके भोग-बिलास और पदार्थों से आप ही आप उसकी तबियत हटती जाती है यानी सहज बैराग की दशा आती जाती है। और ऐसे अभ्यासी का, आहिस्ता-आहिस्ता मन और माया के घेर से निकल कर संतों के निज देश में जो अमर-अजर है, प्राप्त होना मुमकिन है। और वहाँ पहुँच कर अभ्यासी भी अमर हो जाता है और वहाँ का सुख और आनन्द भी अमर है, और काल-क्लेश वहाँ बिल्कुल नहीं है। इस तरह सच्चा उद्धार और सच्ची मुक्ति हासिल हो सकती है ॥

(८) अभ्यास मुद्रा का

१—अक्सर योगी लोग यह अभ्यास करते हैं और कोई-कोई गृहस्थी भी इस अभ्यास में शामिल हैं। मुद्राएँ पाँच हैंः–(१) चाचरी (२) भूचरी (३) खेचरी (४) अगोचरी और (५) उनमुनी ॥

२—पहिली दो मुद्राओं में दृष्टि का साधन, अंतर और बाहर किया जाता है। बाहर कोई स्याह नुक़्ते पर, कोई चिराग़ की लौ पर अर कोई नाक की नोक या परों पर नज़र को जमाते हैं और अंतर में दोनों भवों के मध्य में ठहराते हैं। इस अभ्यास में रोशन सफ़ेद या रंगन नज़र आती है और उसके देखने से तबियत को कुछ रस आता है। और बहुतेरे इसी को आत्मा का प्रकाश समझ कर तृप्त हो गये। किसी-किसी को अपना रूप दिखलाई देता है

और ऐसे लोग उसी में अटक गये । इससे आगे का भेद और रास्ता किसी को मालूम नहीं हुआ । यह रोशनी मायक है और हमेशा यकसाँ क़ायम नहीं रहती है । इस सबब से इसके अभ्यासी किसी ठिकाने पर नहीं पहुँचे हैं और न उनका सच्चा उद्धार हुआ । इस करनी का फल थोड़ा सुख और आनन्द अभ्यास के वक़्त हासिल हो गया और बाक़ी सुख ऊँचे लोक या ऊँची योनियों में पावेंगे । और जिन्होंने यह अभ्यास सच्चे मालिक से मिलने की सच्ची चाह लेकर शुरू किया है, तो ऐसों को संत सतगुरु मिलेंगे और सच्चे मालिक और उसके धाम का भेद और युक्ति चलने की बतला कर और अपनी मेहर और दया से अभ्यास करवा कर धुर घर में पहुँचावेंगे । तब सच्चा उद्धार हो जावेगा ॥

३—खेचरी मुद्रा का अभ्यास यह है कि ज़बान के सिरे को उल्टा कर तालू के द्वारे पर जमाते हैं और वहाँ जो अमृत की बूंदें हर वक़्त टपकती रहती हैं, उनको पान करके मगन और तृप्त हो जाते हैं और आगे की खोज कुछ नहीं करते हैं ।

यह अभ्यास बहुत थोड़े आदमी करते हैं और जो कि यह देह के संग है, इस सबब से मरने के वक़्त बहुत कम मदद और फ़ायदा देता है, यानी सुरत या रूह के खिंचाव के वक़्त जाता रहता है ।

४—अगोचरी मुद्रा के अभ्यासी शब्द की धुन को, जो अंतर में हर वक़्त हो रही है, सुनते हैं । कोई आधी

रात के बाद, बग़ैर कान बन्द करने के, और कोई कानों में कूंचियाँ और रुई लगा कर और कोई उँगली से कानों को बन्द करके और बाज़े मुंह और नाक को भी बन्द करते हैं। यह शब्द मजमूये (मिलौनी) का हर वक़्त नीचे के पर्दे में हो रहा है और जो कोई इसको चित्त देकर सुने तो तरह-तरह को आवाज़ें ख़ास कर वे दस आवाज़ें जो कि योग शास्त्र में लिखी हैं, सुनाई देती हैं। और उनमें जब मन और चित्त एकाग्र होकर लग जाते हैं तो रस और आनन्द भी आता है और संसार की तरफ़ से किसी क़द्र तवज्जह भी हट जाती है। पर इस मुद्रा की साधना करने वालों को यह ख़बर नहीं कि कौन शब्द कहाँ से आता है, और न वे शब्द की धुन के साथ अपने मन और सुरत को चढ़ाते हैं। इस सबब से इनका अभ्यास भी पिंड का है और जब मरते वक़्त सुरत या रूह का खिंचाव होता है, तो उस वक़्त यह मजमूये (मिलौनी) का शब्द भी जाता रहता है, और ऐसे अभ्यासियों को, कर्म अनुसार, फिर देह धरनी पड़ती है, यानी जन्म-मरण नहीं छूटता और जीव का कल्याण नहीं होता। जो ऐसे अभ्यासियों के मन में आगे की खोज की चाह पैदा हो जावे या मालिक के भेद को दरियाफ़्त करने का शौक़ मन में आ जावे, तो इन को भी संत सतगुरु का दर्शन प्राप्त होना, और उनकी दया के वसीले से सच्चे उद्धार का हासिल होना, संतों के अभ्यास की कमाई से, मुमकिन है। और नहीं तो अपनी करनी का फल कुछ

इस जन्म में और आइन्दा दूसरे जन्म में, जो पहिले से बेहतर और उमदा होगा, भोग करेंगे। पर ये आवागवन से रहित नहीं होंगे और न ऊँचे देश में पहुँच सकेंगे ॥

५—उनमुनी मुद्रा का अभ्यास यह है कि जब अगोचरी मुद्रा करके अभ्यासी के मन और चित्त ठहर जावें और शब्द के रस में इस क़दर रसीले हो जावें कि तन, मन और शब्द की भी सुध न रहे, तो वह हालत समाधि की कहलाती है और इसी को उनमुनी मुद्रा कहते हैं। ऐसी समाधि जितनी देर तक रहे, वह उनमुनी अवस्था कहलाती है। इस हालत में अभ्यासी के मन और चित्त चिदाकाश में लय हो जाते हैं। यह दर्जा मुद्राओं के अभ्यास में बड़ा है, और ये लोग इसी को आतम आनन्द और आत्मा में लय होना मानते हैं। संत मत के मुआफ़िक़ ये लोग भी पिंड के नाके पर रह गये और ब्रह्मांड और संतों का देश उसके ऊपर रहा। इस सबब से इनको भी सच्चे मालिक का खोज और पता न लगा, और न सच्चे उद्धार की गति प्राप्त हुई। ऐसे अभ्यासी मरने के बाद कुछ अर्से तक आत्म पद में रह कर फिर देह धरेंगे, पर ऊँचे लोक और ऊँची योनि में, और पहिले जन्म की निस्बत विशेष सुख पावेंगे, मिस्ल राज भोग वग़ैरा, क्योंकि इन मुद्राओं के अभ्यासियों के मन में वासना माया के भोग और मान, बड़ाई और प्रभुता की धरी रहती है। जब तक कि जीव को संत सतगुरु का संग न मिलेगा और उनकी जुगत की कमाई करके, वह माया के घेर के बाहर न जावेगा, तब तक उसकी वासना

दूर न होवेगी। इसी सबब से उस का जन्म-मरण बराबर जारी रहेगा।

(६) वाचक ज्ञान

१—यह मत इस ज़माने में कसरत से जारी है। और इसकी असल यह है कि सच्चे ज्ञानी, जो योग अभ्यास कर के ब्रह्मपद में पहुँचे और जो उन्होंने सिद्धांत के बचन कहे या अपनी बानी में लिखे, उन को पढ़ कर ये लोग मगन होकर अपने तईं ब्रह्म रूप मानने लगे और जो अभ्यास कि सच्चे ज्ञानियों ने बतलाया, उसकी कुछ कारवाई इन्होंने नहीं की। इस सबब से इनके मन और इन्द्रियाँ, जैसे दुनियादारों के ज़बर हैं और संसार के भोग-बिलास की चाहों से भरे हुए हैं, ऐसे ही बने रहे, क्योंकि उन पर अभ्यास का रगड़ा नहीं लगा और न सफ़ाई हासिल हुई। सिर्फ़ ऊँची अवस्था की बातें सुन कर और याद करके हर एक को सुनाते हैं, और अपने आप को ब्रह्म रूप मान कर समझते हैं कि उनको कुछ करनी और करतूत की ज़रूरत नहीं रही। इस तरह की बातें समझकर सीख लेना तो बहुत आसान है, पर मन और इन्द्रियों का रोकना और मारना बहुत कठिन काम है। सो मेहनत करना और मन को मोड़ना तो कोई पसन्द नहीं करता, सहज में बे-तकलीफ़ ब्रह्म बन जाना हर एक को मंज़ूर है। इस तरह बहुतेरे भेष और पन्डित और गृहस्थी, जिनको थोड़ी-बहुत विद्या हासिल हुई, इस मत में शामिल हो गये और ज्ञान की बातें बनाने लगे। पर, बर्ताव और रहनी उनकी संसारियों

के मुवाफ़िक़ ही रहता है और ये लोग मन और इन्द्रियों की तरंगों में बहते रहते हैं और अपने हाल से बिल्कुल बे-ख़बर हैं। और जो कोई उनको उनकी कसरें जतावे, तो उस से लड़ने और मुक़ाबिला करने को तैयार होते हैं, यानी उन पर इस क़दर ग़फ़लत और मूर्खता छाई हुई है कि यह भी नहीं समझते कि हम कहते क्या हैं और करते क्या हैं ? प्रथम तो यह लोग कसरत से अभ्यास से ख़ाली हैं और जो कोई कि कुछ अभ्यास करते हैं तो वह विचार का है, यानी थोड़ी देर एकाँत में बैठ कर ख़्याल करते हैं कि हम यह भी नहीं, वह भी नहीं, यानी जो रचना कि उनको नज़राई देती है या जो कुछ कि किताबों में पढ़ा है, उस को निषेद् करके बाक़ी जो रहा, उसको अपना रूप यानी ब्रह्म समझ कर चुप हो रहते हैं। यह अभ्यास शुरू में कोई दिन इतना फ़ायदा दिखलाता है कि उनकी वृत्ति को सब तरफ़ से समेट कर एकाग्र कर देता है, और किसी-किसी को ऐसी हालत में कुछ प्रकाश भी नज़र आता है। लेकिन बाद थोड़े दिन के, यह अभ्यास दिन-दिन फीका और हलका होता जाता है और फिर वैसा सिमटाव और एकाग्रता भी नहीं होती। तब उस अभ्यास को भी छोड़ देते हैं और अपने तईं पूरा जान कर इधर-उधर मेले-तमाशे और देशों की सैर करते हुए मारे-मारे फिरते हैं। जो आत्म आनन्द इनको प्राप्त हुआ होता, तो इनका मन सैर और तमाशे की इच्छा न उठाता। पर इन्होंने भारी धोखा खाया और वृथा अपनी नर देह को बरबाद किया। इनका वही हाल होगा जो संसारियों का होगा, बल्कि ये उन से ज़्यादा तकलीफ़

और दुख भोगेंगे क्योंकि ये लोग ब्रह्म होने का दावा करके, मन और इन्द्रियों की तरंगों में बे-ख़ौफ़ बर्तते हैं, और किसी का डर और लज्जा नहीं करते हैं। और यही हाल थोड़ा-बहुत सूफ़ियों का है जो कि बग़ैर किसी क़िस्म के अभ्यास के, अपने तईं सूफ़ी मान बैठे हैं।

२—सच्चे ज्ञानी जो पहले वक़्त में हुए, उन्होंने योग अभ्यास और पाँचों उपासनाओं को (यानी गणेश और विष्णु और शिव और शक्ति और ब्रह्म की) करके और छः चक्रों को बेध कर सहसदलकँवल का दर्शन किया और किसी-किसी ने त्रिकुटी में पहुँच कर ओंकार पुरुष का दर्शन किया और वे उसके लक्ष्य रूप में, जिस को शुद्ध ब्रह्म कहते हैं, समाये और वहाँ पहुँच कर एकताई के बचन कहे। उन बचनों को थोड़ी सी विद्या और ओछे पात्रवाले पढ़-पढ़ कर फूल गये और सिद्धांती बन गये॥

३—सच्चे योगी ज्ञानियों ने अपनी बानी में प्रथम उपासना और योग अभ्यास की रीति वर्णन की और साफ़-साफ़ लिख दिया कि जिस में यह चार साधन नहीं आये हैं—(यानी) १—वैराग, २—विवेक, ३—षट सम्पत्ति और ४—मुमोक्षता) वह अधिकारी सिद्धान्त के बचन पढ़ने, सुनने और मानने का नहीं है, और जो यह हुक्म न मानेगा, उसका वह हाल होगा कि जो राहु-केतु असुर का हुआ जो कि रूप बदल कर देवताओं की सभा में जा बैठा और अमृत पान करने में शामिल हुआ और उसका यह फल पाया कि सिर काट कर दो टुकड़े किये गये, यानी जो

कोई मन और इन्द्रियों को बग़ैर क़ाबू में लाने के सिद्धांत के बचन पढ़ेगा या कहेगा तो वह अपना अकाज करेगा ॥

४—आज-कल के ज्ञानी अपने तईं विद्यावान कहते हैं और हाल यह है कि विद्या भी पूरी-पूरी उनको नहीं हासिल है और अमल यानी अभ्यास का तो कुछ ज़िक्र भी नहीं। ब्रह्म को सर्व व्यापक मान कर कहते कि आना-जाना कुछ नहीं, और जो कि ज्ञान के बचन पोथियों में लिखे हुए उनकी समझ में आ गये, इससे उनको उपासना करने की कुछ जरूरत नहीं रही, और ऐसे ही अपने मन में आप मान लेते हैं कि चारों साधन भी उनमें आ गये। और जो कोई उनसे दरियाफ़्त करे कि कौन साधन करके तुमको ज्ञान प्राप्त हुआ, तो जबाव नहीं दे सकते और नाराज़ होकर झगड़ा करने को तैयार होते हैं। ऐसे लोगों के संग से, सब को, जो अपने जीव का कल्याण चाहें, बचना चाहिए, और उपासना यानी भक्ति और योग-अभ्यास करके प्रथम अपने अंतर की सफ़ाई हासिल करना चाहिए। तब पहिले उपास्य यानी मालिक का दर्शन पावेंगे और फिर उसकी दया से उसके लक्ष्य स्वरूप का दर्शन मिलेगा, और तन, मन और इन्द्रियों से न्यारे होकर मालिक के चरणों का प्रेम-रस पावेंगे। उस वक़्त चारों साधन भी सर्व-अंग करके दुरुस्त हो जावेंगे और सच्चे ज्ञान का दर्जा हासिल होगा। इसका नाम ज्ञान है और जिसको कि वाचक ज्ञानी ज्ञान समझ रहे हैं, वह पोथियों का यानी विद्या ज्ञान है, साक्षात ज्ञान नहीं है।

(१०) ग्रंथ और पोथी का पाठ करना, और मन से मालिक की स्तुति गाना और प्रार्थना करना

१—जो लोग सिर्फ़ इतने ही काम को, परमार्थ की करनी समझ कर, कर रहे हैं और अंतर के अभ्यास से बे-ख़बर हैं, वे विद्यावानों में दाख़िल हैं। जिस वक़्त कि ये काम करते हैं, उस वक़्त उनके मन का अंग थोड़ा-बहुत परमार्थी हो जाता है और स्तुति और प्रार्थना करने के वक़्त किसी क़द्र चित्त गद्गद् हो कर उसमें प्रेम भी आ जाता है और अपनी बुद्धि और समझ-बूझ के मुवाफ़िक़ अपने मन और इन्द्रियों की चाल को भी किसी क़द्र दुरुस्त रखते हैं। पर न तो वह प्रेम ठहर सकता है और न उसकी तरक़्क़ी हो सकती है, और ज़्यादा तकलीफ़ और ज़्यादा सुख के वक़्त या किसी क़िस्म की उपाधि की हालत में वह समझ-बूझ उनकी क़ायम नहीं रहती है और न कुछ परमार्थी मदद् दे सकती है॥

२—जो इन में से किसी के मन में खोज पैदा हो जावे या दुनिया के बहुत दुख पाकर सच्चे सुख की तलाश की चाह मन में आ जावे तो उसका संत सतगुरु या साध गुरु या संतों के सतसंगी से मेल हो जाना मुमकिन है और फिर उसके वसीले और मदद् से जीव का कारज बन सकता है॥

३—और जो इनके मन में संसार की चाह यानी मान-

बड़ाई और भोगों की ख़्वाहिश ज़बर रही तो इनका परमार्थ इसी क़दर रहा, और प्रीति प्रतीत भी अपने इष्ट के चरणों में मामूली तौर पर, जैसे और बाहरमुखी पूजा करने वालों की होती है, रहेगी। इस क़दर परमार्थ से जन्म-मरण और देहियों से सम्बन्धी कष्ट और क्लेश से, छुटकारा नहीं हो सकता है। ये लोग बारम्बार देह धरेंगे और अपनी करनी का फल और दुख-सुख भोगते रहेंगे। सच्चे मालिक और उसके धाम का पता और भेद और सच्चे उद्धार का तरीक़ा इनको भी मालूम नहीं हुआ ॥

ख़ुलासा

१—इस बचन में जो कुछ कि कार्रवाइयाँ लिखी गई हैं, सब परमार्थ के हासिल करने के वास्ते या तो संयम हैं, या थोड़ी-बहुत चढ़ाई के अभ्यास हैं। हरचन्द कि इनमें पूरा-पूरा काम नहीं बन सकता, यानी सच्चा और पूरा उद्धार और सच्चे मालिक की प्राप्ति नहीं हो सकती, फिर भी थोड़ा-बहुत सुख इस लोक में और स्वर्ग आदिक में मिल सकता है, और किसी-किसी अभ्यास से सुरत और मन की कुछ ऊँचे मक़ाम तक पिंड और ब्रह्मांड में चढ़ाई भी मुमकिन है ॥

२—इस बचन में जहाँ ज़िक्र मूर्ति और निशानों की पूजा का किया गया है, उससे मतलब यह है कि चाहे मूर्ति होवे या तसवीर, ग्रन्थ होवे या पलंग और खड़ाऊँ, या किसी मत के आचार्य का मक़ाम ख़ास या कोई उनके निशान, या उनके बर्तने की चीज़ें और सामान होवे,

या भक्तों और औलिया और महात्माओं और परमार्थी लोगों की कोई जगह ख़ास मुक़र्रर की हुई, या उनके नाम से कोई मकान बने हुए, या जहाँ कि उन्होंने कोई दिन रह कर अभ्यास और सतसंग किया होवे, या उनकी समाध और मक़बरे होवें और जहाँ कि लोग किसी वक़्त मुक़र्ररह पर जमा होकर पूजा, नज़र, भेंट या सतसंग करते होवें ॥

३—और जहाँ कि इस बचन में नाम तीर्थ का आया है उससे मतलब यह है कि चाहे उन मक़ामों में से, जिनका ऊपर ज़िक्र किया गया, कोई स्थान होवे, या कोई दरिया या झील कुँड या कुँवा या बावड़ी जिस को लोगों ने ब-सबब ठहरने उस जगह महात्माओं के, पवित्र और बुज़ुर्ग माना होवे और जहाँ कि वक़्त मुकर्ररह पर लोग वास्ते स्नान, ध्यान, पूजन और देने नज़र और भेंट, और पुण्य-दान करने के, अपने परमार्थी फ़ायदे या किसी संसारी मतलब और मुराद हासिल होने की नज़र से जमा होते होवें।

४—इस जगह पर इस क़दर जताना ज़रूर मालूम होता है कि जिस जगह पर चाहे कोई स्थान ऊपर ज़िक्र किये गए मक़ामों में से होवे और लोग इस इरादे और मतलब से जमा होवें कि वहाँ किसी पिछले संत या साध या महात्मा या वली या भक्त के भजन, अभ्यास और सतसंग करने की जगह है और वह, ब-सबब उनके वहाँ ठहरने के, निहायत पवित्र और पाक है, और ज़रूर वहाँ

पर खोज और पता और भेद तरीक़े का, कि जिसकी कमाई करके उन महात्माओं को बड़े से बड़ा दर्जा हासिल हुआ, उनके गद्दी-नशीन या सतसंगियों से जो वहाँ उस वक़्त मौजूद होवें, मिल सकता है और वहाँ पहुँच कर वे उन महात्माओं के निशान पर भाव और अदब की नज़र से हार-फूल चढ़ावें और वहाँ जो साधू रहते हैं, उनके खाने-पीने के ख़र्च के वास्ते नज़र भेंट करें या उनके लिए तोहफ़े वग़ैरा ले जावें और भाव के साथ उस मक़ाम पर या किसी निशान के सनमुख अदब (जैसे मत्था टेकना और सिजदा करना) बजा लावें, और वहाँ ठहर कर सतसंग करें और भेद ऊँचे दर्जों और परमार्थ का और जुगत और अभ्यास उनके प्राप्ति की, दरियाफ़्त करें, और जब-तब वास्ते इज़हार करने हाल अपने अभ्यास के, और दरियाफ़्त करने ज़्यादा भेद, और तरकीब दूर करने विघ्नों के, जो हालत अभ्यास में वाक़ै होते हैं, आना-जाना जारी रक्खें तो यह कार्रवाई मूर्ति और निशान की पूजा में दाख़िल नहीं हो सकती, क्योंकि जहाँ-तहाँ ऐसे स्थानों पर सतसंग और अंतर का अभ्यास जारी है, वहाँ जो लोग परमार्थी फ़ायदा हासिल करने के लिए जमा होंगे, वे किसी सूरत में बाहर की कार्रवाई में नहीं अटकने पावेंगे और न वहाँ बाहर की कार्रवाई का कुछ उपदेश जारी होगा। वहाँ जो कुछ कि ज़ाहिरी भाव और अदब के क़ायदे बरते जाते हैं, वे, ब-सबब मुहब्बत महात्माओं के, और ख़्याल उनकी बुज़ुर्गी के, बर्ताव में आते

हैं, न कि स्थान या निशान की पूजा, और उसी को मालिक समझ कर और उसका इष्ट बाँध कर पूजा में दाख़िल हो सकते हैं। और जहाँ कहीं कि सतसंग और उन महात्माओं का चलाया हुआ तरीक़ा अंतर अभ्यास का, वास्ते प्राप्ति आला दर्जे के परमार्थ के, जारी नहीं है और न कोई वहाँ किसी दर्जे के अभ्यासी रहते हैं, तो जिस क़दर कारवाई, भाव और अदब वग़ैरा की, वहाँ जारी है, वह कर्म और भ्रम में दाख़िल होगी। और उस कारवाई से जीवों के न तो संशय और भ्रम दूर होंगे और न आला दर्जे के परमार्थ हासिल करने का तरीक़ा मालूम होगा। जिस क़दर कि तन, मन, धन वहाँ पर लोग जमा होकर लगावेंगे, उसका फल थोड़ा-बहुत सुख इस लोक में या स्वर्ग आदिक में, जैसे कि और शुभ कर्मों का फल मिलता है, पावेंगे ॥

बचन उन्नीसवाँ

संत मत में ज़ाहिरी यानी बाहरमुख कारवाई

संत अथवा राधास्वामी मत में जो जो अभ्यास कि जारी हैं, उनकी कारवाई अन्तर में ऊँचे घाट पर होती है और बाहर, सिवाय सतसंग और सेवा और आरती के, कोई कारवाई नहीं होती और इनका हाल मुफ़स्सल नीचे लिखा जाता है ॥

१—पहिले, "सतसंग"। यह संत सतगुरु या साध

गुरु या अभ्यासी और प्रेमी सतसंगी के संग का नाम है। इसमें सच्चे मालिक, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का निर्णय, और उन की और संत सतगुरु की महिमा और उनके चरणों में दीनता और प्रेम और प्रतीत पैदा करने और बढ़ाने का ज़िक्र होता है और संत सतगुरु की बानी का पाठ और सच्चे मत यानी राधास्वामी मत का निरूपण और सच्चे मालिक और उससे मिलने के सच्चे रास्ते और जुगत का भेद और अभ्यास की तरकीब और उसकी बड़ाई और उसका फल और असर, जैसा कुछ कि अभ्यासी को वक़्त पर मालूम होता जाता है, वर्णन किया जाता है, और संसार का हर वक़्त बदलने वाला हाल और उसके भोगों और पदार्थों का नाशमान होना समझा कर उसमें वाजिबी और ज़रूरी तौर पर बर्तने की हिदायत की जाती है। ऐसे सतसंग की ज़रूरत हर एक सच्चे परमार्थी यानी सच्चे मालिक के प्रेमी को ज़्यादा से ज़्यादा है, क्योंकि बिना उसके, भ्रम और संशय दूर नहीं होते और पुरानी, रसमी, और क़ौमी और संसारी चाल और व्यवहार, जिसका मन वर्षों से आदी हो रहा है और जो सच्चे परमार्थ में विघ्न डालते हैं, नहीं छूट सकते, और सच्चे मालिक की मौजूदगी का सच्चा यक़ीन दिल में नहीं आ सकता, और न सच्ची प्रीति मन में पैदा होती है, और न वह जैसा चाहिए, दिन-दिन बढ़ती है, और न अभ्यास सुरत-शब्द योग का दुरुस्ती से बन सकता है और न उसकी तरक़्क़ी हो सकती है।

२—दूसरे, "सेवा"। इसकी तीन क़िस्में हैं। पहिले, मन की सेवा–और वह यह है कि बाहर में सतसंग और दर्शन, और अंतर में सुमिरन और ध्यान करना, प्रीति और प्रतीत के साथ। दूसरे, तन की सेवा और यह हाथ-पाँव की कारवाई है जैसे चरण दबाना, पंखा करना, पानी लाना, खाना पकाना, हाथ धुलाना, फ़र्श बिछाना, झाड़ू लगाना, और जो काम जिस वक़्त मुनासिब मालूम होवे। तीसरे, धन की सेवा और वह यह है कि जिस क़दर जिससे अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़ हो सके, प्रशाद और भोग रखना, साधुओं का भंडारा करना, ग़रीबों और मोहताजों के लिए मालिक के नाम पर खाना और कपड़ा देना, साधों और सतसंगियों के लिए बाग़ लगाना और मकान बनवाना॥

३—पहिली सेवा सब परमार्थियों को ज़रूर चाहिए। दूसरी सेवा उन लोगों के वास्ते ख़ास कर मुक़र्रर हुई है जिनका मन सतसंग और ध्यान और भजन में कम लगता है पर सेवा करके प्रीति और प्रतीत उनकी बढ़ती जावेगी और दिन-दिन सतसंग और अभ्यास में प्यार और शौक़ बढ़ता जावेगा। और यही सेवा उन अभ्यासियों के वास्ते भी है कि जिनके मन और सुरत भजन में ज़्यादा लगते हैं और प्रेम और उमंग उनकी ज़्यादा होती जाती है कि उस उमंग में उनका मन आप ही आप थोड़ी-बहुत सेवा करने को चाहता है और निहायत दीनता के साथ ऐसी सेवा, अन्य सेवकों से माँग कर करने लगते हैं। और इस में फ़ायदा यह है कि उनके अंग २ में प्रेम धस जाता है

और जब-जब कि सुरत उनकी ऊपर को विशेष चढ़ जाती है, तब ऐसी सेवा करके उसकी धार नीचे को, यानी देह में, उतर कर उनके हाथ-पैरों को जो किसी क़दर कसरत भजन से सुन्न यानी सुस्त पड़ जाते हैं, ताक़त और चालाकी देती है। तीसरी, सेवा उनके वास्ते है जिनके पास थोड़ा या बहुत धन हैं और इससे उनकी प्रीति और प्रतीत भी ज़ाहिर होती है और उसकी तरक़्क़ी भी होती है, क्योंकि जब उनको सच्ची प्रीति और प्रतीत मालिक और गुरू के चरणों में आई, तब मुमकिन नहीं कि उन से कोई सेवा तन, मन और धन की बाक़ी रह जावे। और दुनिया में भी जहाँ कि आपस में मुहब्बत होती है, वहाँ बहुत ख़ुशी के साथ धन ख़र्च किया जाता है और तन की सेवा भी उमंग के साथ करते हैं। फिर परमार्थ में जहाँ कि सच्ची प्रीति का कारख़ाना है, सच्चे प्रेमी और सच्चे प्रतीत वाले के मन में निहायत दर्जे की उमंग, वास्ते करने इन सेवाओं के, उठती है और जिस क़दर ऐसी सेवायें उससे बनती जाती हैं, उसी क़दर रस परमार्थ का, अंतर और बाहर, उस सेवक को ज़्यादा से ज़्यादा मिलता जाता है॥

४—ये तीनों क़िस्मों की सेवायें सब मतों में जारी हैं। और सबब इनके जारी होने का यह है कि दुनिया में सब जीव तन, मन और धन में बँधे हुए हैं। और इन्हीं की प्रीति हर एक के मन में धरी हुई है। और जब कोई परमार्थ में आया, तब संत और महात्मा चाहते हैं कि उस के मन में मालिक की प्रीति ज़बर पैदा होवे, तब उसका सच्चा उद्धार

मुमकिन होगा यानी तन, मन और धन की प्रीति आहि-स्ता-आहिस्ता सतसंग और अभ्यास करके हलकी होती जावेगी और उसकी जगह मालिक और गुरू की प्रीति पैदा होकर दिन-दिन बढ़ती जावेगी। जब ऐसी सूरत हुई, तब वह परमार्थी, जैसे कि दुनिया की प्रीति की जगह बहुत ख़ुशी के साथ तन, मन और धन की सेवा करता है यानी अपने दोस्त और अज़ीज़ के वास्ते तन, मन और धन मगन होकर ख़र्च करता है, इसी तरह, जब कि उसको सच्चे मालिक की प्रतीत आई और प्रेम मन में जागा, तब वह गुरू और साध और प्रेमी सतसंगी की हर तरह से सेवा करने को, उमंग के साथ, अन्तर से चाहता है, और जब ऐसी सेवा बन पड़ती है, तब उसको निहायत ख़ुशी और ताज़गी होती है और जब तक सेवा न बने, तब तक मन उस का उदास और सुस्त रहता है। इस वास्ते यह सब सेवायें निशान और सुबूत इस बात के हैं कि सेवा करने वाले के मन में सच्ची प्रीति और प्रतीत मालिक के चरणों में आई और उसने गुरू और साध और सतसंगियों को मालिक का प्यारा समझा और उनके साथ बिरादराना मुहब्बत करने लगा। नहीं तो अपने मन के शौक़ पूरा करने को और भोगों के रस लेने के लिए और अपनी स्त्री और लड़के-वाले की ख़ातिर और बिरादरी के राज़ी और ख़ुश रखने के लिए सब कोई तन, मन और धन लगा रहे हैं और फल उसका सिवाय संसारी ख़ुशी और मन और इन्द्रियों के हुक्म में चलने और बिरादरी को राज़ी रखने के, और कुछ नहीं मिल सकता है। और परमार्थी को ऐसी

सेवायें करने से सच्चे मालिक की प्रसन्नता और रज़ामन्दी हासिल होती है और उसका फल यह होता है कि दिन-दिन उसकी प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जाती है, और अन्तर में भजन और ध्यान का रस दिन-दिन ज़्यादा मिलता जाता है, और सब तरह से सच्चे मालिक की दया, हर काम में, अंतर और बाहर, अपने ऊपर निरख और परख कर मन ही मन में मगन होता है और भरोसा मालिक के चरणों में मज़बूत होता जाता है ॥

५—तीसरे "आरती"। यह तरकीब ध्यान की है कि सन्मुख गुरू या साध के बैठ कर और दृष्टि से दृष्टि जोड़ कर अंतर में मन और सुरत को खींचकर ऊपर को चढ़ाया जाता है। सब अभ्यासी हर रोज़ यही अभ्यास आँखें बन्द करके अपने अंतर में करते हैं। पर कभी-कभी सन्मुख गुरू या साध के बैठ कर करने में मदद मिलती है और मन और इन्द्रियां निश्चल हो जाते हैं और खिंचाव और चढ़ाई भी हर एक की ताक़त के मुवाफ़िक आसानी से होती है। इस सबब से रस और आनन्द विशेष आता है और इसी तरह चन्द मर्तबा अभ्यास करने से ताक़त बढ़ती है। आरती के वक़्त रोशनी यानी जोति जगाई जाती है, इस मतलब से कि अक्सर यह काम रात के वक़्त किया जाता है कि दर्शन अच्छी तरह से होवें और कुछ प्रशाद भी, बतौर भोग, सन्मुख रक्खा जाता है कि बाद आरती के वह सतसंगियों और साधुओं में तक़सीम हो जाता है और अपनी श्रद्धा और उमंग के

मुवाफ़िक़ कभी-कभी पोशाक और नक़द भी भेंट किया जाता है, और वक़्त आरती के, प्रेम अंग वाले और आरती के शब्दों का लहजे और स्वर के साथ पाठ किया जाता है और सब सतसंगी और साधू आरती करने वाले के मुवाफ़िक़ पाठ को चित्त से सुन कर, अपने-अपने अंतर में ध्यान करते हैं, पर सन्मुख वही शख़्स बैठता है जो आरती करता है। जो शब्द कि गाया जाता है, उसके मतलब और अंतरी मक़ामों पर नज़र रख कर, अन्तर में ध्यान और चढ़ाई की जाती है। यह काम हर रोज़ नहीं बन सकता है, पर जैसा जिसका शौक़ होवे, उस के मुवाफ़िक़ कभी-कभी या महीने या हफ़्ते में एक या दो दफ़ा उसकी कार्रवाई होती है ॥

६—सिवाय ऊपर की लिखी कार्रवाई के, चार काम और हैं जो वास्ते परमार्थी फ़ायदे सच्चे प्रेमियों के, संत-मत में बाहर की कार्रवाई में शामिल किये गये हैं और थोड़े-बहुत हर एक मत में जारी हैं। इस जगह उनकी तफ़सील, मय उनके फ़ायदे के लिखी जाती है, जिस से सब सतसंगियों को उनके जारी होने का सबब और फ़ायदा मालूम हो जावे और मन में भ्रम और संशय पैदा न होवें। और वे चार काम ये हैं—पहिले, गुरू और साध के चरणों पर मत्था टेकना या चरण छूना। दूसरे, हार या फूल चढ़ाना। तीसरे, प्रशादी लेना। और चौथे, चरणामृत लेना। अब हर एक का बयान जुदा-जुदा किया जाता है।

(१)-गुरु और साध के चरणों पर मत्था टेकना या चरण छूना

७—इस कार्रवाई से मतलब यह है कि गुरू और साध की दया हासिल होवे और चरणों को स्पर्श करके यानी छू कर वह शीतल रूहानी धार जोकि हर वक़्त उनके चरणों से निकलती रहती है, प्रेमी परमार्थी की रूह यानी सुरत और देह में असर करे। अब मालूम होवे कि हर एक शख़्स की कुल्ल देह से, और ख़ास कर हाथ और पैर से, हर वक़्त चैतन्य धार, रोशनी रूप, निकलती रहती है। जो संसारी और दुनियादार लोग हैं और ख़ास कर वे, जो नशे की चीज़ें खाते-पीते रहते हैं और मांस आहार भी करते हैं, उनकी धार, उनकी रहनी और खान-पान के मुवाफ़िक़, बहुत नीचे के दर्जे की, अथवा ब-निस्बत संत और साध की धार के, जिनकी सुरत ऊँचे के देश की बासी है, बहुत मैली और कम रोशनी वाली होती है, और संत और साध की धार निहायत निर्मल और चैतन्य और रोशन होती है। यह धार, वक़्त छूने उनके चरणों के, हाथ या माथे से, फौरन छूने वाले के बदन में समा जाती है और उसकी रूह यानी सुरत में ऊपर के देश की तरफ़ झुकाव और संत चरण में प्रीति पैदा करती है। हर मुल्क और हर क़ौम के लोगों में, जहाँ-जहाँ आपस में प्रीति या रिश्तेदारी है, यह दस्तूर जारी है कि चाहे मर्द होवें या औरतें, जब-जब आपस में मिलते हैं तो किसी न किसी तरह से एक दूसरे के बदन को छूते हैं, जैसे किसी क़ौम में छाती

से लगा कर मुलाक़ात करते हैं या हाथ या पाँव छूते हैं और किसी क़ौम में सिर्फ़ हाथ मिलाते हैं और ज़्यादा प्यार और मुहब्बत की हालत में मुँह या हाथ पाँव चूमते हैं। ग़रज़ इससे साफ़ यह मालूम होती है कि जहाँ अदब या प्यार या मुहब्बत दिलों में है, वहाँ ज़रूर बग़ैर छूने एक दूसरे की देह के, मन को चैन नहीं आता है। और इस छूने से एक की चैतन्य धार दूसरे की चैतन्य धार से मिल जाती है, क्योंकि असल में सब मनुष्यों का स्वरूप चैतन्य धार है जो ब-राह रगों के तमाम बदन और अंग-अंग में फैली हुई है, और प्यार और मुहब्बत और अदब का जोश और असर उसी धार में है। सो वह धार जब तक कि दूसरे की धार से किसी क़दर न मिले, अपने प्यार या मुहब्बत या अदब का फ़ायदा यानी रस और आनन्द नहीं हासिल कर सकती है। इस वास्ते सब देशों में और सब क़ौमों में कोई न कोई चाल इस क़िस्म की जारी है कि जिससे यह मतलब हासिल होवे। फिर संत सतगुरु या साधगुरू के चरणों के स्पर्श से, कि जिनकी देह से निहायत ऊँचे दर्जे की चैतन्य की धार हर वक़्त जारी है, किस क़दर फ़ायदा, अलावा उनकी दया ख़ास के, यानी रस और आनन्द हासिल होना, मुमकिन है? इस वास्ते हर एक शख़्स को चाहिये कि जब कहीं ऐसे महात्मा मिलें, ज़रूर अपना परमार्थी और संसारी भाग बढ़ाने के वास्ते उनके चरणों में मत्था टेकें या उनके चरणों को भाव और प्रेम के साथ सिर झुका कर छुयें ॥

(२)-हार और फूल चढ़ाना

८—यह कारवाई भी भाव और प्यार और अदब के साथ संत सतगुरु और साध और महात्मा के सन्मुख की जाती है। और मतलब उसका यह है कि उसकी दया प्राप्त होवे और उनको निर्मल चैतन्य धार जो कि ऐन अमी रूप है और हर वक़्त उनकी देह से, जैसा कि ऊपर लिखा गया है, निकलती रहती है, फूलों में समा कर, जब कि वह हार फूल प्रशादी के तौर से लिए जावें, सेवक के अंग में उसका असर पैदा होवे यानी वह निर्मल धार सेवक के चैतन्य की धार से मिल कर उस के मुख का ऊँचे की तरफ़ को झुकाव करे।

(३)-प्रशादी लेना

९—यह कारवाई दो तरह से होती है। एक तो यह कि जब संत सतगुरु या साध या कोई महात्मा भोजन पावें और जो कुछ उनका उच्छिष्ट यानी खाने से बाक़ी रहे, उसको उन के सेवक या इष्ट वाले, प्रशाद समझ कर आपस में तक़सीम करके खावें, या जो प्रशाद वग़ैरा उनके भोग लगाने के पहिले तक़सीम होवे, उसको हर एक शख़्स उनसे प्रशादी करा लेवे यानी वे उस चीज़ पर अपना लब लगा देवें, और तब वह पवित्र, और सेवकों के पाने के लायक़ समझी जावे।

ज़ाहिर है कि हर एक मनुष्य और जानवर के लब में असर है। कितनी ही छोटी बीमारियाँ को सिर्फ़ बीमार के अपने लब के लगाने से आराम हो जाता है। और कुत्ते अपनी चोट और ज़ख़्म को अपनी ज़बान से चाट कर दुरुस्त कर लेते हैं। और कोई-कोई आदमियों के फोड़े या ज़ख़्म दूसरे आदमी के लब लगाने और उनका मवाद् चूस कर निकाल देने से अच्छे हो जाते हैं। असल यह है कि हर एक जानदार की ज़बान पर चैतन्य की धार जो कि अमी रूप है, जारी रहती है, और उसी में यह असर फोड़े और ज़ख़्म और दूसरी बीमारी के अच्छे करने का है, और उसी धार के सबब से आदमी को रस और स्वाद् खाने-पीने का आता है। तो जब कि आम आदमियों और जानवरों की ज़बान और उसके लुआब में इस क़द्र असर है, तो फिर संत और साध और दूसरे महात्माओं के लुआब की क्या तारीफ़ की जावे? और उस का असर किस क़द्र असर वाला होगा? उनकी धार बहुत ऊँचे देश से और निहायत निर्मल, अमी रूप, आती है और वह सिर्फ़ देह को ही नहीं बल्कि रूह यानी सुरत और मन को पवित्र करने वाली और ताज़गी बख़्शने वाली है। जब कि कोई खाने की चीज़ उसके मुख से लगे तो वह निहायत पवित्र और निर्मल चैतन्य की धार से असर लेकर निहायत रसीली हो गई, तो बड़े भाग्य हैं उन लोगों के कि जिनको ऐसी ख़ास पवित्र प्रशादी मिले। इसके पाने से सच्चे और प्रेमी परमार्थी की प्रीति और प्रतीत सच्चे मालिक और गुरू के चरणों में

दिन-दिन बढ़ती जावेगी और अंतर में सफ़ाई हासिल होती जावेगी। और मालूम होवे कि जहाँ कहीं आपस में मनुष्यों की संसारी मुहब्बत गहरी है, वहाँ ज़रूर वे अक्सर एक साथ खाते-पीते हैं और बहुत ख़ुशी से एक दूसरे का झूठन पाते हैं। तो जब कि संसारी प्रीति में इस क़दर तबियत मायल हो जाती है कि एक दूसरे की छुई हुई या झूठी चीज़ से परहेज़ नहीं रहता, तो संत और साध और महात्मा की प्रशादी, जब कि उनको गुरू धारण किया, किस क़दर प्रीति और सफ़ाई और उमंग के साथ माँग कर लेना चाहिये? संसारी कार्रवाई में आपस में साथ खाने या एक दूसरे की झूठन पाने से संसारी मुहब्बत मज़बूत होती है और कपट दूर हो जाता है और संत या साध या महात्मा की प्रशादी लेने से मालिक के चरणों में प्रीति और प्रतीत मज़बूत होकर दया और मेहर प्राप्त होती है कि जिससे दुनिया में भी रक्षा और मरने के बाद जीव का कारज दुरुस्त बनता है॥

(४)-चरणामृत लेना

१०—यह कार्रवाई भी उसी मुवाफ़िक़ समझना चाहिये जैसा कि प्रशादी के निस्बत बयान हो चुका है। और यह भी कि संत और साध और गुरू के चरणों में भाव और भक्ति और दीनता का निशान है। अब मालूम

होवे कि संत और साध और महात्माओं की सब देह, और ख़ास कर उनके अंगूठों और उंगलियों से हर वक़्त निर्मल चैतन्य की धार अमी रूप जारी रहती है और इसी तरह सब जीवों की देह और उंगलियों से भी धार जारी रहती है। पर संत और साध की धार बहुत ऊँचे देश से आती है और महा निर्मल और अमी रूप और रोशन चैतन्य है, मगर आम जीवों की धार, ब-निस्बत उनकी धार के, मलीन और कसीफ़ यानी स्थूल चैतन्य की धार है। इस सबब से परमार्थी लोग वास्ते प्राप्ति मेहर और दया और होने सफ़ाई अंतर के, पुराने वक़्तों से, गुरू और साध के चरणों को दूध या जल से धोकर उस जल या दूध को चरणामृत समझ कर पान करते आये हैं। और अब भी सब जगह सब मतों में थोड़ी या बहुत यह चाल किसी न किसी सूरत या तौर से जारी है॥

११—यहाँ इस बात का बयान करना ज़रूर है कि पानी फ़ौरन चैतन्य की धार को जज़्ब कर लेता है यानी अपने में समा लेता है। इस सबब से जल का इस्तेमाल कसरत से, वास्ते इस काम के, मंदिरों में और संत और साध और गुरू की संगत में जारी है। हर एक तारघर में जहाँ तार की ख़बरें आती जाती हैं, एक सिरा तार का हमेशा कुए में पानी में डूबा रहता है, इस मतलब से कि जब बिजली चमके तो उसकी धार उस तार के वसीले से पानी में समा जावे। और जो ऐसा न किया जावे तो वह बिजली की धार तारघर को या उस आदमी को, जो

तार का काम करता है, जला देवे। कहीं कहीं तार का सिरा बजाय पानी के, ज़मीन में गाड़ दिया जाता है, और उससे भी यही मतलब हासिल होता है क्योंकि ज़मीन भी बिजली की धार को अपने में समा लेती है। ऐसे ही अक्सर लोग दूर ले जाने के वास्ते चरणामृत को मिट्टी में मिला लेते हैं और उसको थोड़ा-थोड़ा करके अरसे तक काम में लेते हैं ॥

बचन बीसवाँ

नेत्र के स्थान से सुरत को अन्तर में चढ़ाना ही सच्चा मार्ग उद्धार का है

१—हर एक आदमी को, चाहे मर्द होवे या औरत, जो दुनिया के हाल को ग़ौर से देखता है और जो कुछ कि हालतें जीवों पर गुज़रती रहती हैं, विचार के साथ उन पर नज़र करता है, तो उसको थोड़े से सोच और विचार से मालूम होगा कि इस दुनिया में कोई चीज़ ठहराऊ नहीं है और यहाँ थोड़े दिनों का बास है। और इस थोड़े दिनों के आराम पाने और ज़रूरी चाहों के पूरा करने के लिए सब जीव सुबह से शाम तक मेहनत और मशक़्क़त करते हैं। और इस आराम के हासिल करने के लिए तरह-तरह की तकलीफ़ें और कर्मों का भार अपने सिर पर उठाते हैं। और अब अपनी ज़रूरत के मुवाफ़िक़ सामान मिल जाता

है, तब लालच बढ़ाकर तरह-तरह के फ़िज़ूल सामान और इन्द्रियों के भोगों के हासिल करने के लिए कोशिश करते हैं, और अपने आप को चिन्ता और फ़िक्र और रंज में डालते हैं, और बहुत सी जगहों और चीज़ों में बे-फ़ायदा मुहब्बत और बंधन पैदा करते हैं। और फिर नतीजा यानी फल उसका यह होता है कि थोड़ा-बहुत इस क़िस्म का सामान इकट्ठा करके और कुछ उसका भोग और रस लेकर सब का सब सामान मरने के वक़्त यहीं छोड़ कर चले जाते हैं ॥

२—विचारवान आदमी ऐसे हाल को ग़ौर से देखकर, ज़रूर अपने मन में यह ख़्याल करेगा कि जैसे इस दुनिया में हर एक चीज़ में ऊँचे से ऊँचे और नीचे से नीचे दर्जे हैं, इसी तरह कुल रचना में भी ज़रूर दर्जे होंगे, यानी इस लोक से और बढ़कर लोक ज़रूर ऊँचे दर्जे में होंगे, और वहाँ मेहनत और तकलीफ़ कम, और सुख और आराम ज़्यादा, और ठहराव भी ज़्यादा होगा। और इसी तरह कोई ऐसा भी दर्जा होगा और उस में लोक भी ऐसे होंगे कि जहाँ का सुख और आनन्द बहुत भारी और हमेशा का क़ायम रहनेवाला हो, और जीव भी वहाँ हमेशा रहकर उस आनन्द का रस लेता रहे, क्योंकि इस दुनिया में भुनगे से लगा कर आदमी तक, कितने ही दर्जे नज़र आते हैं, और हर एक ऊँचे दर्जे में ठहराव और सुख ज़्यादा से ज़्यादा होता जाता है, और आसमान पर तारा-मंडल और चाँद

और सूरज की रचना निहायत लतीफ़ और निहायत देर तक क़ायम रहने वाली नज़र आती है ॥

३—ऐसा विचारवान आदमी अपनी हालतों को भी, जो हर रोज़ उसके ऊपर गुज़रती हैं, ग़ौर से ख़याल करेगा और उनसे वे नतीजे, जो आगे लिखे जाते हैं, निकालेगा ॥

(क)—पहली हालत जाग्रत की कि जिस में यह आदमी इन्द्रियों के स्थान पर, ख़ास कर आँखों के तिल में, बैठ कर दुनिया की कार्रवाई करता है और जो सामान कि ब्रह्म और माया ने भोगों की क़िस्म से रचे हैं, उनका रस लेता है और देह के और दुनिया के दुख-सुख भोगता है ॥

(ख)—दूसरी हालत स्वप्न की यानी जब कि आदमी सोते में ख़्वाब देखता है। इस हालत में रूह यानी सुरत की धार इन्द्रियों और ख़ास कर आँख के स्थान से अन्दर की तरफ़ खिंच जाती है। और उस वक़्त देह और दुनिया और कुटुम्ब-परिवार और माया के पदार्थ और सामान और उनके दुख-सुख की, जो कि हालत जाग्रत में सताते हैं, बिल्कुल ख़बर नहीं रहती। और इस हालत का स्थान देह के अन्दर दूसरा है, और जिस देह से कि इस हालत में सुरत यानी रूह सुपने में बर्ताव करती है, वह भी दूसरे यानी सूक्ष्म या लतीफ़ है ॥

(ग)—तीसरी हालत सुषुप्ति यानी गहरी नींद की, जिस में सुरत यानी रूह को दोनों देहियों और उनकी हालतों से बिल्कुल बे-ख़बरी हो जाती है, यानी स्थूल देह जिससे जाग्रत की हालत में कार्रवाई होती है और सूक्ष्म

देह जिससे सुपने की हालत में कार्रवाई होती है, दोनों भूल जाती हैं और उनके दुख-सुख का भी असर वहाँ नहीं पहुँचता है ॥

४—इन तीनों हालतों की कैफ़ियत को विचार करने से यह बात साफ़ मालूम होती है कि यह तीनों देहियाँ (यानी स्थूल, सूक्ष्म और कारण) रूह यानी सुरत का स्वरूप नहीं हैं, बल्कि यह देहियाँ ख़ोल या ग़िलाफ़ मुवाफ़िक़ मकान के हैं, जिन में बैठ कर रूह यानी सुरत उनके औज़ारों यानी इन्द्रियों के वसीले से इस दुनिया में और स्वप्न देश में कार्रवाई करती है, और सुषुप्ति के देश में कुल्ल कार्रवाई इस क़िस्म की बन्द हो जाती है और जिस क़दर कि दुनिया और देह के दुख-सुख हैं, वह उसी हालत और उसी देह के संग करने से सुरत यानी रूह को व्यापते हैं । और जब वह हाल और उसकी देह बदल जाती है, तब उन दुक्खों और सुक्खों का असर सुरत यानी रूह पर बिल्कुल नहीं पहुँचता ॥

५—इस नतीजे से यह बात साफ़ ज़ाहिर होती है कि सुरत यानी रूह एक जुदी वस्तु यानी चीज़ है और देह जुदी चीज़ है, और सुरत को देहियों का संग करने और उनके औज़ारों यानी इन्द्रियों के वसीले से बाहर की रचना के पदार्थों का रस लेने और उन में मन को बाँधने और लगाने से दुख-सुख भोगना पड़ता है ॥

६—जो सुरत इस तरफ़ से यानी मन और इन्द्रियों और देहियों और भोगों की तरफ़ से चित को हटा कर

अंतर में अपने निज रूप की तरफ़, जो सुषुप्ति अवस्था यानी गहरी नींद की हालत के, परे है और फिर उस निज रूप के भंडार की तरफ़ जो कि माया की हद के पार है और वही सच्चे मालिक और सर्व रचना के पिता का धाम है, शौक़ के साथ तवज्जह करे, तो उसको अपने निज रूप का आनन्द और सुख हासिल होने लगे, और दुनिया और देह के दुख-सुख से निवृत्ति यानी अलेहदगी, जिसको मुक्ति कहते हैं, फ़ौरन हासिल होती हुई मालूम होने लगे ॥

७—सुरत यानी रूह और उसका भंडार सर्व आनन्द और सर्व सुख और चैतन्य शक्ति का खज़ाना है और जब वह उसी की धारों से इन्द्रियों के स्थान पर आकर ठहरती है, हर एक इन्द्रिय के भोग का रस मालूम होता है और जो वह धार न आवे तो कुछ मज़ा या रस या स्वाद मालूम नहीं हो सकता है ॥

८—यह बात, हालत स्वप्न के, विचारने से अच्छी तरह साबित हो सकती है, क्योंकि उस हालत में रूह यानी सुरत सब इन्द्रियों की कार्रवाई, उसी तौर पर जैसे कि जाग्रत अवस्था में करती है, ब-दस्तूर करती है, और उसी तरह का आनन्द और स्वाद हर एक इन्द्रिय की कार्रवाई में मालूम होता है जैसे कि हालत जाग्रत में। तो इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि यह सब रस और सुख और आनन्द रूह यानी सुरत की धार में हैं। और बाहर के पदार्थ सिर्फ़ एक वसीला उस धार के इन्द्रिय के

मक़ाम पर अन्दर से खींच कर लाने का है, यानी आदमी के अन्तर में सब रस और स्वाद और आनन्द हर तरह का और ताक़त उसके भोगने की मौजूद है।

९—विचारवान आदमी इन सब ऊपर की लिखी हुई बातों से, यानी दुनिया के हाल और अपनी हालतों को ग़ौर के साथ नज़र करने से आप समझ सकता है और उनसे यह नतीजा निकाल सकता है कि जो कोई पूर्ण आनन्द और पूर्ण सुख के भंडार में पहुँचना चाहे, उसको मुनासिब है कि भेद लेकर अपने अंतर में तवज्जह करे, और चलने की युक्ति दरियाफ़्त करके आँख के मक़ाम से, जहाँ कि इस सुरत की ख़ास बैठक जाग्रत की हालत में है, चलना शुरू करे, तो एक दिन अपने निज रूप का दर्शन कर सकता है और वहाँ से निज भंडार में, जहाँ से कि सब रूहें यानी सुरतें आई हैं, पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त हो सकता है॥

१०—मालूम होवे कि बे-शुमार रूहें इस लोक में आई हैं और इसी तरह हर लोक में कसरत से मौजूद हैं। फिर ज़रूर हुआ कि कोई भंडार ख़ास है कि जहाँ से ये आती हैं, क्योंकि हर एक देह यानी जिस्म में, चाहे वह ज़मीनी है, चाहे आसमानी, एक एक सुरत मौजूद है और उसकी ताक़त से उस देह यानी जिस्म की कुल्ल कार्रवाई जारी रहती है, और जब वह रूह उस देह को छोड़ देती है, उसी वक़्त वह देह बेकार होकर थोड़े अर्से में नेस्त-ओ-नाबूद (नाश) हो जाती है॥

११—रूह यानी सुरत के निज रूह और स्थान का हाल इस देह में, और भी उसके भंडार यानी कुल मालिक के मक़ाम का भेद और रास्ते का हाल और उसके तय करने की तरकीब सिर्फ़ राधास्वामी यानी संत मत में तफ़सील के साथ लिखी है। और मतों में इस हाल का बयान साफ़ तौर पर और तफ़सील के साथ नहीं पाया जाता है, क्योंकि जो यह हाल साफ़-साफ़ लिखा होता तो जितने मत कि दुनिया में जारी हैं, उनके मानने वाले सिर्फ़ पोथियाँ पढ़ने और पढ़ाने और बाहरी पूजा और रस्मों में अटके न रहते, और ज़रूर उनमें से थोड़े-बहुत, खोज करके, अंतर के अभ्यास में लगते, और वहाँ का रस पाकर अपने अपने मत वालों को जो बाहरमुखी पूजादि में भ्रम रहे हैं, समझा-बुझा कर उसी काम में लगाते, और हर एक अभ्यासी इस तरह अपनी सच्ची मुक्ति होती हुई अपने में आप परख कर थोड़ी बहुत शान्ति को प्राप्त होता ॥

१२—इस वास्ते मुनासिब और ज़रूर मालूम होता है कि हर एक आदमी, चाहे मर्द हो या औरत, इस दुनिया के नाशमान और अख़ीर में तकलीफ़ देने वाले सुखों का भरोसा न करके, उनकी चाह सिर्फ़ ज़रूरत के मुवाफ़िक़ उठावे, और सच्चे और पूर्ण और हमेशा क़ायम रहने वाले सुखों और आनन्द के हासिल करने के वास्ते और देह के संगी दुख-सुख और जन्म-मरण की तकलीफ़ात से बचने के लिये, जिस क़दर आराम और आसानी के साथ

कोशिश बन पड़े, हर रोज़ करे। और इस काम के करने के वास्ते, मुवाफ़िक उपदेश राधास्वामी मत के, यह ज़रूर नहीं है कि कोई आदमी अपना घर-बार और कुटुम्ब-परिवार और उद्यम और रोज़गार को छोड़ दे। सिर्फ़ इतना दरकार है कि फ़िज़ूल चाहें संसार के भोग-बिलास और नामवरी को छोड़कर, प्रेम और उमंग के साथ, थोड़ा-बहुत अभ्यास उस आसान युक्ति का, जो राधास्वामी दयाल ने अब जारी फ़रमाई है और जिसमें किसी क़िस्म का ख़ौफ़ और ख़तरा नहीं है, हर रोज़ एक घंटा या दो घंटे या ज़्यादा, दो दफ़े या तीन दफ़े करे, तो उसका फ़ायदा अभ्यासी को थोड़े दिनों में अपने अंतर में दिखाई देगा, और फिर उसका शौक़ सच्चे मालिक की दया से अंतर में परिचय पाकर दिन-दिन बढ़ता जावेगा, और इस तरकीब से एक दिन निज धाम में पहुँच कर सच्चे मालिक राधास्वामी का दर्शन मिल जावेगा।

१३—और जो कोई सच्चे मालिक की खोज अपने घट में नहीं करेगा और सुरत-शब्द योग की युक्ति को, वास्ते हासिल होने दर्शन सच्चे मालिक के और पहुँचने धुर धाम के, दरियाफ़्त करके उसकी कमाई नहीं करेगा और सिर्फ़ मज़हबी किताबों के पढ़ने और बाहर की पूजा और परमार्थी रस्मों में अटका रहेगा कि जिनका सिल-सिला रूह की धार के साथ अंतर में नहीं लगा हुआ है, तो उसको सच्ची मुक्ति कभी नहीं हासिल होगी, और न वह जन्म-मरण के चक्कर और माया की हद से बाहर

जावेगा। ऐसा जीव इसी लोक में या और ऊँचे-नीचे लोकों में जन्म पाकर सुख-दुख भोगता रहेगा, और यह उत्तम नर देही जिसमें सच्चे परमार्थ की कमाई हो सकती है, मुफ़्त बरबाद जावेगी और आख़ीर वक़्त पर अफ़सोस और पछतावा कुछ फ़ायदा न देवेगा। इस वास्ते हर एक आदमी को जो अपने नफ़े और नुक़सान की तमीज़ कर सकता है, मुनासिब है कि जहाँ दुनिया के सब काम करता है और रोज़गार के लिये सख़्त मेहनत उठाता है, अपने जीव के कल्याण के लिए भी कुछ थोड़ी-बहुत कार्रवाई दो घंटे, तीन घंटे हर रोज़, बिला नाग़ा किया करे। इस में उसका और उसके परिवार का फ़ायदा इस दुनिया में, और बाद मरने के, परलोक में होगा, और बहुत सी तकलीफ़ों और दुखों से, राधास्वामी दयाल की कृपा से, सहज में उसका बचाव हो जावेगा ॥

———

बचन इक्कीसवाँ

सब जीवों को सुरत-शब्द अभ्यास का, वास्ते कल्याण और उद्धार अपने जीव के, करना चाहिये

१—सब लोग हर रोज़ नौ द्वार के वार बर्त रहे हैं, यानी (दो आँखों के, दो कानों के, दो नाक के, एक मुँह, एक पेशाब और एक पाख़ाने का) कुल्ल नौ द्वारे जो पिंड में हैं, इन में होकर सुरत की धार दुनिया के अनेक तरह

के भोगों और पदार्थों में बर्ताव कर रही है, और एक एक द्वार का रस और मज़ा जो हासिल होता है, उसी में सब जीवों का निहायत दर्जे का बंधन हो रहा है।

२—सब इन्द्रियों का पूरा-पूरा भोग तो किसी बिरले जीव को, जैसे महाराजों के महाराजा को हासिल होगा, पर कुछ इन्द्रियों का भोग तो, थोड़ा-बहुत, हर एक जीव को अपनी-अपनी ताक़त और सामान के मुवाफ़िक़ हासिल है। और उस में इस क़दर आसक्ति यानी बंधन मन का हो रहा है कि बग़ैर उसके, जीव अपनी ज़िन्दगी मुश्किल समझता है और उसके छोड़ने में अपने जीव की हानि देखता है॥

३—सुरत की बैठक तीसरे तिल में है जो दोनों आँखों के मध्य के मुक़ाबिल, अंदर की तरफ़ है। और उसी स्थान से सब इन्द्रियों का सूत लगा हुआ है। और उसी स्थान से (जो सहस दल कँवल के नीचे है) सुरत की धारें सब इन्द्रियों में और कुल देह के अंग-अंग में जारी हुई हैं। गोया सुरत, जो कि सूरज के मुवाफ़िक़ है, अपनी किरणियों यानी धारों से देह में व्यापक हो रही है और अपनी धारों से अंग-अंग को चैतन्य कर रही है॥

४—जब कि सुरत की एक धार में, जो कि एक एक इन्द्रिय के स्थान पर आकर कार्रवाई करती है, इस क़दर रस और आनन्द है कि कोई कोई आदमी सिर्फ़ एक एक इन्द्रिय के रस और मज़े के शौक़ में अपनी जान और माल सब दे देते हैं, जैसे शराबी या अफ़यूनी

और चटोरे, खाने-पीने और नशे के शौक़ वाले, ज़बान इन्द्रिय के वश होकर अपना धन और तन उसके नज़र कर देते हैं और तमाशबीन यानी वेश्यागामी आदमी काम इन्द्रिय के वश होकर अपनी जान और माल उस काम में खर्च कर देता है और अपने अज़ीज़ और रिश्ते-दार और बिरादरी की मुहब्बत और शर्म और ख़ौफ़ सब छोड़ देता है, तो रूह यानी सुरत की धार में जो ऊँचे मुक़ाम यानी दसवें द्वार से पिंड में आती है (और जो अपने मक़ाम पर बैठ कर और अनेक धार होकर मिस्ल हज़ारे-फ़व्वारे के तमाम बदन में फैली है) किस क़दर रस और आनन्द होना चाहिये ? यानी उस धार को, कुल रस और मज़ा और आनन्द का (जो पिंड में इन्द्रियों के वसीले से हासिल हो सकता है) भंडार क्यों नहीं समझना चाहिये।

५—अक़्लमंद आदमी जो इस बात को ग़ौर से समझे, वह फ़ौरन यह नतीजा निकाल सकता है कि जब कि सर्व रस और मज़े और आनन्द सुरत की धारों में हैं और वे सब मज़े और रस और आनन्द, अन्तर में, हर एक जीव के मौजूद हैं, जैसा कि स्वप्न अवस्था के हाल को विचार करके मालूम हो सकता है, तो फिर हर एक जीव को चाहिये कि जहाँ तक हो सके, अपने अन्तर में उन मज़ों और रसों को आसानी से हासिल करने की युक्ति दरियाफ़्त करके, थोड़ी-बहुत उसकी कमाई शुरू कर देवे, तो आहिस्ता-आहिस्ता ज़रूर एक रोज़ उस स्थान पर

पहुँचना मुमकिन है, जहाँ कि सुरत की नशिस्त (बैठक) है और जहाँ पहुँच कर उस सुरत की धार से (जो सब धारों का, जो इन्द्रियों के द्वारों से जारी होती हैं, ख़ज़ाना है) मिल कर उसका आनन्द (जिस में सर्व इन्द्रियों के मज़े शामिल हैं) ले सकता है ॥

६—यह बात कुछ नई और ज़्यादा मुश्किल मालूम नहीं होती, क्योंकि बहुत से आदमी सिर्फ़ चार-पाँच इन्द्रियों के रस और स्वाद के हासिल करने के लिये रात-दिन मेहनत करते हैं, और फिर भी वे रस पूरे-पूरे जैसा कि मन चाहता है, हासिल नहीं होते। और इन रसों के हासिल करने के लिये उनकी सुरत की धार चार-पाँच द्वारों पर बैठ कर अपनी ताक़त को बाहरमुख भोगों में ख़र्च करती है। और जिन को सर्व इन्द्रियों के रस हासिल हैं, उनकी सुरत की धार का बर्ताव नौ द्वारों में हर रोज़ रहता है, यानी इन द्वारों के वसीले से बाहर की तरफ़ दुनिया के भोगों और सामान में वे धारें रोज़मर्रा बहती रहती हैं यानी ख़र्च होती रहती हैं। फिर दसवें द्वार की तरफ़ चलने के लिये, जो अन्दर दिमाग़ यानी सिर के गुप्त है और जहाँ से शब्द की धार, रूह यानी सुरत के स्थान तक, और वहाँ से नीचे की तरफ़, हर वक़्त जारी है और तमाम बदन को चैतन्य और ताज़ा करती रहती है, किस क़दर तवज्जह हर एक आदमी को करना ज़रूर और मुनासिब मालूम होता है ? जो इस क़दर मेहनत न बने, जैसे कि दुनिया के भोगों के हासिल करने के लिये हर कोई कर रहा है, तो

थोड़ी सी मेहनत यानी दो-तीन घंटे अभ्यास हर रोज़ करना, अपनी रूह यानी जीव के फ़ायदे और कल्याण के वास्ते ज़रूरी, बल्कि फ़र्ज़ मालूम होता है ॥

७—यह सच है कि अन्तर का मज़ा और रस सुरत-शब्द योग के वसीले से ऐसी जल्दी नहीं मालूम होता, जैसा कि बाहर के भोगों का रस फ़ौरन इन्द्रियों के वसीले से मिलता है। और इसका सबब यह है कि इन्द्रियों की कार्रवाई करते हुए जीव को जन्मान जन्म और हाल के जन्म में सालहा साल गुज़र गये हैं जबकि अन्तरमुख शब्द की कमाई हाल में ही शुरू की है। फिर कैसे दोनों अभ्यासों का फल बराबर जल्द मिले ? सिवाय इसके, इस काम में, यानी अभ्यास में, बहुत थोड़ा वक़्त लगाया जाता है और उस में से भी बहुत सा वक़्त गुनावन यानी ख़्यालात दुनियावी में गुज़र जाता है, और थोड़े से थोड़ा वक़्त ख़ालिस अभ्यास में (ख़र्च) होता है। फिर किस तरह ऐसा जल्दी असर और फ़ायदा अंतरमुख कमाई का सही मालूम पड़े ? इस वास्ते शौक़ीन को मुनासिब है कि जिस क़दर बन सके रोज़ाना अभ्यास, जिस क़दर दुरुस्ती के साथ बने, करता रहे, और जो रस और आनन्द आला दर्जे का अंतर में न मालूम पड़े तो अपनी हालत को परख करके देखे कि अभ्यास से पहले किस क़दर उसके मन का बंधन संसार और उसके पदार्थों में था, और बाद गुज़रने कुछ अर्से, जैसे एक दो वर्ष के, किस क़दर प्यार और भाव उसका दुनिया और उसके पदार्थों में कम हुआ,

और किस क़दर प्रीति और प्रतीत उसकी, सच्चे मालिक और गुरू के चरणों में बढ़ी, और किस क़दर उसका भजन और सतसंग में चाव और प्यार बढ़ा ॥

८—जो इस तरह अपनी हालत की परख करने से मालूम पड़े कि संसार और संसारियों को तरफ़ से तबियत किसी क़दर दिन-दिन हटती जाती है और अन्तर अभ्यास में और सतसंग और बानी के पाठ में ज़्यादा लगती जाती है, और इधर का रस ज़्यादा आनन्द देता है और संसार के भोग दिन-दिन किसी क़दर फीके लगते मालूम होते हैं, तो यही सबूत इस बात का है कि अंतर का रस भारी और पायदार है और बाहर भोगों का रस हलका और फीका और नाशमान है । फिर मुनासिब है कि जिस क़दर बने, इसी अभ्यास को आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाता जावे और संसार की मुहब्बत आहिस्ता-आहिस्ता कम करता जावे, तो रफ़्ता-रफ़्ता एक दिन काम दुरुस्त बन जावेगा और इसी अभ्यास से एक दिन सच्ची मुक्ति और परम आनंद प्राप्त हो जावेगा ॥

९—मालूम होवे कि ऊपर जो कुछ लिखा है, यह सच्चे अभ्यास का हाल है, यानी जिसके दिल में निर्मल चाह सच्चे मालिक से मिलने और अपने जीव के कल्याण करने की है और कोई दूसरी ख़्वाहिश सिद्धि शक्ति की या मान-बड़ाई हासिल करने की नहीं है, और संसार के भोगों की फ़िज़ूल चाह जिसने सचौटी के साथ दूरी करी है, या कम करता जाता है, उसी की हालत अभ्यास करके

आहिस्ता-आहिस्ता बदलती जावेगी और बुरे कामों से नफ़रत और नेक कामों में रग़बत होती जावेगी। और उसको अभ्यास को हालत में यह भी मालूम हो जावेगा कि इस जुक्ति की कमाई से तन, मन और इन्द्रियों से न्यारा होना मुमकिन है। और फिर वही जीव संतों के बचन की परीक्षा अपने अन्तर में ब-ख़ूबी करता जावेगा और दिन दिन राधास्वामी दयाल की मेहर और दया से, प्रीति और प्रतीति उनके चरणों में बढ़ाकर एक दिन अपना काम पूरा बना लेवेगा। और जो कोइ अपने मन और इन्द्रियों में आसक्त हैं और संसार के भोगों और पदार्थों का चाह किसी क़दर जबर रखते हैं और उसको दूर या कम नहीं कर सकते, उनकी हालत जल्द नहीं बदलेगी। पर जो वे सतसंग और अभ्यास करते रहेंगे तो अव्वल उनके अन्तर में सफ़ाई, और फिर आहिस्ता-आहिस्ता चढ़ाई होती जावेगी और फिर उनकी हालत भी बदलती जावेगी ॥

बचन बाईसवाँ

पुरुषार्थ और प्रारब्ध, यानी मौज अथवा तदबीर और तक़दीर

१—एक सतसंगी का प्रश्न है कि जीव पराधीन है या स्वाधीन, यानी जो कर्म यह चाहे, अपनी ताक़त से कर सकता है या कि जैसा प्रारब्ध में लिखा है, यानी जन्म के वक़्त जैसा लेख हो गया है, उसी के मुवाफ़िक़ यह अपनी उम्र भर में कारवाई करता है?

जवाब इस प्रश्न का यह है कि जीवों की दो क़िस्में हैं– एक, प्रेमी परमार्थी, और दूसरे, संसारी यानी दुनियादार

२—प्रेमी परमार्थी जीवों का यह हाल है, जैसा कि इन कड़ियों में लिखा है—

विषयन से जो होय उदासा ।
परमारथ की जा मन आसा ॥
धन संतान प्रीति नहिं जाके ।
जक्त पदारथ चाह न ताके ॥
तन इन्द्री आसक्त न होई ।
नींद भूख आलस जिन खोई ॥
विरह बान जिन हृदय लागा ।
खोजत फिरे साध गुरु जागा ॥
साध फ़क़ीर मिले जो कोई ।
सेवा करे, करे दिलजोई ॥

३—ऐसी हालत जिस किसी की है, वह संसारी मुआमलों की तरफ़ तवज्जह कम रखता है, और इन मुआमलों में जो कुछ यत्न बन आवे और जैसा कुछ उसका फल होवे, उसको मालिक की मौज अपने वास्ते समझ कर उस पर राज़ी रहता है, और दुख-सुख और तक़लीफ़ की हालत में कभी अपने मालिक को नहीं भूलता है, और न कभी मालिक की शिकायत करता है। ऐसा जीव पूरी-पूरी शरण सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की लेकर अपनी तवज्जह परमार्थ के यत्न में लगाता है,

और सच्चे मालिक के दर्शन और प्रसन्नता की चाह सबसे ज़बर रखता है ॥

४—ऐसे जीवों का हिसाब अलेहदा है, यानी उनके वास्ते जो कुछ होता है और उन से जो कुछ कि बनता है, वह सब कुल-मालिक राधास्वामी दयाल की मौज से होता है । वह तो सच्ची शरण में आकर बाल समान अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के आसरे और उनकी दया के भरोसे पर जीते हैं और सब अपने कारोबार और कुटुम्ब-परिवार को उनकी मौज के आसरे रखते हैं, यानी जैसे वे रक्खें, उसी में राज़ी रहते हैं, और दुनिया के दस्तूर के मुवाफ़िक़ थोड़ा-बहुत यत्न भी दुनिया के कामों में करते हैं, पर उस में भी राधास्वामी दयाल की मौज को अपनी चाह और ज़रूरत पर फ़ायक़ रखते हैं और कभी मौज से नाराज़ नहीं होते हैं ॥

५—ऐसे जीव, पुरुषार्थ का कुछ भरोसा नहीं रखते, सिर्फ़ अपने मालिक के हुक्म और मौज को सब कामों में मानते हैं और समझते हैं कि जो कुछ उनके और उनके कुटुम्ब और परिवार के वास्ते होता है, वह राधास्वामी दयाल माता-पिता के हुक्म से होता है । और माँ-बाप अपने बच्चों के वास्ते कभी कोई बात तकलीफ़ या नुक़सान की नहीं करेंगे, इस वास्ते जब कोई बात ज़ाहिर में नुक़सान या तकलीफ़ की पैदा होवे तो उस में भी मसलहत और अपना असली नफ़ा और फ़ायदा समझते हैं । जसे कि जब बालक के फोड़ा निकलता है, तो माता

बालक को अपनी गोद में लेकर डाक्टर से चीरा दिलवाती है। उस वक़्त ज़ाहिर में यह काम दुखदाई मालूम होता है, पर उसका फ़ायदा थोड़े अर्से में ज़ाहिर होगा, यानी फोड़े का दर्द दूर हो जावेगा और जल्द उसको आराम होवेगा ॥ दूसरे

संसारी जीव यानी दुनियादार

६—इन जीवों का अंतर में अपने सच्चे मालिक के हर वक़्त अंग-संग मौजूद होने और उसकी समरत्थता और दयालुता और हर-दम ख़बरगीरी करने का पूरा-पूरा निश्चय नहीं है। इस वास्ते वे अपने पुरुषार्थ यानी यत्न और तद्बीर का आसरा और भरोसा रखते हैं और उसी में प्रवृत्त रहते हैं। सच्चे मालिक का भरोसा इनके दिल में नहीं आता है, और जो कोई ऐसा मानते हैं, उसको वे नादान और सुस्त और आलसी समझते हैं। इस सबब से ये जीव प्रारब्ध यानी मालिक की मौज या हुक्म को नहीं मानते, और अपने सब कामों की जवाब-देही यानी बोझ-भार अपने सिर पर लेते हैं। और जब कोई काम उनकी मरज़ी और चाह के मुवाफ़िक़ दुरुस्त बन जावे तब अपने पुरुषार्थ और बुद्धि की महिमा करते हैं, और जो उनकी चाह के मुवाफ़िक़ न बने तो किसी न किसी जीव को या अपनी समझ-बूझ या अपनी कार्रवाई को दोष लगावेंगे कि उसने फ़लानी बात हमारे कहने के मुवाफ़िक़ नहीं की, या कोई बात हम चूक या भूल गये, नहीं तो वह काम ज़रूर ऐसा बन जाता और जब कोई नुक़सान हो

जावे, तब भी दूसरे शख़्स को या बीमारी या हकीम और डाक्टर वग़ैरा या अपने भाग्य को दोष लगावेंगे। पर यह बहुत कम कहेंगे कि मालिक के हुक्म से ऐसा हुआ या उसकी मरज़ी ऐसी ही थी।

७—इस वास्ते, इन लोगों के वास्ते पुरुषार्थ यानी यत्न मुख्य है। इन से कभी प्रारब्ध या मालिक के हुक्म के आसरे निश्चल नहीं रहा जावेगा और जो कोई इनको ऐसी सलाह देगा, तो वे उसको धोका देने वाला, और अपना नुक़सान कराने वाला समझेंगे, और उसकी सलाह नहीं मानेंगे।

८—सिवाय इन दो क़िस्म के जीवों के एक तीसरी क़िस्म और भी है। और इस क़िस्म में वे जीव हैं कि जो परमार्थ में नये आये हैं और जिनको अभी पूरी प्रीति और प्रतीत सच्चे मालिक के चरणों में नहीं आई है, और जिनके दिल में अभी दुनिया के भोग-विलास की चाह बहुत ज़बर है, और परमार्थ की कमाई सिर्फ़ इस क़दर करना चाहते हैं कि जिस में उनके दुनिया के आराम और भोग-विलास में कमी या ख़लल (विघ्न) न पड़े और राधास्वामी दयाल की शरण भी सिर्फ़ इस क़दर ली है कि जिस में उन के जीव का अन्त-समय गुज़ारा हो जावे, यानी दुखों से और नर्कों की तकलीफ़ों से बचाव हो जावे और आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन अपने निज घर में राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की कृपा से पहुंच जावें। पर इस काम में ऐसी जल्दी भी नहीं चाहते कि जिसमें उनके दुनिया के व्यवहार और

आराम में किसी तरह का नुक़सान या ख़लल पैदा होवे, बल्कि ऐसा चाहते हैं कि दुनिया की भी तरक़्क़ी यानी वृद्धि होती रहे और परमार्थ भी थोड़ा-बहुत बन जावे ॥

६—ऐसे जीव, जब तक कि उनकी मर्ज़ी और चाह के मुवाफ़िक़ सब काम उनके दुनिया और परमार्थ के बनते जावेंगे, तब तक तो मौज और हुक्म सच्चे मालिक को थापते और मानते रहेंगे, पर जब कोई काम उनकी चाह के मुवाफ़िक़ दुरुस्त नहीं होगा या किसी तरह का कोई नुक़सान होवेगा, उस वक़्त जो कोई यह कहेगा कि मौज से हुआ तो नाराज़ हो जावेंगे, और गुस्से में भर आवेंगे और सच्चे मालिक पर तान लगावेंगे कि "वह बे-रहम और निर्दई है और अपने बच्चों पर दया नहीं करता। क्या वह दुनिया का थोड़ा सा सुख जो हज़ारों जीव दुनियादार भोग रहे हैं, अपने भक्तों को नहीं दे सकता या उनकी थोड़ी चाह दुनिया की पूरी नहीं कर सकता? वह तो समर्थ है, चाहे जो कुछ कर सकता है और चाहे तो बग़ैर किसी तकलीफ़ के सब काम अपने भक्तों का बना सकता है और मन की चंचलता और मलीनता और काम, क्रोध, लोभ, मोह वग़ैरा के ज़ोर को भी घटा सकता है, फिर वह ऐसी दया क्यों नहीं करता"? और सबब न होने ऐसे कामों का, उनकी चाह के मुवाफिक, उनकी समझ में जैसा चाहिए, नहीं आ सकता है। इस वास्ते, वे हमेशा डगमग यानी डाँवाडोल रहते हैं, कभी प्रीति और प्रतीतवान और कभी रूखे और फीके और बे प्रतीत। पर जो ऐसे जीव संतों के

सतसंग और परमार्थ में लगे रहेंगे तो धीरे-धीरे उनका भी काम बन जावेगा और एक दिन सच्चे और पूरे प्रेमियों के घाट यानी दर्जे पर आ जावेंगे, और तब वे भी सच्चे मालिक की मौज को हर एक काम में मानने लगेंगे ॥

बचन तेईसवाँ

परमार्थ में गुरु की ज़रूरत और उनकी क़िस्में और दर्जे और भेद

१—कोई काम दुनिया का ऐसा नहीं है कि जो बिना उस्ताद के सिखाये हुए कोई आदमी (औरत या मर्द) कर सके, यहाँ तक कि बच्चे को खड़ा होना और चलना और खाना और पीना बग़ैर सिखाये नहीं आता है, और लिखना और पढ़ना और हर पेशे का काम तो ज़रूर मास्टर या उस्ताद से सीखना पड़ता है। इसी तरह सच्चे परमार्थ यानी सच्ची मुक्ति के हासिल करने के लिए भी अभ्यास के सिखाने वाले की, जिसको गुरु कहते हैं, निहायत ज़रूरत है ॥

२—पंडित या पुरोहित या पाधे जो परमार्थी शास्त्र या पोथियाँ पढ़ाते हैं या कर्म कराते हैं या बाहरी पूजा और होम और यज्ञ कराते हैं, इनको गुरु नहीं कहा जा सकता है। जो कोई आप पढ़ना जानता है, यानी थोड़ा-बहुत विद्यावान है, वह कर्मकांड और ज़ाहिरी पूजा की किताबें आप पढ़ सकता है और उनकी कार्रवाई कर सकता है। पर ऐसी दस्तूर रखा गया है कि चाहे कोई पढ़ना

जाने या नहीं, वे सब पंडित या पाधे या पुरोहित से कर्मकांड की कार्रवाई में मदद लेते हैं और उसी वक़्त उनका हक़्क़-ए-मेहनत यानी जो उनका दस्तूर हर एक पूजा और रस्म और त्यौहार वग़ैरा का मुक़र्रर है, उनको अदा कर देते हैं ॥

३—आम परमार्थी गुरुओं की २ क़िस्में हैं—एक, वंशावली गुरु, और दूसरा, नेष्ठावान यानी अभ्यासी गुरु ॥

(१) वंशावली गुरु

४—वंशावली गुरु वे हैं कि जिनके घराने में चेला करने का व्यौहार जारी है और इनकी तीन क़िस्में हैं।

(क) पंडित यानी ब्राह्मण। इनको हिन्दुस्तान में, लोग पुराने वक़्तों से बड़ा मानते चले आये हैं। और जब किसी को मुक़र्ररा उम्र पर ज़रूरत गुरु करने की होती है तब पंडित या पुरोहित या साधारण ब्राह्मण को अपना गुरू बनाते हैं, और उससे जिस देवता का इष्ट बाँधना और पूजन करना मंज़ूर होवे, उसी का मंत्र और विधि ज़ाहिरी पूजा की दरियाफ़्त करके पूजा जारी करते हैं। और मंत्र का ज़बानी जाप करते हैं ॥

(ख) भेष, जिन्होंने फ़क़ीर या साधू के कपड़े पहने हैं और अपना घरबार छोड़ दिया है या संयोगी साधुओं की तरह से गृहस्थ में रहते हैं। जो कोई उनके पास परमार्थ की चाह लेकर जावे तो वे उसको या तो रंगीन कपड़े देकर फ़क़ीर या साधु बना लेते हैं, और जैसा कुछ कि

उन्होंने अपने गुरु से सुना है या बानी में पढ़ा है, उसके मुवाफ़िक़ मंत्र या नाम का उपदेश कर देते हैं, और अगर गृहस्थ होयं तो सिर्फ़ उसको उपदेश मंत्र या नाम का कर देते हैं। ये लोग भी पंडितों और ब्राह्मणों के मुवाफ़िक मंत्र या नाम का ज़बानी जाप बताते हैं। ऐसे साधु बहुत कम हैं कि जो मन से या स्वांस से नाम जपने की विधि बतावें। और नामी का भेद अंतर में तो कोई नहीं बताता है, बल्कि पंडित और भेद दोनों इस भेद को आप ही नहीं जानते हैं।

(ग) गुसाईं और महंत और साहबज़ादे। ये लोग चाहे जिस क़ौम से होवें, किसी नेष्ठावान गुरु की औलाद में, या उनके सिलसिले में गद्दी-नशीन होने से गुरू कहलाते हैं, और अपने घराने के पुराने चेलों की औलाद और उनके रिश्तेदारों के मंत्र, या नाम का ज़बानी जाप करने का उपदेश देते हैं। पर ये आप नेष्ठावान नहीं हैं और न अपने बुज़ुर्ग या गुरु की नेष्ठा यानी अभ्यास की युक्ति से वाक़िफ़ हैं, और न उसको जानना चाहते हैं, क्योंकि ये संसारी हैं और सिवाय अपने घराने के सेवकों की औलाद और अपने चेलों से धन और माल लेने के, और चाह नहीं रखते। इनका भी आदर और भाव इनके चेले, पंडित और ब्राह्मण और भेषों के मुवाफ़िक़ करते हैं, बल्कि कहीं कहीं उन से बहुत ज़्यादा ख़ातिर और पूजा इन लोगों की होती है॥

५—और मालूम होवे कि इनके चेलों में से कोई

सच्चा खोजी परमार्थ का नहीं है, और जो कोई ऐसा है, वह फ़ौरन इनको छोड़ कर सच्चे गुरु का खोज करके, और वहाँ से उपदेश लेकर अपना काम परमार्थी जारी करता है। यह वंशावली गुरु किसी अपने चेले की ऐसी हालत देख कर उसको बहुत दिक़ और तंग करना चाहते हैं। पर जो कि ये लोग सच्चा परमार्थ बिल्कुल नहीं जानते, इस सबब से इनकी कोई कार्रवाई उसके साथ पेश नहीं जाती ॥

(२) नेष्ठावान गुरु

६—नेष्ठावान गुरु उनको कहते हैं कि जो अपने मन के सिद्धांत का भेद घट में दरियाफ़्त करके और वहाँ तक अपने मन और प्राण को चढ़ाने की युक्ति का अभ्यास, जैसा कि वेद और शास्त्र या और मज़हबी किताबों में पिछले महात्माओं ने लिखा है, अपने वक़्त के नेष्ठावान गुरु से उपदेश लेकर, उनकी कमाई करते हैं, और अभ्यास करके उस दर्जे तक पहुँचे हैं या पहुँचने वाले हैं। इस क़िस्म के गुरुओं के चार दर्जे हैं ॥

(क) सिद्ध गुरू। इनका दर्जा बहुत नीचा है और ये अक्सर नीचे दर्जे की सिद्धि और शक्ति में अटक कर रह गये। और इनका और इनके संगियों का उद्धार नहीं होता, यानी ये स्थूल माया के घेरे में ऊँचे-नीचे देश और योनियों में जन्मते-मरते हैं।

(ख) प्रेमी और भक्त गुरु। ये कोई औतार स्वरूप या किसी बड़े देवता जैसे विष्णु या शिव या शक्ति

की अन्तरमुख उपासना अपने घट में करके उसके लोक तक पहुँचे या पहुँचनहार हैं। और वे उसी स्वरूप या देवता की भक्ति अपने सेवकों को सिखाते हैं और अंतर में उस स्वरूप का दर्शन पाने और उसके लोक तक पहुँचने की युक्ति बताते हैं। ये भी माया की हद में रहे, और न इनका और न इनके संगियों का पूरा उद्धार हुआ। अलबत्ता बहुत काल के लिए, मरने के बाद, अच्छे सुख-स्थान में या अपने उपास्य के लोक में वासा पाते हैं, और वहाँ अपने उपास्य के दर्शन और संग का आनन्द लेते हैं। और कोई-कोई उसी रूप में मिल कर एक हो जाते हैं और अपना आपा बिसर जाते हैं। चार क़िस्म की मुक्ति इनके मत में मुक़र्रर हैं और वे ये हैं—

पहली, सालोक—अपने उपास्य के लोक में बसना ॥

दूसरी, सामीप—अपने उपास्य के पास रहना ॥

तीसरी, सारूप–अपने उपास्य का रूप धारण करना ॥

चौथी, सायुज्य–अपने उपास्य से मिल कर एक हो जाना।

ऐसे अभ्यासी गुरु, आज-कल बहुत कम मिलते हैं। इन सब के मत या घराने में जो कोई कि है, वे सब के सब या तो मूर्ति और तीर्थ पूजा में लग गये, या वाचक ज्ञान सीख कर अपने को ब्रह्मरूप मान कर पूरे बन बैठे हैं। और नेष्ठा यानी अभ्यास की युक्ति इनके मत या घराने में कोई नहीं जानता है। और ये न अपने आचार्यों की बानी को पढ़ते हैं, और जो पढ़ते भी हैं तो उसमें जो युक्ति

का इशारा किया है, इनकी समझ में नहीं आता, और न इनको इस बात की खोज है कि किसी अभ्यासी गुरू से मिल कर उसका हाल दरियाफ़्त करें और नेष्ठा करें ॥

(ग) योगी गुरु। यह मुद्रा या प्राणायाम की साधना करके अपने मन और प्राण को चढ़ा कर छठे चक्र तक पहुँचाते हैं और अपने सेवकों को भी इसी अभ्यास का उपदेश करते हैं। इनमें से बाज़े, शुरू में, कोई-कोई साधन हठ योग के, वास्ते सफ़ाई मन के, करते हैं और उनमें बड़ी काष्ठा और भारी तकलीफ़ें उठाते हैं। ये भी ब्रह्मांडी माया के घेर में रहे और इस वास्ते पूरा उद्धार इनका भी नहीं हुआ, अलबत्ता परमात्मा का दर्शन इनको प्राप्त हुआ और ये चिदाकाश में समाये। पर वहाँ से बहुत काल के पीछे उत्थान होता है। ऐसे महात्मा गुरु आजकल दुर्लभ हैं और इनके घराने में भी मूर्ति या कोई निशान की पूजा जारी हो गई।

(घ) चौथे, योगेश्वर ज्ञानी। ये भी मुवाफ़िक़ योगियों के, अभ्यास करके, पहले ब्रह्म पद और फिर उसके परे पारब्रह्म पद में पहुँचे और तीनों लोकों की माया को जीत लिया। पर ये आदि माया के मंडल के पार नहीं गये, हालाँकि कुल नेष्ठा वालों में इनका दर्जा बहुत ऊंचा है। ऐसे महापुरुष गुरु आजकल महा-दुर्लभ है, और जिस किसी को वे मिल जावें, उसके बड़े भाग्य ॥

७—पिछले वक़्त में वशिष्ठजी और व्यासजी और रामचन्द्रजी और कृष्ण महाराज इस दर्जे तक पहुँचे,

और अब इनके घरानों में आम तौर पर मूर्ति और तीर्थ पूजा या वाचक ज्ञान जारी है और अन्तरमुख साधना का ज़िक्र बहुत कम है। और जो कहीं कोई साधना करते हैं तो वह दृष्टि की साधना या नाम के अन्तरमुख सुमिरन से ज़्यादा नहीं जानते, और यह काम भी वे, बे-ठिकाने करते हैं, यानी भेदी नेष्ठावान गुरु से भेद लेकर अभ्यास नहीं करते हैं। इस सबब से इनको फ़ायदा बहुत कम होता है, पर इनके मन में अहंकार बड़ा भारो पैदा हो जाता है ॥

८—इनके सिवाय, आज-कल वाचक ज्ञानी, ज्ञान के ग्रन्थों को पढ़कर और विद्या-बुद्धि के मुवाफ़िक़ उनके बाहरी अर्थ समझ कर, अपने तईं ब्रह्म मानते हैं और जीवों को भी यही उपदेश सुनाते और समझाते हैं। जो बचन एकताई के कि योगेश्वर ज्ञानियों ने अपने सिद्धांत के ग्रन्थों में लिखे हैं, उनको इन लोगों ने अलेहदा छाँट लिया है, और उपासना और योग-अभ्यास के अंग को उन ग्रन्थों में से छोड़ दिया। वहाँ साफ लिखा है कि जब तक अन्तरमुख उपासना और योग-अभ्यास करके चार साधन यानी वैराग, विवेक, षट् सम्पत्ति और मुमोक्षता पूरे-पूरे न आवें, तब तक सिद्धान्त यानी एकताई के बचनों के पढ़ने और सुनने का कोई जीव अधिकारी नहीं है। पर इन वाचक ज्ञानियों ने इस बचन के, अपने मन की समझौती के मुआफ़िक़ अर्थ लगा कर, और अपने आपको ज्ञानी मान कर सहज में थोड़े से ग्रन्थ पढ़कर, ब्रह्म स्वरूप बन जाना पसन्द किया। इस सबब से, सिवाय ज्ञान के ग्रन्थों के

पढ़ने और पढ़ाने और ज्ञान की बातें बनाने के, असली हालत इनके मन और इन्द्रियों की नहीं बदलती। और जो कि ये लोग कोई अन्तरमुख अभ्यास नहीं करते और न जानते हैं, इस सबब से इनके मन और इन्द्रियों की हालत, थोड़ी-बहुत मुवाफ़िक़ संसारी जीवों के मन और इन्द्रियों के रहती है ॥

६—आम दस्तूर है कि मन, ऊँचे से ऊँचे और बढ़ से बढ़की बात को जल्दी से और बे-मेहनत और तकलीफ़ के हासिल करना चाहता है। इस सबब से हर आदमी जिसको थोड़ी-बहुत विद्या और समझ हासिल है, इस मत में जल्द शामिल हो जाता है और अहंकार करके अपनी असली हालत की (कि निपट संसारियों के मुवाफ़िक़ है) बिल्कुल परख नहीं करता। ये बाचक ज्ञानी निर्भय होकर, भेषों और ब्राह्मणों और गृहस्थियों को, बग़ैर परखे उनके अधिकार के, वाचक ज्ञानी बनाते चले जाते हैं। इस में भारी नुक़सान उनका और उनके संगियों का होता है कि वे भक्ति मार्ग में शामिल होने के लायक़ नहीं रहते और दीनता मन में बिल्कुल नहीं रहती। इस सबब से उनके उद्धार का रास्ता बिल्कुल बन्द हो जाता है ॥

१०—इस समय में थोड़ा या बहुत सब मतों के लोग जिनको थोड़ी विद्या और बुद्धि हासिल है, वाचक ज्ञान को पसंद करके, इस नये मत में शामिल होते चले जाते हैं, क्योंकि इसमें उनको बिल्कुल आज़ादी यानी

निरबंधता हासिल हो जाती है और किसी का ख़ौफ़ और शर्म नहीं रहती। निर्भय होकर मन और इन्द्रियों की धारों में बहते हैं और अपने हाल से बे-ख़बर रहते हैं। इन बेचारों ने बड़ा धोखा खाया। पर इनका इलाज कुछ नहीं है, क्योंकि ये साधन करने वालों की बात बिलकुल नहीं सुनना चाहते हैं, बल्कि उनको नादान समझते हैं और अपने आपको समझदार और होशियार मानते हैं। ये लोग अपनी करनी और व्यवहार के मुवाफ़िक़ अंत में फल पावेंगे ॥

११—इन गुरुओं से, जिनका ज़िक्र ऊपर लिखा गया (जो वे अपने मत के पूरे नेष्ठावान भी होवें) जीव का सच्चा उद्धार नहीं हो सकता है, क्योंकि उनका सिद्धांत-पद माया की हद में है। इस वास्ते अब उन महापुरुषों का ज़िक्र, कि जिनके वसीले से जीव सच्ची मुक्ति हासिल कर सके, किया जाता है, और उनका नाम संत सतगुरु और साधगुरु है। संत सतगुरु उनको कहते हैं कि जो पिंडी और ब्रह्मांडी माया की हद के पार, जहाँ दयाल देश अथवा निर्मल चैतन्य देश है, पहुँच कर, सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी से मिले। और उनका रास्ता चलने का घट में है। और सुरत-शब्द योग के अभ्यास से वह रास्ता तै करके अभ्यासी उस देश में पहुँच सकता है, और वहाँ पहुँच कर जन्म-मरण से रहित होकर परम आनंद को प्राप्त होता है। वह देश भी अमर है और वहाँ का आनंद भी अपार और अमर है ॥

१२—साधगुरु उनको कहते हैं जो संतों की युक्ति के मुवाफ़िक़ अभ्यास करके, मक़ाम सुन्न में, जो त्रिकुटी और ओंकार पद के परे है, पहुँचे हैं, और आगे संत-गति को प्राप्त होने वाले हैं। इनसे मिल कर भी जीव को वही फ़ायदा हो सकता है जैसा कि संत सतगुरु से, क्योंकि साधगुरु, संत सतगुरु के बनाये हुए हैं ॥

१३—जब तक कि जीव को इन दोनों महापुरुषों में से कोई न मिलेगा और वह, उनको अपना गुरु या सतगुरु धारण करके, प्रेम सहित सुरत-शब्द योग की कमाई न करेगा, तब तक सच्चा उद्धार या सच्ची मुक्ति किसी तरह हासिल नहीं हो सकती है। इस वास्ते सब जीवों को, जो अपना सच्चा कल्याण चाहते हैं, मुनासिब और ज़रूर है कि संत सतगुरु या साधगुरु को खोज कर, उनकी शरण लेवें, और उन्हीं की बानी का पाठ और उन्हीं की युक्ति का अभ्यास करें। यह भेद और यह युक्ति और किसी मत में नहीं है ॥

१४—जो कोई यह कहे कि हम एक बार गुरु कर चुके हैं (और वह ऐसी किस्म में से हैं जिनका ज़िक्र पहले हो चुका है), अब दुबारा संत सतगुरु या साधगुरु को कैसे गुरू धारण करें, तो, इसका जवाब यह है कि जो गुरु कि बाहरमुखी पूजा का, जैसे मूर्ति और तीर्थ, का उपदेश करते हैं या इष्ट ब्रह्म या ईश्वर या देवताओं का बँधवाते हैं, या अन्तर में नाम का सुमिरन या दृष्टि का साधन या ध्यान, बिना पते और भेद स्वरूप के, जिसका कि ध्यान

किया जावे, बताते हैं, पर घट का भेद और युक्ति अन्तर में चलने की नहीं जानते और सच्चे मालिक और उसके धाम की और उससे मिलने के रास्ते की जिनको ख़बर भी नहीं है, ऐसों का नाम साधगुरु या सतगुरु नहीं हो सकता है। फिर जब किसी ने इनसे उपदेश लिया और इनको भ्रम करके, और अन-समझता से गुरू माना, और असल में वे गुरू नहीं हैं, तो फिर इनके छोड़ने में किसी तरह का दोष या पाप या नुक़सान नहीं हो सकता। ये लोग तो अक्सर करके मान और धन के लोभी हैं और सच्चे परमार्थ से न आप वाक़िफ़ हैं और न किसी दूसरे को समझा सकते हैं, न कभी अपने चेलों से परमार्थ की कमाई का हाल पूछते हैं और न ज़िक्र करते हैं। फिर उनके छोड़ने में किसी तरह का हर्ज नहीं हो सकता। अलबत्ता उनकी पूजा और भेंट बन्द न करना चाहिये, यानी जब वे आवें तो दस्तूर के मुवाफ़िक़ उनकी पूजा-भेंट कर देना चाहिए, और इतना ही वे चाहते हैं। संतों का बचन है—

> झूठे गुरु की टेक को, तजत न कीजे बार।
> द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥

अलबत्ता जिसको पहले से ही, भाग्य से, सच्चे और पूरे गुरु मिल जावें, तो उसको फिर कोई जरूरत दूसरे गुरु के खोजने और धारण करने की न होगी, क्योंकि वे सब भेद और युक्ति बताकर पूरी शान्ति सेवक की कर देंगे और अन्तर में उसके अभ्यास में मदद देते रहेंगे। और जो कोई मूर्खता

से हठ करके, ओछे गुरु को नहीं छोड़ेगा, और जब संत सतगुरु भाग्य से मिलें, उनकी शरण नहीं लेगा, तो उसका भारी अकाज होगा यानी उसका उद्धार हरगिज़ नहीं होवेगा।

१५—बाज़े लोग ऐसा ख़्याल रखते हैं कि स्त्री और पुरुष एक गुरू के चेले होने से आपस में भाई और बहन समझे जावेंगे, इस वास्ते जोरू और ख़ाविंद को एक ही गुरु से उपदेश नहीं लेना चाहिये। यह ख़्याल बिलकुल ग़लत है। साधगुरु और सतगुरु का दर्जा पारब्रह्म और सत्तपुरुष के बराबर है, तो वे सब रचना के कर्ता और मालिक हुए। रचना में कुल जीव मालिक के बाल-बच्चे हैं और सब आपस में भाई और बहन हैं। फिर वही रिश्ता परमार्थ में भी, जबकि भाग्य से किसी को संत सतगुरु या साधगुरु मिल जावें, समझा जावेगा, और व्यवहार में ख़ाविंद और जोरू का नाता ब-दस्तूर क़ायम रहेगा। इसमें कोई दोष नहीं लगता। ऐसा भ्रम किसी को अपने चित में नहीं लाना चाहिये, नहीं तो अपना या अपनी स्त्री का अकाज करेगा। बहुत से देशों और शहरों में वंशावली गुरु से कुल घर के लोग, क्या स्त्री, क्या पुरुष उपदेश लेते हैं और ऐसा संयम या भ्रम, जिसका ऊपर ज़िक्र हुआ है, मन में नहीं लाते हैं।

१६—बहुत से जीव परमेश्वर या देवता या किसी पिछले गुरू (जिनका इष्ट या पूजन उनके घराने में अर्से से चला आता है) टेक बाँधकर, निश्चिन्त हो जाते हैं, और कहते हैं कि नये गुरु या इष्ट की कुछ

ज़रूरत नहीं है। जो उनको पुराने इष्ट की प्रतीत है तो इसी में उनका काम बन जायेगा। यह समझ उनकी बिल्कुल ग़लत है। पर जो वे निपट संसारी हैं और परमार्थ की चाह और खोज उनके मन में बिल्कुल नहीं है, तो उनको इख़्तियार है कि चाहे जिसकी टेक बाँध कर चुप्प बैठे रहें, या किसी को भी न मानें और न कुछ परमार्थ की करनी करें। पर वे लोग जो अपने और दुनिया के हाल को देखकर, उसके दुख-सुख और देह के जन्म-मरण से छूटना चाहते हैं, वे टेकियों को मूर्ख और संसारी समझ कर उनका संग नहीं देंगे, और आप सच्चे गुरु को खोज कर उनका सतसंग करेंगे, और उपदेश लेकर अपने जीव के कल्याण के वास्ते नित अभ्यास, अपने निज घर में पहुँचने की युक्ति का, करके अपना काम बनावेंगे और किसी तरह की अटक और भ्रम अपने चित में, निस्बत सच्चे गुरु और सच्चे मालिक के इष्ट के, धारण करने में नहीं लावेंगे। अलबत्ता पहले कोई दिन सतसंग करके उनके बचन और उपदेश की, थोड़ी-बहुत अपनी समझ और वाक़िफ़ियत के मुवाफ़िक़, इस क़दर जाँच करेंगे कि जिस से उनके दिल को पूरा यक़ीन इस बात का हो जावे कि ज़रूर संतों की युक्ति की कमाई से सच्ची मुक्ति और पूरा उद्धार हासिल होगा। यानी सच्चे मालिक के धाम में, जो सबसे ऊँचा और सब के परे है और जहाँ से कुल रचना हुई और उसकी सम्हाल जारी है, एक दिन संत सतगुरु और कुल मालिक की दया से पहुँच जावेंगे, और वहाँ पूर्ण और अमर आनन्द पावेंगे॥

१७—इस जगह इतना बयान करना ज़रूर है कि चाहे कोई कैसी मज़बूत टेक परमेश्वर या किसी औतार या देवता या पिछले गुरु की रखता होवे, उसका सच्चा उद्धार, बग़ैर अपने वक़्त के संतसतगुरु या साधगुरु के सतसंग और उपदेश के, किसी सूरत में मुमकिन नहीं है, क्योंकि हर एक जीव के मन में अनेक तरह के भ्रम और संशय रहते हैं और दुनिया और उसके व्यवहार और सामान की पकड़ और उसमें आसक्ति हर एक के मन में बहुत धसी रहती है, और बहुत सी संसारी और परमार्थी बातों की समझ अपनी-अपनी बुद्धि के मुवाफ़िक़ हर एक रखता है। जब सच्चे परमार्थ और सतसंग में आवे, तब उसको ख़बर अपनी ग़लती की मालूम होती है, और जो इष्ट कि उसने बाँधा है, उसका भेद भी पूरा-पूरा मालूम होता है। सब देवताओं और ईश्वर और परमेश्वर और ब्रह्म और परब्रह्म का भेद और दर्जा भी संतों के सतसंग में मालूम होवेगा। और दूसरी जगह यानी और मतों में इष्ट का निर्णय बहुत कम करते हैं। इस सबब से जीव नीचे और ऊँचे देशों में माया के घेर के अन्दर पड़े रहते हैं। इसी तरह मन और माया का भेद और उनके अनेक दर्जों की ख़बर संतों के सतसंग में मालूम पड़ेगी, और युक्ति चलने की, मन-माया से बच कर, अपने निज घर में पहुँचने की भी वहीं हासिल होवेगा। अब ख़्याल करना चाहिए कि जो कोई अपने बुज़ुर्गों से सुन कर किसी इष्ट की टेक बाँधे हुए हैं और अपने वक़्त के गुरु यानी सच्चे परमार्थ के भेदी का खोज नहीं करते, और जो उनका पता भी लगे तो उनसे नहीं

मिलते, और न कोई बात दरियाफ़्त करना चाहते हैं, तो ऐसे शख़्सों को कभी सच्चे मालिक की ख़बर न होगी। और न अपने इष्ट में जैसा कुछ कि है, सच्ची प्रीति और प्रतीत आवेगी, और न उनको परमार्थ की चाल-ढाल की ख़बर पड़ेगी, और न दुनिया और मन और माया के धोखे का हाल मालूम होगा, और न उनके संशय और भ्रम दूर होवेंगे। फिर ऐसे जीवों को असली फ़ायदा परमार्थ का कैसे हासिल हो सकता है ? वे अपने मन की चाल और व्यवहार के मुवाफ़िक़ अपनी भली-बुरी करनी का फल, सुख या दुख, नीच-ऊंच योनियों में पावेंगे, और सच्ची मुक्ति उनको कभी नहीं मिलेगी ॥

१८—गुरु और सतगुरु और संत नाम मालिक के हैं। और जो कोई सच्चा और पूरा अभ्यासी है और मेहनत के साथ अभ्यास करके मालिक के चरणों में पहुँचा है, वह मालिक के साथ मिल कर एक हो गया या मालिक का प्यारा पुत्र हो गया। फिर उसका भाव और अदब उसी तरह करना मुनासिब है जैसा कि मालिक का। और जो कि संत-मत में बिना पूरे गुरु के, पूरा काम नहीं बन सकता, इस वास्ते आम हुक्म है कि जो कोई गुरु धारण करना चाहे, या सच्चे मालिक का और अपने निज घर का भेद और रास्ता और युक्ति उसके त करने की दरियाफ़्त करना चाहे, तो उसको चाहिये कि संत सतगुरु या साधगुरु को खोज कर उनका शरण लेवे। और जहाँ-तहाँ संतों की बानी में जा गुरु और सतगुरु और संत का नाम आया है

उसका मतलब दोनों से याना सच्चे मालिक और पूरे गुरु से है। और इस नाम का लिहाज़ और ख़्याल मालिक को आप मंज़ूर है। यानी जो कोई उसको, इस नाम से, सच्चे मन से पुकारता है तो वह ज़रूर किसी न किसी तरह से उसकी मदद यानी उस पर गुप्त दया करता है। और यह बात साफ़ ज़ाहिर है कि जो कोई बिना सतगुरु से मिले हुए और उनका सतसँग और सेवा किये हुए मालिक से मिलने की अभिलाषा करता है, वह नादान है। उसको कभी मालिक का दर्शन नहीं मिल सकता, क्योंकि सच्चे गुरु, जीव की गढ़त करके यानी उसकी अन्तर और बाहर दुरुस्ती करके और उसके मन में सच्चा प्रेम और भक्ति सच्चे मालिक की पैदा करके, उसको क़ाबिल मालिक के दरबार में दाख़िल होने के बनाते हैं। और जितने कि आसुरी यानी हैवानी या काल के अंग उस में हैं, ऊनको दूर करके, दैवी यानी दयाल के अंग उसके अंतर में जगाते और पैदा करते हैं और उसके मन और संसारी वासना का, अभ्यास कराके, जीते-जी नाश करा देते हैं। तब जीव सच्चे मालिक के दर्शनों के क़ाबिल होता है। और जो इस तौर से उसकी तरबियत और गढ़त नहीं होवे, तो वह मुवाफ़िक़ पशुओं के यानी हैवानों के रहता है और किसी हालत में मालिक के दर-बार में नहीं पहुंच सकता है और न वहाँ ठहर सकता है॥

१९—जैसे हाकिम ने हुक्म दे रक्खा कि जो कोई

डाक्टरी या वकालत या मुन्सिफ़ी या इंजिनियरी का इम्तिहान, अपनी लियाक़त और क़ाबलियत का, मुक़र्रर किये हुए इम्तिहान लेने वालों के सामने जा कर देवे, और उनके अफ़सर की सनद या परवाना हासिल करके पेश करे, तब वह उन ओहदों के पाने के लायक़ समझा जावेगा, इसी तरह मालिक के दरबार से हुक्म है कि जो कोई पूरे गुरु का परवाना हासिल करेगा, वही महल में दख़ल पावेगा। इस वास्ते, जिस ने पूरे गुरु का संग नहीं किया और न उनकी प्रसन्नता और दया हासिल की, उसका सच्चा उद्धार कभी नहीं होगा, और न उसको सच्चे मालिक का कभी दर्शन मिलेगा।

२०—यह बात ग़ौर करके समझने के लायक़ है कि मालिक को हर कोई, हर वक़्त, सब जगह मौजूद मानते हैं, और उसकी मौजूदगी का यक़ीन भी करते हैं, पर लोगों का यह हाल है कि जैसी उनके मन में तरंगें उठती हैं, उसी मुवाफ़िक़ कार्रवाई भली और बुरी करते हैं, और ज़रा भी मालिक का ख़ौफ़, बुरे काम के सोचते और करते वक़्त नहीं करते। हाकिम और बिरादरी का थोड़ा डर मान कर, चाहे किसी बुरे काम से बच जावें, और जो उस काम के ज़ाहिर होने का ख़ौफ़ नहीं है तो हाकिम और बिरादरी का भी डर मन में नहीं आता है। यह हाल कुल दुनियादारों और आम परमार्थियों का है—यानी उनके दिल में गुरु और मालिक का ख़ौफ़ जैसा कि चाहिए, बिल्कुल नहीं

आता है, सिवाय उस हालत के कि जब कोई उनकी औलाद या माल के नुक़सान होने का, किसी काम के करने से, ख़ौफ़ दिलावे । सो यह बात कम अक़्ल वाले लोग मानते हैं । और जो थोड़ा-बहुत विद्या-बुद्धि और चतुराई रखते हैं, वे ऐसे ख़ौफ़ को भी धोका देना समझ कर मन में नहीं लाते ॥

२१—अब जो कि पूरे गुरु की शरण में आये हैं उनका हाल सुनो । जो कि उन्होंने अपने गुरु को, मुवाफ़िक़ अपनी-अपनी पहिचान के, जो सतसंग करके हासिल की है, और मुवाफ़िक़ उन पर्चों के जो उनको अभ्यास की हालत में अंतर में मिले हैं, किसी क़दर समर्थ और अंतरयामी माना है, या सच्चे मालिक का थोड़ा-बहुत जलवा देखा है और उसकी दया अंतर में परखी है, तो हर काम करने में उनकी थोड़ी-बहुत याद अपने गुरु और मालिक की आ जाती है, और उसके साथ थोड़ा-बहुत ख़ौफ़ उनकी अप्रसन्नता यानी नाराज़गी का, और उसके सबब से होने नुक़सान का उनके आनन्द और रस में जो वे रोज़ाना अभ्यास में लेते हैं और तरह २ के हर्ज का परमार्थ और स्वार्थ में, उनके दिल में पैदा हो जाता है । इस सबब से ऐसे कामों को वे ऐसे निर्भय होकर नहीं करते जैसे कि और लोग करते हैं । पहले तो वे जहाँ तक उनका बस चलेगा, ऐसे कामों से गुरु और मालिक की दया और उनकी युक्ति का बल लेकर बचेंगे, और जो ऐसा न होगा और वह काम उनसे लाचारी में बन पड़ेगा, तो उसके

पीछे निहायत शर्मिन्दा होकर अपने अंतर में अफ़सोस और दुःख और ख़ौफ़ मान कर बहुत दीनता और आजिज़ी के साथ प्रार्थना, वास्ते माफ़ी और बचाव और सहायता आइन्दा के, करेंगे। इसी तरह आहिस्ता-आहिस्ता कभी-कभी भूलते हुए और चूकते हुए और फिर शर्मा कर पछताते हुए और झुरते हुए, एक दिन उनको पूरी सफ़ाई अंतर की हासिल हो जायगी, और फिर मालिक के दरबार में दख़ल पाने के लायक़ हो जायेंगे।

२२—जिस किसी को पूरे गुरु का संग नहीं मिला, उसको यह बात कभी हासिल न होगी और न उसके पाप कर्म दूर होंगे और न बोझ अगले-पिछले और हाल के जन्म के कर्मों का, उसके सिर से उतरेगा। और इस वास्ते जन्म-मरण और कर्म-भोग उसका बराबर जारी रहेगा। और भक्त के कर्म, अगले-पिछले और हाल के, सतगुरु की दया और उनकी युक्ति की कमाई और उसके असर से, कि दिन-दिन उसकी सुरत यानी रूह माया के देश से अलेहदा होकर निर्मल-चैतन्य देश यानी संतों के दयाल देश की तरफ़ चढ़ती जावेगी, जल्दी और आसानी से कट जावेंगे। और फिर वह निर्मल होकर अपने निज घर में जावेगा। और जब तक कि इस तरह निर्मल नहीं होवेगा, तब तक कोई किसी तरह वहाँ दख़ल नहीं पा सकता है। और यह बात बिना पूरे गुरु के संग और उनकी मेहर और दया और युक्ति की कमाई के, और किसी तरह, हासिल नहीं हो सकती है॥

२३--जो बचन कि ऊपर लिखे हैं, वे वास्ते समझाने और होशियार करने सच्चे परमार्थियों के हैं और उनके लिये कि जिनको अपने जीव के कल्याण का सच्चा फ़िक्र है और जो दुनिया की नाशमानता और अपने दुख-सुख को हालतों को देख कर ऐसा यत्न करना चाहते हैं कि जिससे बारम्बार देह धरने और उस के संग दुख-सुख सहने से बच जावें ।

२४—पर वे लोग जो कि संसारी हैं या विषयी और रागी या टेकधारी हैं या बाहरमुखी परमार्थ के चलाने वाले हैं और उसी में उन्होंने अपने रोज़गार या आमदनी की सूरत निकाल रक्खी है, इन बचनों को पढ़ कर या सुन कर पसन्द नहीं करेंगे और न उनको मानेंगे । और यह सच है कि उनके वास्ते यह बचन भी नहीं है, क्योंकि उनके मन में दुनिया और उसके सामान और भोग-बिलास की या नामवरी की चाह ज़बर है । और संतों के परमार्थ में यह सब बातें सहज-सहज छोड़नी पड़ेंगी, नहीं तो अभ्यास का रस और आनंद कम आवेगा या नहीं आवेगा और सच्चे उद्धार में देरी होगी या विघ्न पड़ेगा ॥

२५—जो लोग कि बुद्धिमान और विद्यावान हैं और अपनी विद्या और बुद्धि और ज़ाहिरी व्यवहार की सफ़ाई का मन में मान और अहंकार रखते हैं, उनके दिल में गुरु की क़दर बहुत कम है । वे गुरु को बतौर उस्ताद यानी विद्या-गुरु समझते हैं । और जब वे मामूली परमार्थ की किताबें और पोथियाँ आप पढ़ और समझ सकते हैं, तो उनको ऐसे गुरु की भी जरूरत नहीं होती । और सत-

गुरु की महिमा और बुज़ुर्गी की तो उनको बिल्कुल ख़बर नहीं है। गुरु और सतगुरु और विद्या-गुरु उनकी नज़र में बराबर हैं यानी विद्या गुरु से ज़्यादा उनका दर्जा वे नहीं मानते हैं। सबब इसका यह है कि वे अंतरी परमार्थ से बिल्कुल ना-वाक़िफ़ हैं और न संतों और साधगुरुओं के बानी और बचन, जिसमें अंतरमुख अभ्यास ऊँचे दर्जे का ज़िक्र है, उन्होंने देखे या पढ़े हैं और न उन में उनको भाव आता है, क्योंकि वे उनके मतलब को अपनी विद्या और बुद्धि की ताक़त से नहीं समझ सकते, और भेदी और संत-मत के जानकार से पूछना और समझना ऐसी बानी और बचन का, वे अहंकार करके नहीं चाहते हैं। और असल में उनको ऊँचे और सच्चे परमार्थ की खोज भी नहीं है, और जो कोई उनको ऐसे बचन सुनावे तो प्रतीत नहीं लाते और सुनाने वाले को नादान या भ्रम में भूला हुआ समझते हैं ॥

२६—आम तौर पर इन लोगों का मत यह है कि कोई मालिक है और वह अपार और अनंत और अजन्मा और अरूप और विदेह है। किसी को नज़र नहीं आ सकता और न कोई उस तक पहुँच सकता है। उसकी पूजा सिर्फ़ इस क़दर है कि उसकी स्तुति और महिमा के बचन पढ़ना और गाना और दिल से उसके गुणानुवाद को याद करना और दुनिया की नाशमानता पर नज़र रखना और जहाँ तक बने, जीवों के साथ दया-भाव से बर्तना, और पर-उपकार करना, जैसे विद्या पढ़ाना, आराम के

मकानात बनवाना, दवाइयाँ बाँटना और भूखे-प्यासे और मोहताजों की मदद करना वग़ैरा, और उन किताबों को पढ़ना जिन में मालिक की महिमा और स्तुति लिखी है अथवा अपने चाल और चलन और व्यवहार की दुरुस्ती के लिए नसीहतें और उपदेश लिखे हैं ।।

२७—जब विद्यावानों के मत के उसूल, कम-ओ-बेश (थोड़े-बहुत) इस मुवाफ़िक़ हैं जैसा कि संक्षेप (ख़ुलासा) करके ऊपर लिखा गया, तब ज़ाहिर है कि उनको अंतर के परमार्थ के बताने वाले और रास्ता चलाने वाले गुरु की ज़रूरत बिल्कुल नहीं है, और इसी सबब से ये लोग गुरु भक्तों पर तान करते हैं और उनके व्यवहार को देख कर हँसी उड़ाते हैं। जो उन्होंने उपासना यानी अंतरमुख भक्ति के ग्रंथ योगेश्वरों या संतों के बनाये हुए पढ़े या देखे होते, तो इनको मालूम होता कि वह रास्ता, बिना मदद अभ्यासी गुरु के, नहीं चल सकता है, और तब अभ्यासी गुरू की बड़ाई इनके चित्त में थोड़ी-बहुत समाती। पर जिस हालत में कि वे अंतर के भेद से ना-वाक़िफ़ हैं और उसको जानना भी नहीं चाहते, तो जैसी चाल कि वे चल रहे हैं और चला रहे हैं, वही उनके वास्ते दुरुस्त है। और उनका संग वे ही लोग करेंगे जो ज़ाहिरी परमार्थी कामों से राज़ी होते हैं ।।

२८—अलबत्ता मूर्ति या कोई निशान या दरिया और दरख़्तों और जानवरों की पूजा और तीर्थ, ब्रत और अनेक तरह के कर्म और धर्म और औतारों और देवताओं का उपासना इन लोगों ने क़तई मौक़ूफ़ कर दी। इतना काम

इन्होंने बेहतर किया है कि लोगों को भ्रमों से बचाया और एक मालिक का यक़ीन दृढ़ कराया। पर इस क़द्र इनके मत में कसर मालूम होती है कि जब मालिक सब जगह मौजूद है, तो हर एक जीव के अन्तर में भी ज़रूर मौजूद होना चाहिये, और जब अंतर में मौजूद है तो उसकी भक्ति अंतर में करना चाहिये, जान और दिल से। बाहर की भक्ति इस कद्र फल नहीं दे सकती है और न उस करनी से जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से बचाव हो सकता है, क्योंकि इसका असर मन और इन्द्रियों और स्थूल या सूक्ष्म शरीर से आगे नहीं पहुँचता। और चाहिये यह कि जान तक असर पहुँचे और देहियों से जो बतौर ख़ोल या ग़िलाफ़ के रूह पर चढ़े हुए हैं, किसी क़द्र जीते-जी अलेहदगी होती जावे। तब, जो प्रेम आयेगा, वह अन्तर के अन्तर से प्रकट होगा और क़ायम रहेगा और इसी ज़िन्दगी में मुक्ति का आनन्द थोड़ा-बहुत मालूम पड़ेगा। और जो कि सब रस, सुख और आनन्द का भंडार अन्तर में है, और जो इन्द्रिय भोग में रस मालूम होता है, वह भी जान या रूह की धार के सबब से, जब वह इन्द्रिय के स्थान पर आवे तब मालूम होता है, तो जो अभ्यास भक्ति का अन्तर में किया जावे तो वहाँ रस और आनन्द भी विशेष मिल सकता है। और जब कि रूह या जान का भंडार, यानी मालिक, अन्तर में मौजूद है तो वह रस और आनन्द ज़्यादा अभ्यास करने से दिन-दिन बढ़ सकता है। अब इस भक्ति और अभ्यास का भेद सिवाय संतों

और उनके साधु और सतसंगियों के, और कोई नहीं जानता है, और उन्ही के बानी और बचन में इसका हाल मुफ़स्सिल लिखा है । जब कोई यह अभ्यास अपने अंतर में करे, तब उसको सच्ची महिमा मालिक की और भी उसके भक्तों और प्रेमियों की मालूम पड़े ॥

कोई चेते सुरत जग देख असार ॥ टेक ॥

बाहरमुख पूजा नहिं भावे । यामें जीव भर्म रहे भार ॥ १ ॥
कर्म, धर्म सब काल पसारा । यामें नित बढ़ता हंकार ॥ २ ॥
सच्चा सतसँग खोजत पाया । वहाँ पाया सच्चा आधार ॥ ३ ॥
सुरत शब्द कर भेद अपारा । जो सतगुरु दीना कर प्यार । ४ ॥
दया मेहर ले करत कमाई । देखत घट में मोक्ष दुआर ॥ ५ ॥
रस पावत मन अति हरषाना । मगन हुई सुर्त सुन झनकार ॥ ६ ।-
राधास्वामी दीन दयाला । बेग उतारा भौ जल पार ॥ ७ ॥

बचन चौबीसवाँ

परमार्थी कार्रवाई और अभ्यास का उतार और चढ़ाव, पिछले वक़्तों से अब तक

१—मालूम होवे कि पिछले वक़्तों में, जिस को कई हज़ार वर्ष गुज़रे होंगे, छः चक्रों को, प्राणायाम योग की युक्ति से बेधकर, सहसदलकँवल तक पहुँचने पर, प्राणायाम का अभ्यास पूरा होता था । और जिन से यह अभ्यास पूरा बन आया, वे योगी कहलाये । और योगेश्वर उसके भी आगे एक मक़ाम त्रिकुटी तक, जो कि स्थान प्राण पुरुष यानी ओङ्कार का है, पहुँचे । और यह पद असली सिद्धान्त हिन्दू मत का है कि जहाँ से तीनों लोकों को रचना का सूक्ष्म मसाला प्रकट हुआ, और सहसदलकँवल से उसका अच्छो

तरह से ज़हूरा हुआ, यानी तीन गुणों (सत, रज, तम जिनको ब्रह्मा, विष्णु और महादेव कहते हैं) और पाँच तत्वों की सूक्ष्म धारें प्रकट हुईं ॥

२—प्राणों की चढ़ाई का अभ्यास करके, जो कोई सहसदलकँवल या ओङ्कार तक पहुँचे, वही सच्चे और पूरे योगी ज्ञानी या योगेश्वर ज्ञानी कहलाये। और उनकी महिमा भारी है, क्योंकि उन्होंने दोनों ब्रह्म और परब्रह्म पद का दर्शन पाया। और जैसे इन मक़ामों से रचना आदि में हुई, उसका सब भेद उनको मालूम हुआ, और सर्व-शक्ति और सिद्धि भी उनको हासिल हुई। और जो कि वे जीव ईश्वर-कोटि थे, इस सबब से वे अपने निर्मल वैराग और अनुराग के बल से, पुरुषार्थ यानी सख़्त मेहनत करके, उन स्थानों तक पहुँचे। बाक़ी जीव इस समय में कर्मकांड और तप और जप और कर्म और धर्म में लगे रहे, और उनसे सफ़ाई ज़ाहिरी और व्यवहार की और कुछ अंतर की हासिल करते रहे, और उनके मन में मुख्यता संसार की मान-बड़ाई और भोग-विलास या परलोक के भोग-विलास की रही आई।

३—कुछ अर्से के पीछे, सच्चे योगियों ने अभ्यास मुद्राओं का जारी किया। यह मुद्रायें पाँच हैं। इन में से दो मुद्राओं का अभ्यास अन्तर में, एक दृष्टि का साधन और दूसरा शब्द का श्रवन, है। इन मुद्राओं की मदद से भी अभ्यासी अंतर में ऊँचे स्थान पर मन, और दृष्टि को जमा कर पहुँचे, और वहाँ शब्द का रस लेकर समाधिस्थ हुए॥

४—सिवाय प्राणायाम के, योगी और योगेश्वर ज्ञानियों ने पाँच उपासनायें मुक़र्रर करीं। पहले, गणेशजी की (जिनका वासा मूलाधार यानी गुदा चक्र में है), दूसरी, विष्णु महाराज की (जिनका वासा नाभि चक्र में है), तीसरी, शिव की (जिन का वासा हृदय चक्र में है), चौथी, आत्मा यानी शक्ति की (जिसका वासा कंठ चक्र में है) और पाँचवीं परमात्मा की (जिसका मक़ाम छठे चक्र में है)। और योगी ज्ञानियों ने इसी पद को सूरज-ब्रह्म भी कहा है ॥

५—जिन लोगों से प्राणों के रोकने और चढ़ाने का अभ्यास दुरुस्ती से नहीं बना, या जिन में पूरी ताक़त इस अभ्यास के करने की नहीं पाई गई, उनके वास्ते यह युक्ति उपासना की, योगी और योगेश्वर ज्ञानियों ने जारी की कि हर एक चक्र में वहाँ के देवता के स्वरूप का ध्यान करें और एक ख़ास मंत्र का, जो उसी चक्र के मुताल्लिक़ है, ध्यान के साथ जाप करें ॥

६—जो कि यह अभ्यास करने से भी मन का सिमटाव और थोड़ी-बहुत चढ़ाई मन और प्राणों की ऊँचे स्थानों की तरफ और सफ़ाई अन्तर की हासिल होती है, इस वास्ते इस भक्ति मार्ग के जारी होने से किसी क़दर आसानी योग के अभ्यासियों को हुई कि बिना प्राणों पर ज़ोर देने के, वह अपनी चढ़ाई का अभ्यास थोड़ा-बहुत करके अन्तर का रस ले सके ॥

७—और जिन जीवों के मन और बुद्धि और शरीर निहायत स्थूल थे, उनके वास्ते क्रिया योग और अनेक तरह के आसनों की युक्ति बताई कि जिस से वे अन्तर में स्थूल अंग की सफ़ाई करें, यानी अपने अंग-अंग को इस क़दर साफ़ रक्खें कि जिससे तमोगुण और विकारी चाहें दूर या कम होवें, और सतोगुणी अंग बढ़ते जावें, और मालिक के चरणों में प्रेम और सच्ची दीनता पैदा होवे, और अन्तरमुख अभ्यास, प्राणायाम या मुद्रा या उपासना के अधिकारी हो जावें ॥

८—पहले वक़्तों में दस्तूर था कि अभ्यासी को दर्जे-बदर्जे एक-एक स्थान का भेद और युक्ति उसके अभ्यास की बताई जाती थी, और पहिले ही, यानी एक दम कुल स्थानों का भेद नहीं देते थे। इस सबब से जो-जो अभ्यासी जिस स्थान यानी चक्र तक पहुँच कर थक कर ठहर गये, उन्होंने वही उपासना अपने-अपने संगियों में जारी रक्खी। और जो कि उन को धुर स्थान का भेद नहीं मालूम हुआ था, इस सबब से वे उसी स्थान यानी चक्र के ध्यान और जाप को (जहाँ तक वे अभ्यास करके पहुँचे), मुख्य अभ्यास समझ कर रह गये। इस तरह, एक मत के अनेक मत हो गये, यानी गणेश-उपासक और वैष्णव और शिव-उपासक यानी शैवी, और शक्ति और ब्रह्म-उपासक वग़ैरा। और हर एक अपने मत को, दूसरे के मत से बढ़ कर यानी ऊँचा मानने लगे, और आपस में तकरार और झगड़ा करके, हर एक क़िस्म के अभ्यासियों का फ़िरक़ा जुदा हो गया ॥

९—जब और ज़्यादा वक़्त गुज़रा और जीवों की दशा और हालत बदलती गई, यानी वे दुनिया के भोग-विलास की चाह बढ़ाते गये और उन भोगों की प्राप्ति के लिए ज़्यादा से ज़्यादा यत्न करने लगे, तो इस सबब से परमार्थ की बड़ाई दिन-दिन उनके मन से कम होती गई और सच्चे परमार्थी और अनुरागी बहुत कम होते गये, तब उस वक़्त परमार्थ के चलाने वालों ने बाहरमुख उपासना यानी भक्ति हर एक चक्र के देवता की जारी करी। यानी जिस स्वरूप का कि ध्यान और मंत्र का जाप वे किसी ख़ास चक्र में अपने अन्तर में करते थे, उस स्वरूप की नक़ल धातु या पत्थर की बना कर और एक मकान ख़ास यानी मन्दिर में उसको पधार कर लोगों को समझाया कि यह स्वरूप वही स्वरूप है, यानी मंत्रों के ज़रिये से उसकी प्राण-प्रतिष्ठा होने से देवता उस में आन समाया, और उसकी पूजा, असल की पूजा के बराबर है। इस पूजा को जारी हुए भी कई हज़ार वर्ष का अर्सा गुज़र गया॥

१०—बहुत से जीव इस क़िस्म की पूजा यानी मूर्ति-पूजन में लग गये। जब कुछ वक़्त और इस तौर पर गुज़र गया, तब जो युक्ति कि मूर्ति के रूबरू बैठ कर उसका ध्यान और मंत्र का जाप करने की बताई गई थी, लोग उसको आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ते गये, और सिर्फ़ दर्शन का महात्म यानी मंदिर में जाकर दूर से मूर्ति की झाँकी कर लेना और पूजा-भेंट कर देना, आम तौर से जारी हो गया॥

११—फिर कुछ अर्से के बाद सिवाय उन स्वरूपों के जो कि अन्तर के चक्रों से मुताल्लिक़ थे, औतार स्वरूपों की मूर्ति मिस्ल रामचन्द्र जी, कृष्णचन्द जी, नरसिंह जी लक्ष्मण जी, बलदेव जी और और देवताओं की मूर्तियाँ बना कर नये-नये मंदिरों में पधारना शुरू हुआ। खुलासा यह है कि जैसा जिसके मन ने चाहा, या जैसा जिसको पंडितों ने समझाया, उसके मुवाफ़िक़ अनेक तरह की पूजा जारी हो गई, और उसके साथ तीर्थों की महिमा भी फैलाई गई। यानी जिस तरह जो औतार या देवता प्रकट हुए, वे जगह पवित्र समझ कर वहाँ मंदिर कसरत से बनाये गये, और महात्म वहाँ के दर्शनों का, बहुत से बहुत करके वर्णन किया गया ॥

१२—जब इस तौर से मंदिर ज़्यादा बनते गये और हर एक मंदिर में भेंट और पूजा ज़्यादा आने लगी और वह उन ब्राह्मण पुजारियों को, जो कि हर एक मंदिर में मुक़र्रर किये गये थे, मिलने लगी, तब यह आमदनी की सूरत देख कर पंडितों और ब्राह्मणों ने ज़्यादा भाव के साथ मंदिरों के बनाने और मूर्ति-पूजा के बढ़ाने में मदद देना शुरू किया, और पोथियाँ उसकी महिमा और महात्म की बना कर जारी करी, जिससे कि उन किताबों को सुनकर थोड़ा-बहुत सब लोगों का झुकाव मूर्ति-पूजा की तरफ़ हो गया, और भेद असली रूप परमेश्वर और औतार और देवताओं का, और उस की खोज और उसके प्राप्ति की युक्ति गुप्त होती गई। यानी रफ़्ता-रफ़्ता पंडित और भेष, जो कि वेदों और शास्त्रों और

परमार्थी पोथियों के पढ़ने और पढ़ाने वाले थे, आप ही असली परमार्थ को छोड़ कर और संसार के भोगों की चाह बढ़ा कर, मान और धन की प्राप्ति के लिए यत्न करने लगे, और ब्रह्म विद्या का पढ़ना कि अन्तर में अभ्यास करना भूल गये, और बाहरमुखी पूजा में आम जीवों के साथ शामिल हो गये। और उसकी टेक और पक्ष धारण करके सच्चे अन्तरमुख अभ्यासियों से विरोध और तकरार करना शुरू किया, जिसमें उनकी आमदनी और रोज़गार में खलल न पड़े और वे अपने चेलों की नज़र में मूर्ख और नादान न ठहरें। इस तौर से बहुत पुराने वक़्तों से जीवों की परमार्थी हालत का उतार ऊँचे दर्जे से नीचे के दर्जों में होता चला आया॥

१३—इसी तरह जो जीव कि क्रिया योग और आसनों के साधन में लगे थे, वे भी एक-एक क़िस्म या अंग का थोड़ा-बहुत अभ्यास करके पूजा और मान-बड़ाई के फेर में आ गये, और उतने ही अभ्यास को बड़ा समझ कर अपने तईं पूरा और मुक्ति का अधिकारी मान बैठे। बल्कि बहुतेरों ने तो इस क़िस्म का अभ्यास जगत के दिखाने और पूजा-भेंट लेने के वास्ते, स्वाँगियों की तरह करना शुरू कर दिया। और जो कि यह अभ्यास ज़ाहिरा कठिन और सख़्त था, जैसे धोती, नेती, बस्ति, क्रिया और शंख-पसार क्रिया और खड़े रहना और पंच अग्नि तपना और जल शयन करना और तरह-तरह के आसन बाँधना और मौन रहना और नंगे रहना और काँटों या कीलों पर बैठना वग़ैरा, इस वास्ते,

दुनिया के लोग ऐसे अभ्यासियों को अचरज की नज़र से देखने लगे, और पूजा और भेंट करने लगे और वाह-वाह करने लगे ॥

१४—सच्चे योगी और योगेश्वर लोग ईश्वर कोटि थे, और उनके दिलों में असली और सच्ची चाह परमार्थ की बहुत ज़बर थी, और अभ्यास में मेहनत करने से उनको रस आनन्द आता था, और संसार के भोग-विलास उनको नाशमान और तुच्छ दिखाई देता था। इस सबब से, उन्होंने यह कठिन अभ्यास प्राणायाम का, दुरुस्ती से करके ब्रह्म या पारब्रह्म पद में वासा किया ॥

१५—जो ईश्वर-कोटि कोई बिरले रह गये, और जीव-कोटि लोग उस अभ्यास में शामिल हुए, तब उनसे वह अव्वल दर्जे का अभ्यास यानी प्राणायाम, जैसा चाहिए, न बना। पर उन में जो उत्तम जीव थे, उन से मुद्रा का अभ्यास या अन्तर में ध्यान या जाप हर एक चक्र का दुरुस्त बना, और जो संयम कि इस काम के करने के वास्ते उनको बताये गये थे, वे भी उनसे किसी क़दर दुरुस्त बन पड़े, इस तरह उनको भी आत्म या परमात्म पद की प्राप्ति हुई ॥

१६—जब कि उत्तम जीव भी कम हो गये और सब का झुकाव संसार के भोग-विलास की तरफ़ ज़्यादा होता गया, तब कसरत से जीव मूर्ति-पूजा में लग गये। पर उन जीवों से रफ़्ता-रफ़्ता मूर्ति-पूजा भी, जैसी चाहिए थी, दुरुस्त कम बनी, यानी वे उसका बर्तावा ऊपरी तौर से

करने लगे और इतने ही काम में अपनी मुक्ति समझ कर निश्चिन्त हो रहे। और जो किसी ने उनको अंतर का भेद सुनया या उन से मूर्ति के अस्ल का हाल दरियाफ़्त किया, तो अपनी नादानी की वजह से या पंडितों और भेखों के बहकाने से, उस से लड़ाई और झगड़ा करने लगे। इस तौर से नक़ली परमार्थ यानी नक़ली भक्ति और नक़ली पूजा की चाल जहाँ-तहाँ कसरत से जारी हो गई ।।

१७—जब पूरे तौर से प्राणों या मुद्रा की साधना करने वाले गुप्त हो गये, और यह अभ्यास भी बजाय चढ़ाने मन और प्राणों के, सिर्फ़ मन ठहराने के वास्ते मुफ़ीद समझा गया, यानी थोड़े दिन ऐसा अभ्यास करके लोग अपने आप को पूरा समझने लगे, और कसरत से जीव, मूर्ति या निशानों या तीर्थों की पूजा में लग गये, और जो कोई थोड़े-बहुत विद्यावान थे, वे वाचक ज्ञान में मगन हो गये और अपने को ब्रह्म मानने लगे और अक्सर क्रिया योग वाले स्वाँगी बन गये, तब इस तरह मुक्ति का रास्ता बिल्कुल बन्द देख कर, कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की मौज से संत प्रकट हुए, और उन्होंने सब संतों की कसरें दिखला कर सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश किया। हरचन्द शुरू में बहुत कम जीवों ने उनके बचन को माना, फिर भी बहुत से लोग उनकी बानी और बचन पढ़ने और सुनने लगे और थोड़ी-बहुत उनको अपने परमार्थ की कसरों की ख़बर पड़ती गई ।।

१८—फिर मौज से साध, एक के पीछे एक, कितने ही देशों में प्रकट हुए और उन्होंने शब्द-मार्ग का भेद

उसी मक़ाम तक का, जो कि वेदों का सिद्धान्त है, प्रकट किया। इस में बहुत से जीव लग गये, पर उनमें से पूरे और सच्चे अभ्यासी कम निकले। लेकिन संतों और साधों ने अपनी दया के बल से बहुत से जीवों का उद्धार किया॥

१९—जब ये संत और साध भी गुप्त हो गये, और उनके घरानों में भी सिर्फ़ बानी का पाठ और नाम का ज़बानी सुमिरन रह गया, या कोई रस्म और पूजा बाहर-मुखी चल गई, और विद्या के ज़्यादा फैलने से उनमें से कितने हो वाचक ब्रह्म-ज्ञान की तरफ़ रुजू हो गये, और प्राण और मुद्रा के साधन करने वाले और उसका भेद और युक्ति के जानने वाले भी बहुत कम रह गये, और रस्मी तौर पर कसरत से जीवों का झुकाव मूर्ति-पूजा और तीर्थ, ब्रत, और नियम-आचार की तरफ़ हो गया, और कोई-कोई नये विद्यावान नास्तिकों की समझ पकड़ने लगे, तब कुल मालिक राधास्वामी दयाल आप सतगुरु रूप धार कर जगत में प्रकट हुए और आसान तौर से सुरत-शब्द मार्ग की युक्ति, जो धुर मक़ाम तक पहुँचाने वाली है, और जिसको आज तक किसी संत ने भी साफ़ तौर पर प्रकट नहीं किया था, सहज और आम तौर पर समझाई, कि जिसमें हर कोई, मर्द और औरत, विद्यावान और अविद्या-वान, हिन्दू और मुसलमान और ईसाई और जैनी और स्रावगी और पारसी और यहूदी, यानी किसी क़ौम या पंथ या देश का आदमी होवे, शामिल होकर, अपना सच्चा उद्धार आप हासिल कर सकता है, और जीते-जी अपनी

मुक्ति होने की सूरत, किसी क़दर (यानी जिस क़दर उसका अभ्यास तेज़ होवे) अपने अंतर में अपनी हालत को परख कर आप जाँच सकता है ॥

२०—इस मत को राधास्वामी मत या संत मत कहते हैं। और इसकी कार्रवाई इस तौर पर है कि बाहर तो संत सतगुरु या साधगुरु का (जो भाग्य से मिल जावें) सतसंग, और उनकी और उनके सच्चे भक्तों या प्रेमियों की सेवा तन, मन, धन से करना, और अंतर में सुमिरन करना सच्चे नाम का मन से, और सुनना नाम की धुन का, चित्त के साथ। और मालूम होवे कि वह धुन घट-घट में यानी हर एक आदमी के अंतर में हर वक़्त आप ही आप हो रही है, और उसका भेद, मय तफ़सील स्थानों के, जहाँ होकर वह धुन की धार सच्चे मालिक के चरणों से उतर कर पिंड यानी देह में आई है, संत सतगुरु या साधगुरु या उनके सच्चे अभ्यासी सतसंगी से मिल सकता है, और राधास्वामी दयाल के बानी और बचनों में भी साफ़ तौर पर लिखा है, और बिना भेदी अभ्यासी के समझाये, किसी की समझ में नहीं आ सकता है ॥

२१—इस अभ्यास की कमाई से, जो कोई सच्चा होकर प्रेम के साथ करेगा, आहिस्ता-आहिस्ता मन और इन्द्रियाँ क़ाबू में आती जावेंगी और एक दिन सुरत यानी रूह अन्तर में चढ़ कर, अव्वल त्रिकुटी में जहाँ वेद मत का असली सिद्धान्त है, और जहाँ मन समा जावेगा, और वहाँ से सत्त पुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच

कर (जिसको दयाल देश कहते हैं और जो माया की हद्द के पार है) अजर और अमर हो जावेगी और परम आनन्द को प्राप्त होगी, यानी अपने निज घर में, जहाँ से कि आदि में सुरत उतर कर और पिंड में ठहर कर मन और माया के साथ भोगों में फँस गई थी, पहुँच जावेगी, और जन्म-मरण से सच्ची रहित हो जावेगी ॥

२२—जो कोई राधास्वामी दयाल के बचन को मान कर, जो युक्ति कि उन्होंने बताई है, उसका अभ्यास सच्चे मन से शौक़ के साथ करेगा, उसको पूरा फ़ायदा हासिल होगा, यानी एक दिन उसका सच्चा उद्धार हो जावेगा। और जो अपनी मन-हठ से या दुनिया और उसके सामान की ज़बर पक्ष धार कर न मानेगा, उसका भारी नुक़सान होगा, यानी वह जन्म-मरण और देहियों के साथ दुख-सुख भोगता रहेगा और अमर देश का परमानन्द उसको प्राप्त नहीं होगा और न सच्चे मालिक का दर्शन पावेगा ॥

———

बचन पच्चीसवाँ

अभ्यास में तरक़्क़ी की परख और पहिचान, और वर्णन उन संयमों का जिन से अभ्यास दुरुस्त बने

१—बाज़े सतसंगी ऐसा ख़्याल करते हैं कि उनको किसी क़दर अर्से यानी दो-चार वर्ष राधास्वामी मत में

शामिल होकर थोड़ा-बहुत अभ्यास करते गुज़र गये, पर उनको अभी कुछ अन्तर में खुला नहीं या कुछ तरक़्क़ी अभ्यास की मालूम नहीं होती ॥

२—जवाब इसका यह है कि यह ख़्याल उन सतसंगियों का दुरुस्त नहीं है। उनको अपने हाल की परख नहीं है या वे अपने पिछले और हाल की हालत और तबीयत की जाँच नहीं करते, क्योंकि जो कोई सच्चे मन और सच्चे शौक़ के साथ राधास्वामी मत में दाख़िल होकर प्रेम के साथ थोड़ा-बहुत अभ्यास, दो मर्तबा हर रोज़, सुरत-शब्द मार्ग और सुमिरन और ध्यान का कर रहा है, तो मुमकिन नहीं है कि वह राधास्वामी दयाल की दया से ख़ाली रहे यानी उसको थोड़ा-बहुत रस और आनन्द भजन और ध्यान का न आवे ॥

३—रोशनी और माया के चमत्कारों का नज़र आना, यह भी एक क़िस्म की दया में दाख़िल है, और उससे किसी क़दर तरक़्क़ी अभ्यास की पाई जाती है। पर अभ्यासी को मालूम होना चाहिये कि सफ़ेद रोशनी का चाँदनी के मुवाफ़िक़ खिले हुए नज़र आना, या पाँच रंग की रोशनी जुदा-जुदा दिखलाई देना, या सूरज और चाँद और तारों का नज़र आना, तरक़्क़ी का निशान है। मगर जो मकानात या बाग़ात या सूरतें मर्दों और औरतों की नूरानी नज़र आवें, इनमें ज़्यादा मन लगाना या अटकाना नहीं चाहिये, और न उनके बार बार-नज़र आने की ख़्वाहिश करना चाहिए, क्योंकि ये कैफ़ियतें, वक़्त गुज़रने

अभ्यासी के मन और सुरत के ख़ास[1] ख़ास मुक़ामों से, ज़रूर दिखलाई पड़ेंगी और जल्द ग़ायब भी हो जावेंगी ।।

४—असली तरक़्क़ी का निशान यह है कि अभ्यासी को भजन और ध्यान में थोड़ा-बहुत रस और आनन्द आवे, यानी मन थोड़ा-बहुत निश्चल हो कर अभ्यास में लगे, और शब्द पहिले मक़ाम का दिन-दिन साफ़ और नज़दीक सुनाई देने लगे, और वक़्त अभ्यास के, मन और सुरत किसी क़दर रसीले होकर शिथिल होते जावें, और कभी-कभी इस क़दर अन्तर में लग जावें कि इस तरफ़ की ख़बर और सुध न रहे ।।

५—ऐसी हालत, बग़ैर मन और सुरत के सिमटाव के, या थोड़ा-बहुत ऊपर की तरफ़ चढ़ाने और शब्द या स्वरूप से मिलने के, नहीं हो सकती है । फिर जिस किसी की ऐसी हालत रोज़मर्रा या कभी-कभी होती है, तो समझना चाहिए कि उस को राधास्वामी दयाल, जैसा-जैसा उसकी चाल के मुवाफ़िक़ मुनासिब समझते हैं, तरक़्क़ी देते जाते हैं, यानी सिमटाव और चढ़ाई उसके मन और सुरत की करते जाते हैं और उसका नशा भी उसको अपनी दया से थोड़ा-बहुत हज़्म कराते जाते हैं । नहीं तो इस क़दर रस पाकर बहुतेरे अभ्यासी मस्त होकर घरबार और कारोबार छोड़ने को तैयार हो जावें ।।

६—जो किसी को अपने अभ्यास के समय ऊपर की लिखी हुई हालत की पहिचान कम होती है, तो सबब उसका यह है कि उस अभ्यासी को गुनावन यानी ख़्या-

१—ख़ास-ख़ास ।

लात अक्सर भजन और ध्यान में सताते और विघ्न डालते रहते हैं। इस वास्ते उसको चाहिये कि वह अपनी एक या दो वर्ष गुज़री हुई पहले की तबीयत की हालत का, अपनी हाल की हालत से, मुक़ाबला करे, तो जो वह सच्चा सतसंगी और सच्चा अभ्यासी है, तो उसको और उसके घर वालों को इस क़द्र ज़रूर मालूम पड़ेगा कि पहले की निस्बत उसकी तबियत संसारी लोगों के संग में और संसारी व्यवहार और कारोबार ग़ैर-ज़रूरी और ग़ैर-मामूली में कम लगती है, और उसके दुनियावी ख़्याल भी दिन दिन किसी क़द्र कम होते जावेंगे और फ़िज़ूल और ग़ैर-वाजिब चाहें और तरंगें दुनिया के भोगों और मुआमलों की भी कम होती जावेंगी, और सतसंग और बानी और बचन में, और भी गुरु और साध और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में, प्रीति और प्रतीति पहले से किसी क़द्र ज़्यादा होती जावेगी ॥

७—जो ऊपर की लिखी हुई हालत किसी अभ्यासी सतसंगी को एक या दो वर्ष के अभ्यास के बाद मालूम पड़े तो फिर इस से ज़्यादा और सबूत दया और तरक़्क़ी का क्या चाहिये ? अस्ल मतलब राधास्वामी मत और उस की युक्ति के अभ्यास का यह है कि दुनिया की मुहब्बत और चाह दिन-दिन कम होवे, और मन और सुरत सिमट कर किसी क़द्र ऊपर की तरफ़ चढ़ने लगें और अंतर में थोड़ा-बहुत रस लेने लगें, क्योंकि बग़ैर सिमटाव और चढ़ाई के, मन और इन्द्रियों का हालत कभी

नहीं बदल सकती है ॥

८—पर मालूम होवे कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल अंतरयामी सब के हाल और ताक़त को खूब जानते हैं, और उन के गृहस्थी कारोबार और रोज़गार की सम्हाल के साथ, जिस क़दर उनकी ताक़त हाज़में की देखते हैं, उसी क़दर उनके मन और सुरत का सिमटाव और चढ़ाई आहिस्ता आहिस्ता करते हैं। जो कोई जल्दी के वास्ते अर्ज़ या फ़रियाद करे और उस जल्दी में उसके किसी कारोबार का हर्ज या जिस्मानी तकलीफ़ का अंदेशा है, तो ऐसी अर्ज़ या फ़रियाद को फ़ौरन नहीं सुनते। पर आहिस्ता आहिस्ता मुनासिब वक़्त पर उसको बख़्शिश ज़रूर देवेंगे, और उसके साथ ताक़त हाज़मे की भी बख़्शेंगे। एकाएक दया होने में आदमी मस्त और बेहोश होकर, और दुनिया के कारोबार और कुटुम्ब-परिवार को बिल्कुल छोड़ कर मजज़ूब (मस्त) फ़क़ीरों के मुवाफ़िक़ सर-गरदाँ (बे-ठिकाने) फिरता फिरेगा और अपनी आइन्दा की तरक़्क़ी को आप बन्द कर देगा, क्योंकि ऐसी हालत में फिर दुरुस्ती से अभ्यास नहीं बन पड़ेगा, और इस वास्ते तरक़्क़ी बन्द हो जावेगी।

९—बहुत से सतसंगियों को ख़बर भी नहीं है कि पहिला मक़ाम किस क़दर दर्जा बलन्द (ऊँचा) रखता है, यानी कुल बड़े मतों का यह सिद्धान्त पद है और जहाँ से तीन लोक की रचना की कार्रवाई हो रही है और जहाँ पहुँच कर योगी लय हो गये और इधर का होश उनको नहीं रहा। अब बड़ी भारी दया राधास्वामी दयाल की है

कि ऐसे रास्ते और ऐसी युक्ति से अपने सच्चे परमार्थी जीवों को चलाते और चढ़ाते हैं कि जिस में उनके दुनियावी किसी कारोबार में हर्ज भी न होवे और परमार्थ में आला दर्जा सहज में, बे-मालूम, हासिल होता जावे। इसका ज़्यादा और मुफ़स्सिल हाल लिखने में नहीं आ सकता, अलबत्ता, कुछ थोड़ा-सा ज़बानी कहा जा सकता है ॥

१०—सच्चे और प्रेमी अभ्यासी को चाहिये कि वह सतसंग में बैठ कर अच्छी तरह से निर्णय और तहक़ीक़ के बचन, इन पाँच बातों के, गौर से सुन कर और समझ कर, अपने मन में भ्रम और सन्देह और शकों को, जिस क़दर जल्दी हो सके, दूर करे, नहीं तो वे अभ्यास में विघ्न डालेंगे और इसके मन और सुरत को सफ़ाई और शौक़ के साथ भजन और ध्यान में लगने नहीं देंगे। और वे पाँच बातें ये हैं :

पहली—निर्णय इस बात का कि राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व समर्थ और सच्चे माता-पिता कुल रचना के हैं ॥

दूसरी—यह कि सुरत-शब्द मार्ग सच्चा और पूरा और सहज में धुर पद तक पहुँचाने वाला रास्ता और तरीक़ा अभ्यास का है। इस से बढ़ कर कोई युक्ति या रास्ता रचना भर में नहीं है, और न हो सकता है, क्योंकि और जितने रास्ते हैं, वे सब उन धारों के वसीले के हैं जो माया की हद में ख़त्म हो जाती हैं, और इस सबब

से वे रास्ते, दयाल देश तक नहीं पहुँच सकते। और यह मार्ग जान यानी रूह या सुरत की धार पर सवार होकर चलने का है, और जो कि जान या रूह या सुरत कुल रचना में सब से बढ़ कर जौहर है और सब रचना उसी के आसरे ठहरी हुई है और उसी से हो रही है, इस वास्ते, इस धार से बढ़ कर और कोई धार नहीं है ॥

तीसरी—यह कि मन और इन्द्रियों का ख़मीर माया के मसाले का है, और इस वास्ते उनका असली झुकाव बाहर और नीचे की तरफ़ संसार के भोग और पदार्थों में है। ज़रूरत के मुवाफ़िक़ उनकी कार्रवाई दुरुस्त समझी जाती है, मगर फ़िज़ूल तरंगें और ज़रूरत से ज़्यादा चाहें उठाने में हर्ज और नुक़सान है। इस वास्ते अभ्यासी को थोड़ी-बहुत रोक और सम्हाल अपने मन और इन्द्रियों की, ख़ास कर वक़्त अभ्यास के, बहुत ज़रूर है, नहीं तो भजन और ध्यान का रस जैसा कि चाहिये नहीं आवेगा ॥

चौथी—यह कि दुनिया और दुनिया-परस्तों और धन वालों की मुहब्बत और संग से सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों के प्रेम में, और भी अभ्यास में, किसी क़दर ख़लल और विघ्न पड़ता है। यह बात हर एक अभ्यासी, ऐसे लोगों का थोड़ा संग करके, अपने अंतर में परख सकता है। इस वास्ते, मुनासिब और ज़रूरी है कि ऐसे जीवों का संग और मुहब्बत उसी क़दर रक्खी जावे कि जिस क़दर ज़रूरी और वाजिब होवे, और ज़्यादा उन

में अपने दिल को बाँधना या अपना वक़्त बे-फ़ायदा उनके संग में या दुनिया की ग़पशप में ख़र्च करना, अभ्यासी को मुनासिब नहीं है। विद्यावान लोग भी, जिनको सच्चा शौक़ किताबों के पढ़ने का है, अपने वक़्त को बहुत सम्हाल कर ख़र्च करते हैं, यानी सिवाय रोज़गार और देह और गृहस्थ के ज़रूरी कामों के, बाक़ी वक़्त अपना नई-नई किताबों और अख़बारों को पढ़ने में खर्च करते हैं। फिर परमार्थी अभ्यासी को किस क़दर ख़्याल अपने वक़्त का कि फ़िज़ूल और बे-फ़ायदा ख़र्च न होवे, रखना चाहिये ?

पाँचवीं—राधास्वामी दयाल के चरणों को सच्ची शरण और उनकी मेहर और दया का आसरा और भरोसा ॥

११—जब इन पाँच बातों की सम्हाल थोड़ा-बहुत दुरुस्ती से बराबर जारी रहेगी, तो यक़ीन है कि ऐसे अभ्यासी को मन और माया और दुनिया के विघ्न बहुत कम सतावेंगे और उसका अभ्यास दिन-दिन दुरुस्ती से बनेगा और थोड़े-थोड़े रस और आनन्द के साथ, बढ़ता जावेगा ॥

१२—और मालूम होवे कि अभ्यास में ये सब काम शामिल हैं :—१, सुमिरन करना, २, सुमिरन और ध्यान करना, ३ भजन करना, ४—पोथी का थोड़ा-बहुत समझ समझ कर पाठ करना या सतसंग में बैठ कर सुनना, ५—राधास्वामी मत की चर्चा करना या सुनना, ६—राधास्वामी मत और उसके अभ्यास के ताल्लुक़ की बातों का मन में

विचार और निर्णय और ख़्याल करना, और ७—अपने मन और इन्द्रियों की चाल की हर रोज़ निरख-परख करते रहना और जिस क़दर मुमकिन होवे उनकी सम्हाल रखना ॥

१३—अभ्यासी को बे-फ़ायदा जल्दी इस काम में नहीं करना चाहिए और ग़ौर करना चाहिये कि दुनिया के काम भी, जैसे विद्या सीखना, जल्दी के साथ दुरुस्त नहीं बनते। इस में पन्द्रह और अठारह वर्ष सहज में गुज़र जाते हैं, जब कि विद्यार्थी कुल वक़्त अपना इसी काम में लगाता है, बल्कि घरबार और कुटुम्ब-परिवार से भी जुदा होकर मदरसे में रहना क़ुबूल करता है। फिर यह भारी परमार्थ का काम जब कि सिर्फ़ दो तीन या चार घंटे उसमें दिक़्क़त से लगाये जाते हैं, और बाक़ी वक़्त दुनिया के कामों और दुनियादारों के संग में गुज़रता है, किस तरह ऐसा जल्दी बन सकता है ? बड़ी दया राधास्वामी दयाल की समझना चाहिये कि वे ऐसी थोड़ी मेहनत पर भी अपनी दया करते हैं और सच्चे अभ्यासी को थोड़ा-बहुत अंतर में सहारा थोड़े से दिनों में बख़्शते हैं ॥

बचन छब्बीसवाँ

परमार्थ की ज़रूरत हर एक जीव को, और संतों के उपदेश का सच्चा और पूरा फ़ायदा

१—सब जीवों को, चाहे मर्द होवें या औरत, बराबर ज़रूरत परमार्थी अभ्यास की है, जो कि संतों ने दया करके

ज़ारी फ़रमाया है। यानी जिस वक़्त कि मर्द या औरत बीस-बाईस वर्ष की उमर तक पहुँचे, उसी वक़्त से उसको मुनासिब है कि संतों के उपदेश के मुवाफ़िक़ सुरत-शब्द योग का अभ्यास शुरू करे, और जो कोई काम बाहरमुखी परमार्थी का है (सिवाय इसके कि मालिक के नाम पर जीवों को तन और धन से सुख पहुँचाना) कोई फ़ायदा अंतरी परमार्थ का नहीं दे सकता है ॥

२–बाहरमुखी कामों में सुरत और मन की धार इन्द्रियों के द्वारे बाहर फैलती है, और सुरत-शब्द के अभ्यास में, सुरत और मन की धार, बाहर से सिमट कर अन्दर में ऊपर को अपने भंडार की तरफ़ चढ़ती है। और इस अभ्यास से ज़्यादा ताक़त और सुख मिलता है ॥

३—मालिक ने हर एक जीव में तीन क़िस्म की ताक़तें रक्खी हैं :–एक, देह और इन्द्रियों की ताक़त, दूसरी, विद्या और बुद्धि और मन की ताक़त, तीसरी, चैतन्य सुरत यानी आत्मा या रूह की ताक़त। लेकिन ये ताक़तें जब तक कि मेहनत और शौक़ के साथ साधना और मंथन न किया जावे, तब तक प्रकट नहीं हो सकती हैं यानी जिस किसी ने अपने शौक के मुवाफ़िक, जिस क़ुव्वत के जगाने और उसके काम की तरफ़ तवज्जह सीखने की करी, उसने उसी काम को उसके सिखाने वाले यानी उस्ताद से मिल कर और मेहनत करके सीख लिया, और आहिस्ता-आहिस्ता उस में कामिल हो गया, और उसका फल पाया ॥

४—पहिली ताक़त, देह और इन्द्रियों का साधन है। इसमें बोझ उठाने और हल जोतने से लगा कर उम्दा तसवीर खींचने और लिखने और गाने और बजाने और क़िस्म-क़िस्म की चीज़ें कारीगरी के साथ बनाने और तरह-तरह के तमाशे और चालाकी दिखलाने, जैसे नाचने वाले और नट वग़ैरा दिखलाते हैं, शामिल है। इन सब कामों का नफ़ा या मज़दूरी ज़्यादा से ज़्यादा है, यानी इन कामों के करने वाले सैंकड़ों रुपये महीना पैदा कर सकते हैं। मगर बोझ उठाने वाला और हल जोतने वाला दो, तीन या चार आने रोज़ से ज़्यादा नहीं कमा सकता है ॥

५—दूसरी क़ुव्वत मन और बुद्धि की है। यह विद्या या इल्म के पढ़ने से जागती है, और यह इल्म मदरसे में उस्ताद से सीखने और मेहनत करने से हासिल होगा। जो कोई जिस इल्म की तरफ़ शौक़ के साथ तवज्जह करे, वह उसी इल्म को कुछ अर्से में सीख सकता है और इम्तिहान देकर राज-दरबार से बड़े से बड़ा काम पा सकता है, जिसमें वह हज़ारों, लाखों बल्कि करोड़ों आदमियों पर हुकम चला सकता है और मुल्कों का बन्दोबस्त करता है और हज़ारों रुपये की तनख़्वाह पाता है और बहुत बड़ी इज़्ज़त और हुकूमत उसको मिलती है, और शहरों में नामवरी उसकी होती है, और दुनिया के सब तरह के भोग और विलास उसको आसानी से प्राप्त होते हैं ॥

६—तीसरी क़ुव्वत रूहानी यानी चैतन्य सुरत या आत्मा की है। यह ताक़त पूरे और सच्चे परमार्थी गुरु से

मिल कर, और उनका और प्रेमी अभ्यासियों का सतसंग करके, और अपने मालिक के चरणों में मुहब्बत और दुनिया से वैराग करने से और मन और सुरत को साफ़ करके घट में ऊँचे की तरफ़ चढ़ाने से, जागती है। जो कोई अपने मन और इन्द्रियों को रोक कर और सच्चे मालिक और सतगुरु का प्रेम हृदय में धर कर बराबर अभ्यास करे, वह एक दिन अपनी सुरत की ताक़त को जगा सकता है। और फिर बिना उसके माँगे, देशों में उसकी नामवरी फैलती है और दूर-दूर से मर्द और औरतें और लड़के-वाले उसके पास आकर उसकी पूजा और प्रतिष्ठा करते हैं और अपने जीव के वास्ते मुक्ति और नजात हासिल करने के लिए उसको अपना एक बड़ा वसीला समझ कर, उसकी सेवा और ख़िदमत तन, मन और धन से करते हैं। और सिर्फ़ उसकी ज़िन्दगी में ही नहीं, बल्कि बाद चोला छोड़ने के, उसके नाम और निशान की पूजा और अदब कसरत से मुल्कों और देशों में जारी होता है, और हर एक देश के लोग, मर्द और औरतें और लड़के, उसके नाम और उसकी वाणी को गाकर अपना जन्म सफल करते हैं। इस क़िस्म के लोग, अपने-अपने दर्जे के मुवाफ़िक़, संत और साध और औतार स्वरूप और महात्मा और पैग़म्बर और औलिया कहलाते हैं। उनका मालिक आप उनको प्यार करता है और उनकी इज़्जत और महिमा और बड़ाई बढ़ाता है, और उनके मत को, जो वे अपने मालिक के हुक्म से जारी करें, दूर-दूर तक फैलता है॥

७—ऊपर के बयान से तीनों कुव्वतों के जगाने वालों का दर्जा और महिमा और बड़ाई और फ़ायदे का हाल ज़ाहिर होता है। अब हर एक जीव को इख़्तियार है कि चाहे वह तीनों क़ुव्वतों को जगावे, चाहे एक या दो को। हर एक क़ुव्वत का दर्जा और फ़ायदा अलेहदा अलेहदा है। पर जिसने रूहानी यानी सुरत या आत्मा को ताक़त को जगाया, वह मालिक के देश में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगा और देहियों और जन्म-मरण के दुखों से बच जावेगा, और इस लोक में भी उसको इस क़दर बड़ा दर्जा ज़िन्दगी में, और भी मरने के पीछे मिलेगा कि जो बादशाहों और राजों और अमीरों और विद्यावानों और बुद्धिमानों को भी नहीं मिल सकता है। और जो इस क़ुव्वत को या विद्या और बुद्धि को क़ुव्वत को नहीं जगावेंगे, तो वे क़ुव्वतें उनकी सोती हुई रहेंगी ओर न उनको पूरा-पूरा दुनिया का सुख मिलेगा और न परमार्थ का आनन्द हासिल होगा और न दुखों से ही उनका बचाव होगा॥

८—जो कोई सुरत यानी आत्मा की क़ुव्वत को पूरी-पूरी नहीं जगावे तो उसको मुनासिब है कि कुछ मेहनत करके थोड़ा-बहुत इस क़ुव्वत को ज़रूर जगावे ताकि उसको इस दुनिया में भी आराम मिले और परलोक में भी सुख पावे, यानी जो थोड़ी-बहुत मेहनत करके सुरत-शब्द का अभ्यास करता रहे और सच्ची शरण पूरे गुरु और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की धारण करे, तो वे अपनी मेहर से उसको संसार सागर से बचा कर पार ले जावेंगे और महा सुख का स्थान बख़्शेंगे। और जो इस बचन को नहीं

माने तो उसको इख़्तियार है, पर उसको हमेशा जन्म-मरण भुगतना पड़ेगा और वह, देहियों के साथ ऊँचे-नीचे दर्जे में सदा दुख सहता रहेगा, और आत्मघाती यानी अपने जीव का आप नुक़सान और अकल्याण करने वाला क़रार दिया जावेगा ॥

९—सब मत वाले और कुल जीव कहते हैं कि मालिक हर जगह मौजूद है यानी सर्व व्यापक है, और जो ऐसा है तो वह आदमी और कुल जानदारों में भी मौजूद है। आदमी में मालिक का तख़्त उसके मस्तक यानी दिमाग़ में है और जीव यानी सुरत उसकी अंश है। और जब इसकी बैठक जाग्रत अवस्था में आँखों के मक़ाम में है, तो मालिक का तख़्त ब-हर-सूरत इस स्थान से ऊँचे, मस्तक में होना चाहिए, जहाँ से यह सुरत की धार उतर कर पहिले ब्रह्मांड में और फिर पिंड में आँखों के स्थान पर ठहरी और वहाँ से तमाम देह में पैरों तक, रगों के वसीले से व्यापक हुई ॥

१०—अब समझना चाहिए कि इस सुरत की धार को पहले उसकी बैठक की तरफ़ उलटना और समेटना, और फिर यहाँ से यानी आँखों के ऊपर, अंतर में होकर, उसके भंडार की तरफ़ चढ़ाना, यह काम आत्मा यानी सुरत की क़ुव्वत का जगाना कहलाता है। रास्ते में कई ठेके यानी मक़ाम हैं। सो जितनी दूर तक यानी जिस स्थान तक जो कोई पहुँचा, उसी क़दर उसकी सुरत जागी और उतना ही भेद क़ुदरत और रचना का उसको मालूम हुआ

यानी उस मक़ाम से नीचे का सब हाल उसको मालूम पड़ा। पर जो कोई कि धुर स्थान तक पहुँचा, जहाँ से कि आदि में सुरत का ज़हूर हुआ और वहाँ से नीचे नीचे रचना होनी शुरू हुई, उसको कुल भेद क़ुदरत का मालूम हुआ। और उसी को दर्शन परम भंडार यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का हासिल हुआ। और उसी का नाम परम संत और परम गुरु है और वही परम आनन्द को प्राप्त होकर अमर और अजर हो गया। और उसी की नर देह सफल हुई, यानी उसी ने अपनी चैतन्य शक्ति पूरी पूरी जगाई।

११—अब मालूम हो कि यह काम सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से हो सकता है, यानी सुरत को, जिस धार पर कि यह सवार होकर उतरी है, उसी धार के वसीले से चढ़ाना और वही धार जान और अमृत और रूह और शब्द की धार है क्योंकि जहाँ धार रवाँ (जारी) है, वहीं आवाज़ भी संग है। उस आवाज़ का, जैसे जैसे कि वह हर एक स्थान से प्रकट हुई, भेदी से भेद लेकर, उसी आवाज़ की डोरी को पकड़ कर यानी सुरत से तवज्जह के साथ उस आवाज़ को सुनते हुए, ऊपर को यानी उसके भंडार की तरफ़ चलना सुरत-शब्द योग का अभ्यास कहलाता है। और यह सिर्फ़ संत मत में जारी है, यानी उसका मुफ़स्सिल भेद आज-कल राधास्वामी मत में मिल सकता है। और किसी मत में भेद और चलने की युक्ति का ज़िक्र भी नहीं है। सिर्फ़ इशारे में इस क़दर महिमा शब्द की लिखी है कि

आदि में शब्द प्रकट हुआ और शब्द ही कर्ता है और शब्द ही मालिक का स्वरूप है। पर इसका भेद कि किस तरह से शब्द से रचना हुई और कैसे शब्द मालिक का स्वरूप है और किस तरह उसकी डोरी पकड़ के आदि यानी धुर स्थान तक, जहाँ से कि उसका अव्वल ज़हूर हुआ, पहुँचना हो सकता है, और वह धुर स्थान कहाँ है, कुछ नहीं लिखा है, और न कोई मत वाला इस भेद का जानकार है। इस सबब से, सब के सब पोथियों और मज़हबी किताबों के पढ़ने और पढ़ाने और बाहर की पूजा और रस्मों के चलाने में अटक गये। और जो थोड़े-बहुत विद्या और बुद्धिवान थे, वे अपने आप को ब्रह्म यानी चैतन्य समझ कर चुप हो रहे। और इस सबब से सच्चा उद्धार यानी सच्ची मुक्ति किसी की भी नहीं हुई और न होती है॥

बचन सत्ताईसवाँ

जवाब थोड़े से सवालों के, जो एक सतसंगी ने भेजे

१—सत्तपुरुष से जोत-निरंजन दो कलायें प्रकट हुईं और यह दोनों कलायें चैतन्य हैं और इन्हीं ने तीनों लोकों की रचना करी–पहले ब्रह्म सृष्टि और बाद उसके और क़िस्म की रचना यानी सुर, नर और चारों खान। और यह रचना तीन धारों से प्रकट हुई और यह तीन धारें ब्रह्म और माया से, मक़ाम सहसदल कंवल से निकलीं और वे

तीन गुण कहलाते हैं। सहसदल कंवल तक माया, चैतन्य और निहायत लतीफ़ है। सहसदल कंवल और तीन गुणों के मंडल के नीचे जड़ता शुरू हुई और जिस क़दर उतार नीचे होता गया, कसाफ़त यानी जड़ता बढ़ती गयी। सबब इसका यह है कि सत्तलोक तक निर्मल चैतन्य देश है, और उसके नीचे हल्की तह चैतन्य पर थी। सो जब ऊपर से धार आई, उसने उस तह को, और निर्मल चैतन्य को जुदा करके रचना करी। और वह ग़िलाफ़ या ख़ोल जो अलेहदा हुआ, उससे नीचे की रचना की देह ज़ाहिर हुई। और इसी तरह हर मक़ाम से ग़िलाफ़ या ख़ोल, जो कि ब-निस्बत ऊपर के ज़्यादा मोटा होता गया, ख़ारिज करके नीचे को गिरा दिया गया और निर्मल चैतन्य अलेहदा कर लिया गया, और उसी ग़िलाफ़ या ख़ोल के मसाले से नीचे की रचना की देह ज़ाहिर होती गई। ग़रज़ कि इस मक़ाम पर, जहाँ कि इन्सानी और उससे भी नीचे की रचना है, ग़िलाफ़ ज़्यादा मोटा था और वह ब-वजह इस मोटाई के, महज़ जड़ हो गया जैसे कि किसी दरख़्त पर बहुत चमड़ी जो चढ़ी होती है, वह कुछ अर्से बाद ख़ुश्क होकर गिर जाती है और उसमें तरी बिल्कुल नहीं रहती है, यही हाल नीचे बढ़ता गया॥

२—रचना के अर्से की कुछ तादाद नहीं है और न उसका शुमार मुमकिन है। जो शुमार पुराणों और दूसरी किताबों में लिखा हुआ है, सिर्फ़ इसी सूरज मंडल या उसके ऊपर के सूरज का है, और इसी सूरज मंडल को

पैदा हुए, मुवाफ़िक़ इल्म सितारों के, बे-शुमार वर्ष गुज़र गए हैं। और संत फ़रमाते हैं कि एक सूरज मंडल के नीचे दूसरा, और दूसरे के नीचे तीसरा—इसी तरह रचना होती चली आई है। यानी पहला सूरज मंडल, दूसरे मंडल के सूरज का, जो उसके नीचे है, एक तारा है। अब दराज़ी और वसअत (विस्तार) रचना का ख़्याल करो कि क़यास काम नहीं करता और हर एक मैदान में बे-हिसाब रचना है। मैदान से मुराद हर एक मंडल के घेर से है। सो हर एक मंडल में ऊपर से नीचे तक बराबर रचना होती चली आई है। ऊपर की रचना, नीचे की ब-निस्बत, ज़्यादा से ज़्यादा निर्मल और रोशन है, जैसे इस लोक की हवा के मंडल में बहुत से दर्जे लताफ़त और सर्दी के हैं और पहाड़ पर चढ़ने से इन दर्जों की ख़बर पड़ती है, या अपने मकान के ऊपर के खनों पर चढ़ने से तफ़ावत हवा का मालूम होता है, इसी तरह रचना में मंडल हैं, और उनकी रचना में ऊपर और नीचे के हिसाब से तफ़ावत और फ़र्क़ है। सब से ऊपर जो देश है, वह निर्मल-चैतन्य और ऐन रूहानी है, और वहाँ मिलौनी खोल या तह की नहीं है। और इसी वजह से वहाँ माया के मसाले की बनी हुई देह नहीं है (और माया के मसाले के बड़े जुज़ पाँच तत्व और तीन गुण हैं) और इसी सबब से वह परम आनन्द और सरूर का मक़ाम है और जन्म-मरण और तकलीफ़ देह की वहाँ नहीं है। वहाँ पहुँचना सुरत का, सब मंडलों को फोड़ कर वास्ते हासिल करने सच्ची और पूरी मुक्ति के, ज़रूर है। और यह काम सुरत-शब्द

योग के अभ्यास से बन सकता है, और किसी तरह से मुमकिन नहीं है, क्योंकि शब्द की धार धुर से आई है, और उस पर सवार होकर ही धुर मकाम तक पहुँचना मुमकिन है। और बाक़ी धारें जो रचना में आई हैं, वे किसी न किसी नीचे के मक़ाम से पैदा होकर उतरी हैं। उन धारों को पकड़ कर अभ्यासी उस मक़ाम तक पहुँच सकता है कि जहाँ से वे धारें निकली हैं और उस मक़ाम के ऊपर यानी धुर स्थान तक किसी और तरह से नहीं जा सकता है ॥

३—ऊपर के हाल से फ़र्क़ और तफ़ावत रचना का, एक दर्जे और सब दर्जों में समझ लो। यह ब-सबब मिलौनी खोल यानी माया के हुआ है और इस तफ़ावत से कर्त्ता की ज़ात पर किसी तरह का दोष नहीं आ सकता है, क्योंकि निर्मल चैतन्य देश में सत्तलोक और अलख लोक और अगम लोक की रचना में किसी तरह का फ़र्क़ और तफ़ावत नहीं है, और नीचे के लोकों में जहाँ से कि माया का ज़हूर हुआ, थोड़ा-थोड़ा फ़र्क़ और तफ़ावत पैदा होता गया और नीचे के मंडलों में ज़्यादा बढ़ता गया। यह रचना, जो सत्तलोक के नीचे हुई है, ब्रह्म और माया की करी हुई है, यानी ब्रह्म ने सत्तपुरुष से, सेवा करके, इजाज़त लेकर यह रचना करी है। सो, माया और ब्रह्म की निस्बत अलबत्ता इस क़दर इल्ज़ाम लगाया जा सकता है कि इन्होंने जीवों को सत्तपुरुष का भेद नहीं दिया, और वास्ते बढ़ाने और क़ायम रखने रचना के, अपनी हद में, अनेक तरह के धोखे दे कर, जीवों को अपनी अमलदारी में रक्खा, और अनेक

मत जारी करके उनको भ्रमा और भुला दिया । इसी वजह से संत फ़रमाते हैं कि ब्रह्म देश के पार जाना चाहिये । इस कर्ता का स्वरूप किसी क़दर नाक़िस है यानी ब-सबब संगत माया के, सफ़ाई कामिल इस में नहीं है । इसी सबब से इसकी रचना में भी कसर है । इस तीन लोक की रचना की उम्र है यानों हद् मुक़र्रर है, जैसे कि आदमी की उम्र है । यह सदा एक-रस नहीं रहेगी । इसी वजह से संत कहते हैं कि इस देश में जन्म-मरण से से बचाव नहीं होगा । इस वास्ते ज़रूर है कि ब्रह्म देश के पार जाना चाहिये ।

४—इस लोक की हद् इस सूरज मंडल के ताल्लुक़ है, यानी यह सूरज मंडल जहाँ तक कि है, वहाँ तक इस दर्जे की रचना की हद् है । मगर वह रचना जो नीचे की तरफ़ है, वह इस लोक की रचना से भी कम दर्जे की है । और इसी तरह नीचे के दर्जात में और ज़्यादा कमी ताक़त की होती गई है, और सबसे नीचे रचना नहीं है । वहाँ इस क़दर कसीफ़ खोल चैतन्य पर चढ़े हुए हैं कि कसीफ़ से कसीफ़ रचना भी वहाँ नहीं हो सकती । वह जगह ब-तौर खाली मैदान के पड़ी है । वहाँ रचना किसी वक़्त में भी नहीं होगी, मगर तादाद उसके फ़ासले और वसअत की कुछ नहीं कही जा सकती, क्योंकि अगर महा संख को एक अदद तजवीज़ करके शुमार किया जावे, तो भी हिसाब नहीं लग सकता । वहाँ गिनती का शुमार नहीं हो सकता है, और न इस तादाद के जानने की कुछ

ज़रूरत है। मनुष्य को अपने उद्धार यानी ऊपर को चढ़ने का फ़िक्र करना चाहिये और रचना के हिसाब में, जो कि बे-शुमार है, ज़्यादा पड़ना बे-फ़ायदा है। सिर्फ़ ख़ास क़ायदे को जान लेना चाहिये, और जोकि क़ानून क़ुदरत का सब जगह एकसाँ है। उसको समझ कर सब जगह की चाल का अनुमान करके, अपने मन को तसल्ली देकर, अपने ख़ास काम को, जो कि अपने जीव का कल्याण है, शुरू करना चाहिये।

५—अजपा जाप यानी सोहं शब्द से स्वाँसा से सुमिरन का, ऊपर के दर्जे के सोहं से, कुछ ताल्लुक नहीं है और इस अभ्यास की रसाई किसी मक़ाम पर नहीं है। इससे सिर्फ़ थोड़ी सफ़ाई हो सकती है॥

६—यह भारी दलील आवागवन की है कि जब तक निर्मल चैतन्य देश में सुरत पहुँचेगी, तब तक किसी न किसी क़िस्म के खोल में रहेगी और वह ख़ोल या ग़िलाफ़ उसकी देह समझना चाहिए। और जन्म-मरण ग़िलाफ़ का है, न कि सुरत या रूह का। फिर सुरत जो एक देह को छोड़ती है तो ज़रूर दूसरी देह उसको धरनी पड़ती है, चाहे इस लोक में चाहे ऊँचे या नीचे लोक में। और जिन मतों में आवागवन नहीं मानते हैं, उनसे पूछना चाहिये कि बहिश्त और ऐराफ़ और जहन्नुम में ये रूहें कौन और किस किस्म की देह रख कर दुख-सुख पावेंगी। इस बात का जवाब वे साफ़ तौर पर नहीं दे सकते हैं, क्योंकि सुरत तो, बग़ैर देह के, ऐन आनन्द स्वरूप है।

उसको किसी मूरत में दुख-सुख नहीं हो सकता है, और दुख-सुख भोगने के वास्ते देह का होना ज़रूर है। और रूह या सुरत, जब बहिश्त और ऐराफ़ और दोज़ख़ में, जो तीन मक़ाम जुदा इस लोक से हैं, जाती है और वहाँ दुख-सुख भोगती है तो कोई न कोई देह में ज़रूर उसकी बैठक होगी। तो इस लोक की देह से उस देह में उन स्थानों में जाना आवागवन को साबित करता है। और इल्म नजूम पढ़ने से बहुत सा हाल रचना का कि किस तौर से शुरू हुई और किस क़दर अर्से (काल) दराज़ से चली जाती है, मालूम हो सकता है और उससे किसी क़दर अनुमान ऊँचे की रचना का हो सकता है॥

७—जीव यानी सुरत सत्तपुरुष राधास्वामी की अंश है, जैसे सूरज और सूरज की किरन। रचना से पेश्तर, यह सत्तपुरुष राधास्वामी के साथ अभेद थी। जब सत्तलोक की रचना के नीचे सत्तपुरुष के चरणों में प्रथम अंश, निरंजन, यानी काल पुरुष प्रकट हुआ और उसने वास्ते करने तीन लोक की रचना के, सत्तपुरुष से सेवा करके आज्ञा माँगी, और उसको इजाज़त दी गई, और वह अकेला रचना न कर सका, तब उस वक़्त, आद्या को (जो दूसरी अंश सत्तपुरुष की है) प्रकट करके, और उसको बीजा जीवों यानी सुरतों का हवाले करके, निरंजन के पास भेजा गया और इन दोनों अंशों ने मिल कर रचना तीन लोकों की करी॥

८—त्रिकुटी के मक़ाम से माया प्रकट हुई और यह ग़ुबार रूप यानी परमाणु स्वरूप थी। और यह माया, असल

में, एक ग़िलाफ़ या तह थी जो चैतन्य पर दसवें द्वार के नीचे बतौर दूध पर मलाई के चढ़ी हुई थी। जब वे दोनों धारें, यानी निरंजन और आद्या यानी जोत, इस मक़ाम पर आईं, तब वह तह अलेहदा की गई और वह ग़ुबार यानी परमाणु स्वरूप होकर फैली। और इन तीनों की मिलौनी से निहायत सूक्ष्म धारें तीन गुण सत, रज, तम की, त्रिकुटी से अरूप प्रकट हुईं, और सहसदल कँवल के स्थान से जो त्रिकुटी से नीचे है, यह धारें स्वरूपवान प्रकट हुईं और पाँच तत्व भी प्रकट हुए और ये तत्व और गुण माया के मसाले के बड़े अंश हैं॥

९—अब मालूम होवे कि त्रिकुटी को ब्रह्म पद कहते हैं और सहसदलकँवल के धनी यानी मालिक को ईश्वर कहते हैं। और इस स्थान से सुरत यानी जीव की धार, और मन और माया की धार, जुदा-जुदा प्रकट होकर नीचे उतरी और तीन लोकों की रचना हुई। जिन मतों की रसाई यहाँ तक हुई (और असल में सब मत इसी स्थान तक ख़त्म हो गये), उनको इसके ऊपर का हाल मालूम न हुआ। इस वास्ते उन्होंने ईश्वर व जीव और माया (यानी परमाणु) को अनादि कहा। पर संत-मत के मुवाफ़िक़ माया और उसके परमाणु की आदि त्रिकुटी से हुई और सुरत, सत्तपुरुष राधास्वामी के स्थान से आई और ईश्वर भी, यानी निरंजन, सत्तपुरुष से प्रकट हुआ। फिर यह सब किस तरह अनादि हो सकते हैं क्योंकि सत्तलोक और उसके ऊपर के स्थानों में इनका वजूद और निशान भी नहीं है?

१०—सुरत का बीजा आद्या की मारफ़त एक ही बार सत्तलोक से आया। अब बार-बार सुरतें वहाँ से नहीं आती हैं ॥

११—निरंजन यानी काल अंश एक ही दफ़ा वहाँ से आया। अब वह उलट कर वहाँ नहीं जा सकता है।

१२—संतों के मत के मुवाफ़िक़ प्रलय के वक़्त में त्रिकुटी का स्थान भी सिमट जावेगा और उस वक़्त ईश्वर और जीव यानी सुरत और माया (मय अपने मसाले तीन गुणों और पाँच तत्वों के) दसवें द्वार में समा जावेंगी ओर उनका रूप जो उस मक़ाम के नीचे ज़ाहिर हुआ है, अपने-अपने भंडार में लय हो जावेगा ॥

———

बचन अट्ठाईसवाँ

रचना का वर्णन कि आदि में कैसे हुई

१—आदि में जब किसी क़िस्म की रचना नहीं हुई थी, तब अनामी पुरुष था और उसका स्वरूप अंडाकार था। स्वरूप के कहने से कोई आकारी रूप नहीं समझना चाहिए। यह स्वरूप अपार, अनंत, अकह, अनादि और अरूप था। उसका एक हिस्सा ऊपर का निर्मल यानी नूरानी या प्रकाशवान था और बाक़ी नीचे की तरफ़ वह दर्जे-ब-दर्जे तहों या ग़िलाफ़ों से ढका हुआ था। इस तौर, से जहाँ कि तह या ग़िलाफ़ शुरू हुआ, वहाँ से जिस क़दर प्रकाशवान

हिस्से से दूरी होती, गई, उसी क़द्र नीचे की तह या ग़िलाफ़ भारी या मोटी होती गई। इस हालत में यह तह या ग़िलाफ़ कोई दूसरी चीज़ नहीं समझी जा सकती है। उसकी कैफ़ियत ऐसी थी जैसे कि दूध के ऊपर मलाई। हरचन्द कि मलाई दूसरी चीज़ नहीं है, मगर वह दूध नहीं हो सकती। वह उसका ग़िलाफ़ या खोल होकर रहती है। और फिर उस मलाई में भी दर्जे होते हैं, जैसे निहायत बारीक और फिर मोटी और ज़्यादा मोटी वग़ैरा ॥

२—जिस वक़्त कि अनामी पुरुष का यह स्वरूप था, उस वक़्त जो अंग उसका कि नूरानी हिस्से से नीचे निहायत बारीक तह से ढका हुआ था, उसकी कशिश नूरानी हिस्से की तरफ़ जारी थी। जैसे जब किसी बर्तन में घी भर कर ऊपर का हिस्सा उसका रोशन कर दिया जावे तो उसके नीचे के घी की दौड़ रोशन घी की तरफ़ होती है और उस नीचे के हिस्से के घी की तह या ग़िलाफ़ धुआँ रूप होकर जुदा हो जाती है, ऐसे ही जो नीचे का हिस्सा कि रोशन और प्रकाशवान हिस्से से मिला, उसी वक़्त उसकी तह जुदा होकर नीचे की तरफ़ गिर गई, और वह हिस्सा भी रोशन हिस्से से मिलकर रोशन हो गया। फिर उस रोशन हिस्से से मौज यानी धार प्रकट हुई और नीचे उतर कर किसी क़द्र फ़ासले पर ठहरी। और वहाँ उसने उस देश के चैतन्य से तह या ग़िलाफ़ को अलेहदा करके नीचे की तरफ़ गिरा दिया, और जो रोशन रूप बरामद हुआ, उसको अपने रूप में मिला लिया। और

फिर उसका मंडल बढ़ता गया यानी सब तरफ़ से ग़िलाफ़ वाला चैतन्य रोशन चैतन्य की तरफ खिंच कर, और उससे मिलकर रोशन होता गया। और इसी तरह उस मंडल में फिर कार्रवाई रचना की जारी हुई, और जो ग़िलाफ़ कि ऊपर से उतर कर नीचे गिरा था, उसके मसाले से उस रचना की रूहों की देह बनाई गई। जब उस मंडल की सब रचना हो गई और उस पर कुछ अर्सा गुज़र गया, तब उस मक़ाम से, पहिले दस्तूर के मुवाफ़िक़, नई धार या मौज प्रकट हुई। और इसी तरह से नीचे उतर कर किसी क़द्र फ़ासले पर ठहरी, और वहाँ से ग़िलाफ़दार चैतन्य की तह को हटा कर नीचे गिराया और नूरानी स्वरूप जो बरामद हुआ, उसको अपने से मिला कर ब-दस्तूर मंडल बाँधा और रचना करी। यानी ऊपर से उतरे हुए ग़िलाफ़ या तह का जो मसाला था, उससे इस मंडल की रूहों की देह तैयार करी। और यही देह उनका ग़िलाफ़ होती गई। यह दोनों मंडल अगम लोक और अलख लोक कहलाते हैं और और इनके मालिक अगम पुरुष और अलख पुरुष हैं।

३—इसी तरह से अलख लोक से धार उतर कर नीचे आई और सत्तपुरुष रूप होकर सत्तलोक रचा और फिर उस लोक की रचना करी। यह तीनों मक़ाम और उनकी रचना उस हिस्से अनामी पुरुष में रची गई कि जो सदा प्रकाशवान और निर्मल चैतन्य के क़रीब नीचे था और जहाँ की तह बहुत बारीक थी, जैसे कि शँतरे की फाँक के ज़ीरे का ग़िलाफ़ होता है। और वह तय या ग़िलाफ़ और उसका

मसाला भी ऐन नूरानी और चैतन्य स्वरूप था, यानी अनामी पुरुष के नूरानी अंग के स्वरूप में और उस तह के रूप में बहुत कम भेद या फ़र्क़ था, यानी वह भी वहाँ के नूरानी चैतन्य के मुवाफ़िक़ नूरानी थी और इसी सबब से उस चैतन्य का ग़िलाफ़ होकर रही। और जब रूहों की जुदा जुदा रचना हुई, तब उसी तह या ग़िलाफ़ के मसाले से उन रूहों की चैतन्य यानी रूहानी ख़ोल या देह तैयार हुई ॥

४—सत्तलोक के नीचे जो ग़िलाफ़दार चैतन्य था, वह किसी क़दर काले रंग का था। जब उसकी कशिश सत्तलोक की तरफ़ हुई तो उसका ग़िलाफ़ दूर होकर नीचे को गिराया गया। पर वह इस क़ाबिल न था कि सत्त-लोक के चैतन्य के साथ तद्‌रूप हो जावे। इस वास्ते वह सत्तलोक के नीचे के अंग से, किसी क़दर श्याम रंग की नूरानी धार का रूप होकर प्रकट हुआ, और वह धार नीचे की तरफ़ दिन दिन बढ़ती गई और किसी क़दर फ़ासले पर सत्तपुरुष के सन्मुख ठहरी। इसी धार का नाम निरंजन और काल पुरुष है। इसी ने कुछ अरसे के बाद सत्तपुरुष से दरख़्वास्त की कि मुझको हुक्म और इख़्तियार सत्त-लोक के मुवाफ़िक़ रचना करने का मिले, और वहाँ मैं तुम्हारा ध्यान करता रहूँ। सो उसकी ऐसी ख़्वाहिश देख कर सत्तपुरुष ने उसको इजाज़त दी कि वह नीचे के देश में जाकर रचना करे।

५—तब, यह निरंजन की धार उतर कर नीचे आई

और उसने चाहा कि रचना करे। पर उसकी ताक़त ऐसी न थी कि तनहा (अकेला) कार्रवाई कर सके। फिर उसने सत्त-पुरुष के चरणों में अर्ज़-ए-हाल किया। तब वहाँ से दूसरी धार पीले रंग की, जो कि ऐन चैतन्य थी और सुरत यानी रूहों का बीज उसमें मौजूद था, नीचे उतारी गई। इसका नाम आद्या या ज्योति हुआ ॥

६—जिस स्थान पर यह दोनों धारें आकर पहिले ठहरीं, उसका नाम सुन्न यानी दसवाँ द्वार है। वहाँ पर इनका नाम पुरुष और प्रकृति हुआ और यही स्थान निरमल सुरत का प्रथम ठेका है ॥

७—फिर ये दोनों धारें उतर कर नीचे के मक़ाम पर, जिसको त्रिकुटी कहते हैं, ठहरीं, और वहाँ इनका नाम माया और ब्रह्म हुआ। क्योंकि दसवें द्वार के नीचे के चैतन्य पर ग़िलाफ़ किसी क़दर मोटा यानी दूना था—एक तह (या ग़िलाफ़) पहिली तह के मुवाफ़िक़, और दूसरा ज़्यादा स्थूल। और जब वह तह या ग़िलाफ़ अलेहदा किया गया और ऊपर से दोनों धारें उतरीं, तब इस ग़िलाफ़ का मेल करके उनका नाम ब्रह्म और माया हुआ और इन दोनों की मिलौनी से तीन धारें अति सूक्ष्म और गुप्त यहाँ से जारी हुईं। यहाँ माया का रूप भी चैतन्य और लतीफ़ और निरंजन का रूप भी चैतन्य और लतीफ़ यानी सूक्ष्म है ॥

८—फिर मक़ाम त्रिकुटी से दोनों धारें उतर कर सहस दल कँवल में आकर ठहरीं। और यहाँ इनका नाम

जोत-निरंजन और शिव-शक्ति हुआ। ब्रह्मांड में, ब्रह्म सृष्टि की रचना इन्होंने करी। यहाँ पर निरंजन-जोत का स्वरूप जुदा २ प्रकट हुआ और ये दोनों चैतन्य और निहायत लतीफ़ यानी सूक्ष्म स्वरूप हैं। इस मक़ाम से तीनों गुणों की धारें यानी सत, रज और तम जिनको ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहते हैं, और पाँच तत्व सूक्ष्म यानी पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाश ज़ाहिर हुए। इन आठों से मिलकर, चैतन्य पुरुष और माया ने, तीन लोक की रचना करी यानी देवता, असुर और चार खान के जीव (जेरज, अंडज, सेदज और और उषमज) जिनमें मनुष्य, चौपाये, परिन्द और कीड़े-मकोड़े और अनेक क़िस्म के दरख़्त और बनस्पति और खानें शामिल हैं, पैदा किये, और सूरज और चाँद और ज़मीन और आसमान रचे गये॥

६—अब समझना चाहिये कि सहसदलकंवल के नीचे प्रकट कार्रवाई तीन धारों की हैं।

पहली, चैतन्य की धार जो सतपुरुष राधास्वामी की अंश है और यहाँ अनेक जिस्मों में जीव-चैतन्य या सुरत कहलाती है और कार-फ़र्मा यानी कर्त्ता यही है।

दूसरी, निरंजन यानी काल पुरुष की धार जो कि मन रूप होकर, हर एक जिस्म में सुरत की ताक़त से कार्रवाई करती है।

तीसरी, माया की धार जो कि देह और इन्द्रिय रूप होकर सुरत और मन का ग़िलाफ़ हो रही है। नीचे के देश में माया की तह यानी का ग़िलाफ़ और उसका मसाला

जो तीन गुणों और पाँच तत्वों में स्थूल और ज़्यादा स्थूल होता गया है) मलीन से मलीन होती गई, और इसी सबब से इन देशों में रचना भी निहायत स्थूल और मलीन है ॥

१०—ऊपर के बयान से मालूम होगा कि ब्रह्म और माया, यानी ब्रह्मांडी मन और उसकी शक्ति, जिसको ख़ुदा और परमेश्वर और सिफ़त यानी माया कहते हैं, सत्तलोक के नीचे से पैदा हुई, और इन्हीं के अक्स नीचे के देश यानी पिंड में, मन और इच्छा कहलाये, और ये दोनों, पिंड देश में, सुरत चैतन्य की शक्ति से, जो सत्तपुरुष की निज अंश हैं, चैतन्य है और अपनी २ क़ारवाई करते हैं।

११—मालूम होवे कि पहला ग़िलाफ़ या तह जो चैतन्य पर सत्तलोक के नीचे चढ़ा हुआ था, वह निरंजन रूप हुआ और उसका रुख़ या मुख बाहर की तरफ़ है और हमेशा चैतन्य का ग़िलाफ़ रहता है। त्रिकुटी में इसका नाम ब्रह्मांडी मन है। और इसी तह से सहसदल-कँवल के नीचे से मन पैदा हुआ, जिसका रुख़ भी ब-दस्तूर बाहर की तरफ़ है, और इस लोक यानी पिंड की रचना में सुरत-चैतन्य का ग़िलाफ़ हो रहा है। दूसरी तह जो चैतन्य पर दसवें द्वार के नीचे चढ़ी हुई थी, वह चैतन्य-माया हुई, और ब्रह्म-सृष्टि की रूहों की देह का मसला उस ही से निकला। और इसी तरह सहसदल-कँवल के नीचे जीवों की देह का मसाला वहाँ की माया से पैदा हुआ। और ऐसे ही जिस क़दर, नीचे से नीचे, रचना होती गई, पहली और दूसरी तह मोटी होती गई और

उसमें दर्जे हो गये, यानी मन और माया का मसाला स्थूल से स्थूल और मलीन से मलीन होता चला गया ॥

बचन उन्तीसवाँ

राधास्वामी मत क्या है और उसके अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग का फल क्या है

१—राधास्वामी मत, सच्चे कुल मालिक और उसके निज धाम का भेद समझ कर, सुरत को, अपने सच्चे मालिक और निज माता-पिता के चरणों में, जहाँ से यह आदि में उतर कर आई, पहुँचने का रास्ता बताता है और उस रास्ते पर चलने की युक्ति का उपदेश करता है ॥

२—यह सुरत अपने धाम से जुदा होकर त्रिलोकी में माया और काल के जाल में फँस कर, और पिंड के बंदीख़ाने में क़ैद होकर और मन और इन्द्रिय और उनके भोगों के संग लिपट कर, इस लोक में सब तरह के दुख, सुख और संताप सह रही है। इस वास्ते राधास्वामी मत, इसके दुख हमेशा को दूर करने के लिये, सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की सर्व-समरत्थता और मेहर और दया की महिमा सुना कर चरण-शरण दृढ़ कराता है, जिसके सबब से चलने वाली सुरत को उस रास्ते के तै करने में बहुत आसानी होती है, और चाल सुखाली चलती है, और दया और मेहर संग रहती है, और काल और माया के विघ्न सहज में दूर

होते हैं। यह मत क़ुदरती है, यानी इसमें सच्चे मालिक के मिलने का सच्चा रास्ता, क़ुदरत के क़ायदे के मुवाफ़िक़ समझाया जाता है, यानी जैसे कि आदि में, जब प्रथम सुरत के उतार के साथ रचना शुरू हुई, उसी तरह और उसी रास्ते से, सुरत का उलटाव यानी चढ़ाई की युक्ति बताई गई है। और यह हाल हर एक जीव के मरने के वक़्त होता है कि उसकी रूह की धार का खिंचाव पैरों की उँगलियों से शुरू होकर आँखों की पुतलियों के खिंचाव तक आँख से नज़र आता है, और इसी खिंचाव के साथ ताक़त देह और इन्द्रियों की घटती और खिंचती हुई मालूम होती है। इसी तरह से, अभ्यास के वक़्त, सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यासी की सुरत और मन का उलटाव और खिंचाव, ऊपर की तरफ़, स्वतन्त्रता के साथ होता जावेगा और जो अभ्यास दुरुस्ती से, शौक़ के साथ बनता चला गया तो एक दिन वह अभ्यासी मौत के मक़ाम पर पहुँच कर उसको जीत लेगा। और जिस किसी से इस क़द्र अभ्यास न बना, तो भी वह बहुत दूर तक अपना रास्ता अख़ीर वक़्त पर चलने का साफ़ करके बहुत से संसारी दुख-सुख और मौत की तकलीफ़ से अपना बचाव कर सकता है ॥

३—यह रास्ता और युक्ति किसी आदमी की बनाई हुई या निकाली हुई नहीं है। इसका उपदेश और भेद सच्चे मालिक ने आप संत सतगुरु रूप धार कर जीवों पर अति दया करके प्रकट किया ॥

४—जो कोई इस मत में शामिल हुआ और सुरत-

शब्द का उपदेश लेकर उसके अभ्यास में लगा, तो उस को सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का दामन या चरण पकड़ा दिया गया, क्योंकि धुर मुक़ाम से शब्द की धार हर एक रास्ते के मक़ाम से होकर बराबर नीचे तक, जहाँ कि पिंड में सुरत की बैठक है और जहाँ बैठ कर यह सुरत, देह और संसार के साथ कार्रवाई करती है, जारी है। और जिसको उस धार का, और उन धुनों, यानी आवाज़ों का, जो उन धारों के साथ हो रही हैं, भेद मिला और मन और सुरत को उस धुन के संग लगा कर चढ़ाने की युक्ति बताई गई, तो उस सुरत को धुन के वसीले से सच्चे मालिक के चरणों के साथ मेल करने और उनको पकड़ कर चढ़ने का क़ायदा मालूम हो गया, और वह उसी दस्तूर के मुवाफ़िक़, जब चाहे जब चरणों के साथ लिपट कर उसका रस और आनन्द ले सकती है और उसी धार को पकड़ कर आहिस्ता २ अभ्यास करके, धुर मक़ाम तक पहुँच सकती है ॥

५—ऊपर के लिखे हुए से साफ़ मालूम होगा कि राधास्वामी मत का मतलब यह है कि सुरत को दुख-सुख और जन्म-मरण के स्थान से हटा कर, उसके निज घर में, जो महा सुख और परम आनन्द का भंडार है, पहुँचाना, यानी पिंड और ब्रह्मांड से, जो कि काल और माया का देश है, निकाल कर संतों के दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश में पहुँचाना, ताकि काल क्लेश से बच कर दयाल देश में सदा का आनन्द यानी अमर सुख पावे और आप भी अमर हो जावे ॥

६—बर-ख़िलाफ़ इसके, और मतों का, जो दुनिया में जारी हैं, यह हाल है कि जीवों को इसी देश के किसी ऊँचे, नीचे और मध्य स्थान में रख कर, कभी सुख और कभी दुख के चक्कर में डाले रक्खें, और जन्म-मरण की फाँसो काटी न जावे, बल्कि उनको पूरा भेद रचना का और पता सच्चे मालिक और उसके सच्चे देश का मालूम भी नहीं हुआ। इसी सबब से, वे काल और माया देश के पार का हाल बयान नहीं करते, और न उसके पार जाने की युक्ति समझाते और बताते हैं। इसका हाल इस दृष्टान्त से, जो नीचे लिखा जाता है, साफ़ २ मालूम होवेगा ॥

७—दृष्टान्त-जैसे पानी असल में गैस रूप था और फिर हवा रूप और बादल रूप और बुख़ार रूप से पानी रूप होकर बर्सा और फिर जम कर बर्फ़ रूप होकर जड़ यानी बे-हिस्स और हरकत हो गया, और जब उसको गर्मी पहुँचाई गई, तब फिर पानी रूप और बुख़ार यानी भाप रूप और बादल रूप और हवा रूप होकर फिर गैस रूप होकर गुप्त हो गया, और ऊँचे से ऊँचे देश में, जहाँ उस का पहले वासा था, जाकर ठहरा ॥

८—अब समझना चाहिए कि संत सतगुरु का मत यानी राधास्वामी मत, बर्फ़ रूप को उस के असली घर में पहुँचा कर, गैस रूप बनाने की युक्ति बताता है कि जिस से वह तोड़-फोड़ और ख़ुश्की और गरमी और पाकी और ना-पाकी और इस्तिहालह यानी जन्म-मरण की हालत से छूट कर अपने असली रूप में, जो एक-रस और एक

हालत में क़ायम रहता है, मिल जावे, और तकलीफ़ात से नजात पावे। और इस्तिहालह उसको कहते हैं कि कभी कोई और कभी कोई हालत या रूप बदलना, और यही मतलब जन्म-मरण से है कि ऐक देह या रूप से दूसरी देह या रूप में बदल जाना।

९—और, और मत, बर्फ़ या पानी रूप को इसी जगह के रूपों या निशानों में, या पोथियों और किताबों में, जिसमें असली हाल निज रूप और निज घर का, और उसकी प्राप्ति और वहाँ पहुँचने की युक्ति का ज़िक्र भी नहीं है, अटकाते हैं और इसी जगह सफ़ाई रखने या कुछ दिन आराम हासिल करने की तरकीब बयान करते हैं। पर उस तरकीब से, चाहे जिस क़दर कोई करे, सच्ची और पूरी सफ़ाई और दुखों से बचाव यानी पूरा आराम हासिल नहीं हो सकता है, और न वह तरकीब जैसी चाहिये किसी से बन पड़ती है। इसी से सब जीव बहुत करके लाचार और ख़ाली नज़र आते हैं, और न अपने निज घर और निज रूप का भेद जानते हैं और न उनको उसकी प्राप्ति की युक्ति की ख़बर है॥

१०—कुल मालिक राधास्वामी दयाल ने दया करके सब भेद और युक्ति साफ़ साफ़ करके समझाई और बानी में बयान करी है। अब जीवों को इख़्तियार है कि चाहे उन के बयान को बिचार करके मानें या न मानें॥

११—राधास्वामी मत में जब्र और ज़बरदस्ती रवा नहीं है, और न किसी को लालच या डर दिखाया जाता

है। अलबत्ता, बचन और बानी करके भेद सुनाया और समझाया जाता है। जो बड़भागी हैं, वे मानते हैं और अपने जीते-जी उस का फल देखते हैं यानी दुनिया में भी उसके दुख-सुख से बहुत कुछ बचे रहते हैं और अंत समय पर सुखाले जाते हैं ॥

१२—और जो नहीं मानते, उनको इस दुनिया और देह का भी दुख-सुख बहुत व्यापता है, और अंत समय पर इधर से अँधे और बेहोश होकर जाते हैं, और अन्तर में तरह तरह की तकलीफें रास्ते में सहते हैं ॥

१३—पर इस में भी मौज है। जिन का भाग जल्द उद्धार का है, वे बचनों को सुन कर जल्द समझते हैं और मानते हैं, और जिनके उद्धार में अभी देरी है, वे बचनों को उछाल देते हैं और नहीं मानते ॥

बचन तीसवाँ

सुरत को भी अहार और रस देना चाहिए जैसे कि तन, मन और इन्द्रियों को दिया जाता है

१—सब आदमी अच्छा खाना-पीना चाहते और खाते हैं, जिस से उन की देह की और उसके साथ मन और इन्द्रियों की ताक़त बढ़ती है। और जो खाना न मिले तो तमाम देह और उसके अंगों में ना-ताक़ती और ज़ौफ़ आ जाता है, और फिर जो काम कि उन से लिये जाते हैं, उनकी कार्रवाई दुरुस्त नहीं होती ॥

२—जो कुछ कि आदमी खाता और पीता है, उस का खुलासा ख़ून के वसीले से तमाम बदन और अंग-अंग में पहुँच कर, और उस का अहार हो कर, उस को ताक़त देता है। और इसी तरह ताज़ा हवा खाने, और बाग़ और फुलवारी के देखने, और राग और बाजे के सुनने से दिल और इन्द्रियों को ताक़त और फ़रहत (ख़ुशी) हासिल होती है ॥

३—सिवाय खाने और पीने और देखने और सुनने और सूँघने की चीज़ों के, हर एक आदमी सूक्ष्म तत्व और तीन गुणों औरों रोशनी और बिजली वग़ैरा से भी कुछ मदद, वास्ते परवरिश और ताक़त और सेहत (आराम) अपने बदन के, लेता है। पर इन सब चीज़ों से सुरत को अहार और ताक़त बहुत कम बल्कि कुछ नहीं मिलती। जिस क़दर मुमकिन है, वह अपने मंडल के चिदाकाश से मामूली मदद और ताक़त लेती है, जैसे कि आदमी की देह इस मंडल के आकाश से मदद और ताक़त लेती है ॥

४—सुरत यानी रूह को बढ़का अहार और गहरी ख़ुशी और ताक़त और ताज़गी देने वाली मदद तब मिल सकती है जब कि कोई आदमी सुरत-शब्द अभ्यास के वसीले से उसको, ऊपर को चढ़ावे और जो धार अमृत की, ऊँचे देश से आती है, उसके साथ सुरत की धार का अभ्यास के वसीले से मेल किया जावे ॥

५—जब ऐसी ताक़त और ख़ुशी अन्तर में सुरत को ऊँचे चढ़ कर हासिल होती है, तब वह अपने भागों को

सराहती है और गुरु की महिमा, जिनकी दया से वह सुरत-शब्द के अभ्यास में लग कर इस आनन्द और सरूर को पाती है, बारम्बार गाती है, और निहायत दर्जे की अहसान-मंदी उनकी ज़ाहिर करती है ॥

६—अभ्यास की इस हालत में सुरत को साफ़ मालूम होता है कि जो आनन्द उसको शब्द की धार से (जो कि अमृत और प्रकाश की धार है) मिल कर हासिल होता है, वैसा रस या आनन्द इस लोक में बिल्कुल नहीं है। और ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जाता है, यानी जिस क़दर सुरत ऊँचे को चढ़ती जाती है, उसी क़दर वह आनंद दिन २ बढ़ता है, और अभ्यासी की हालत बदलती जाती है, यहाँ तक कि उसको इस दुनिया के भोग-विलास और राज-पाट और हुकूमत कुछ भी नहीं सुहाते हैं, और कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत गहरी और ज़्यादा से ज़्यादा होती जाती है, और दुख-सुख, देह और दुनिया के, उसको, मालिक की दया से, और अंतर के आनन्द हासिल होने से, बहुत कम व्यापते हैं, और अगर ज़्यादा ऊँचे दर्जे तक पहुँच हो जावे, तो बिल्कुल नहीं व्यापते।

७—सिवाय ऊपर के लिखे हुए फ़ायदे के, सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यासी को बीमारी और मौत के वक़्त तकलीफ़ कम होती है, क्योंकि जिस रास्ते से हो कर मरने के वक़्त सुरत जाती है, वह उस रास्ते को, जीते-जी किसी क़दर देख लेता है, और वहाँ की कैफ़ियत उसको सब

मालूम हो जाती है। फिर मरने के वक़्त, उस रास्ते पर बहुत सुख और आनन्द के साथ जाता है और अपने मालिक की क़ुदरत और दया को देख कर बहुत मगन होकर अपनी बड़भागता को सराहता है ॥

८—सब आदमियों को, चाहे मर्द होवे या औरत, मुनासिब मालूम होता है कि जैसे अपने तन, मन और इन्द्रियों को अहार और ताक़त देने के लिए रात-दिन मेहनत करते हैं, ऐसे ही थोड़ा-बहुत अपनी सुरत को भी ताक़त और अहार देने के वास्ते ज़रूर यत्न करें, नहीं तो सख़्त और भारी तकलीफ़ होगी, और मौत के वक़्त उनको बहुत दुख सहना पड़ेगा, और उस वक़्त का पछ-तावा कुछ फ़ायदा नहीं देवेगा ॥

९—जो बीस २ या बाइस २ घंटे दुनिया के कामों में ख़र्च करें तो लाज़िम है कि दो या तीन या चार घंटे अपनी सुरत के फ़ायदे के वास्ते भी, जो कि तन, मन और इन्द्रियों को चैतन्य करने वाली है, ज़रूर ख़र्च करें। जो वे यह काम सचौटी से करेंगे तो इसका फ़ायदा थोड़े दिन के अभ्यास से उनको आप दीखने लगेगा, और सच्चे मालिक की अपने अंतर में मौजूदगी और उसकी दया की ख़बर पड़ेगी, और तब उसकी सच्ची प्रतीत और प्रीति चरणों में आवेगी, और फिर आहिस्ता २ उसको अपने सच्चे उद्धार का सबूत अपने अंतर में मिल जावेगा ॥

१०—यह काम सबको करना ज़रूरी मालूम होता है। और जो कोई थोड़ा-सा भी अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग

का, जीते-जी कर लेगा तो उस को चौरासी से बचा कर ऊँचे देश में पहुँचाया जावेगा, और जो दुनिया के भोग-विलास में अटक कर इस अभ्यास को नहीं मानेगा और नहीं करेगा तो वह अपने कर्मों के मुवाफ़िक़ ऊँची-नीची योनियों में जावेगा, और यमदूतों के हाथों से बहुत दुख पावेगा और जन्म-मरण की तक़लीफ़ हमेशा सहता रहेगा ॥

बचन इकतीसवाँ

सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यास से मन और इन्द्रियों का क़ाबू में आना

१—सब महात्माओं और सब मतों के आचार्यों ने ऐसा कहा है कि जब तक मन और इन्द्रियाँ काबू में नहीं आवेंगे, तब तक तत्व पद का ज्ञान यानी सिद्धान्त-पद की प्राप्ति नहीं होगी ॥

२—और मन और वासनाओं यानी संसारी चाहों के अभाव या नाश करने के लिए अनेक युक्तियाँ हर एक ने लिखी हैं। पर, उनमें से कोई भी युक्ति ऐसी नहीं है कि जिसका अभ्यास बे-ख़तरे और बे-ख़ौफ़, गृहस्थी और विरक्त जीव, बराबर कर सकें और जीते-जी उसका फल भी अपनी आँखों से देखें ॥

३—प्राणायाम के अभ्यास को अकसर लोगों ने सब युक्तियों और अभ्यासों से बढ़कर रक्खा है, और कहा है

कि इससे मन और इन्द्रियाँ बस में आ सकते हैं। यह बात तो सही है, पर इस अभ्यास की कमाई यानी प्राणों का रोकना अब किसी से दुरुस्ती के साथ नहीं बन सकता है, और ख़तरे और बीमारी के सबब से किसी की जुरअत (हिम्मत) और ताक़त इस अभ्यास के करने की नहीं होती। और इस समय में ख़ास करके प्राणायाम की युक्ति किसी गृहस्थी या भेष से नहीं बन सकती है ॥

४—इस वास्ते ऐसी हालत जगत की देख कर, कुल मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल ने संत सतगुरु रूप धार करके सुरत-शब्द मार्ग की आसान युक्ति प्रगट की कि जिसका कुल जीव, गृहस्थ होवें या विरक्त, अथवा औरत होवें या मर्द, कुल मालिक राधास्वामी दयाल की शरण लेकर, अभ्यास करके, सत्तलोक यानी दयाल देश में पहुँच सकते हैं, और जन्म-मरण की क़ैद से बच कर और और देह और संसार के दुखों और सुखों से न्यारे होकर अमर देश में परम आनन्द को, जिसका कभी अभाव या नाश नहीं हो सकता है, प्राप्त हो सकते हैं ॥

५—वह युक्ति सुरत-शब्द की यह है कि अपनी सुरत यानी रूह की तवज्जह को अपने घट में, जहाँ शब्द की धुन हर दम हो रही है, उस आवाज़ का पता और भेद लेकर लगाना, और उसकी धुन को सुन कर छाँट करना, और जो शब्द कि संत सतगुरू ने हर एक स्थान, रास्ते के ताल्लुक़, समझाये हैं, उसी मुवाफ़िक़ धुन को

पकड़ के, सुरत और मन को ऊपर को चढ़ाना, और इसी तरह रास्ते के मक़ामों को तै करके, धुर मक़ाम पर, जो कुल मालिक राधास्वामी दयाल का स्थान है, पहुँच कर वहीं विश्राम करना ॥

६—जिस क़द्र इस अभ्यास की कमाई राधास्वामी दयाल की दया से बनती जावेगी, उसी क़द्र मन और सुरत सिमट कर आकाश की तरफ़ पिंड में, और फिर उसके परे ब्रह्मांड में, और फिर उसके भी परे दयाल देश यानी सत्तपुरुष राधास्वामी देश में चढ़ कर पहुँचते जावेंगे, और देह और इन्द्रियों और मन और संसार की सुध-बुध दिन दिन बिसरती जावेगी ॥

७—जिस किसी से एक दर्जे की भी कमाई किसी क़द्र बन पड़ेगी, वह मुताबिक़ अपनी सुरत की चढ़ाई के, तन, मन और इन्द्रियों को किसी क़द्र बस में लावेगा, और उसी क़द्र उसको अंतर में मालिक का दर्शन प्राप्त होता जावेगा, यानी पहले दर्जे में आत्मा और परमात्मा का, और दूसरे दर्जे यानी ब्रह्मांड में, ब्रह्म और पार-ब्रह्म का, जो कि त्रिलोकी का नाथ है, और तीसरे दर्जे में सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का, जो कि कुल मालिक और सर्व-समर्थ हैं, दर्शन पावेगा ॥

८—"परम तत्व" नाम सत्त शब्द का है जो कि आदि में सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों से प्रकट हुआ और कुल रचना जिसकी चैतन्यता से पैदा हुई। और "तत्व" नाम अनहद शब्द का है, जो ब्रह्म स्थान से

ज़ाहिर हुआ और जिसकी चैतन्यता से तीन लोक की रचना क़ायम है ॥

९—इसी तौर से सुरत-शब्द योग का अभ्यासी, तत्व और परम तत्व को प्राप्त होकर, अपने जीव का सच्चा कल्याण यानी पूरा कारज कर सकता है ॥

१०—यहाँ यह बात बयान करना ज़रूर है कि जब कि सुरत-शब्द मार्गी अपने अभ्यास के बल से सुरत-चैतन्य को जब चाहे, शब्द-चैतन्य की धार से मिला कर ऊपर को चढ़ा सकता है और उस वक़्त तन, मन और इन्द्रियाँ किसी क़द्र या बिल्कुल उसके काबू में आ सकते हैं, तो उसको इख़्तियार हासिल हो जावेगा कि जब चाहे, जिस क़द्र ताक़त मुनासिब जाने, उनको देकर काम लेवे या किसी वक़्त बिल्कुल उन से काम न लेवे ॥

११—पर इसके साथ यह भी ज़रूर होगा कि वह बाहर और अंतर गहरा सतसंग करके अपने मन और इन्द्रियों की, कोई दिन सतगुरु या साध का संग करके, अच्छी तरह गढ़त करावे कि उनमें कोई वासना इस लोक और परलोक के भोगों की बाक़ी न रहे, तब काम पूरा होगा। और यह बात आहिस्ता-आहिस्ता सतसँग और अभ्यास करके दुरुस्त बन आवेगी। जल्दी का काम नहीं है। क्योंकि जो मन और इन्द्रियों की गढ़त और सफ़ाई नहीं होगी तो वे आकाश के परे नहीं चढ़ सकेंगे और अभ्यास में हमेशा अनेक तरह की तरंगें उठा कर ख़लल डालते रहेंगे ॥

बचन बत्तीसवाँ

मन का प्रबल झुकाव संसार की तरफ़ और उसकी तरंगों के रोकने की जुगत

१—मन का स्वाभाविक झुकाव इन्द्रियों के द्वारे संसार और उसके भोग-विलास की तरफ़ है और जिस क़दर माया के पदार्थ और सामान तरह-तरह के हैं, और हमेशा नये-नये क़िस्म के मौजूद होते जाते हैं, वे भी सब इन्द्रियों को और उनके साथ मन की धार को अपनी तरफ़ खैंचते हैं। इस सबब से मन और इन्द्रियाँ हमेशा चंचल रहती हैं ॥

२—जब कि आदमी पैदा होता है, उस वक़्त से बराबर माया के पदार्थ और अपने प्यारे और रिश्तेदार लोग नज़र में आते हैं, और संसारी बातें सुनने और समझने का दिन-दिन अभ्यास बढ़ता जाता है, और इन्द्रियों के भोगों का रस मिलता जाता है और उन्हीं की चाह, जैसे कि उमर और समझ बढ़ती जाती है, आदमी के मन में पैदा होती जाती है। और उसके पूरा करने के वास्ते जतन सीखता है और करता है और संसार ही के ख़्यालात दिल में भरते जाते हैं और नये-नये भी पैदा होते जाते हैं ॥

३—इस तौर से सब आदमी संसार के ही कारोबार में अटके रहते हैं और उसके सामान की प्राप्ति के लिये अनेक तरह के जतन और मेहनत करते हैं, और जब वह

सामान हासिल होता है, तब अपनी मेहनत की कामयाबी पर ख़ुश होकर अपने तईं बड़ा आदमी और भाग्यवान समझते हैं, और हिर्स और तृष्णा बढ़ा कर आइन्दा को ज़्यादा जतन और मेहनत करने को तैयार होते हैं ॥

४—खुलासा यह कि दुनिया ही के कामों में अपना कुल वक़्त ख़र्च करते हैं और मन और इन्द्रियों के भोगों की चाह और उसके पूरा करने के फ़िक्र में उम्र भर खो देते हैं और कुटुम्ब और परिवार में आसक्त हो कर, उनको राज़ी और ख़ुश करने के वास्ते हमेशा मेहनत करते रहते हैं ॥

५-इस तरह, सब जीवों के ख़्याल स्वाभाविक संसारी हो जाते हैं और उनका मन हमेशा दुनिया के कारोबार के लिए, या धन और नामवरी प्राप्त करने के वास्ते तरंगें उठाया करता है और दूसरों की भलाई और बुराई, बिना पूरी तहक़ीक़ात के, किया करता है और अपनी कसरों पर नज़र नहीं डालता है ॥

६—इनमें से जो कोई जीव इत्तिफ़ाक़ से संतों के सतसंग में आ जाता है और मत का निर्णय सुन कर और भेद समझ कर अभ्यास करने पर तैयार होता है, तो उसको, पिछले स्वभाव और संसारी करनी के सबब से, अपने मन और चित्त को नाम और रूप और शब्द की धुन के साथ जोड़ने में शुरू में किसी क़दर दिक़्क़त पड़ती है, और बारम्बार दुनिया और उसके भोगों के ख़्याल गुनावन रूप होकर अभ्यास के वक़्त उस को सताते हैं और भजन और

ध्यान का रस, जैसा चाहिए, नहीं लेने देते ॥

७—इसके सिवाय जिन लोगों ने कि थोड़ी-बहुत विद्या पढ़ी है और अनेक तरह के ख़्यालात, पिछले वक़्त के विद्यावालों के, उनके मन और बुद्धि में भरे हुए हैं, उनको तरह-तरह के गुनावन, विद्या और बुद्धि के, वक़्त सतसंग और अभ्यास के, उठते रहते हैं और संतों के बचन का पूरा-पूरा निश्चय नहीं आने देते हैं ॥

८—इन सब विघ्नों के दूर करने के वास्ते राधास्वामी दयाल ने दया करके यह युक्ति बताई है कि जहाँ तक मुमकिन होवे, कुछ अपना वक़्त भजन, ध्यान और सुमिरन, और सतसंग और संतों की बानी के पाठ में ख़र्च करें, और जहाँ तक बन सके, अपने मन को दुनिया के फ़िज़ूल ख़्यालों से बचा कर घट में रोकें। तब आहिस्ता-आहिस्ता मन निश्चल और चित्त निर्मल होवेगा, और अपने अंतर में कुछ-कुछ रस और आनन्द पावेगा। और यही अभ्यास जारी रखने से हालत दिन-दिन बदलती जावेगी और अन्तर में रस और आनन्द बढ़ता जावेगा और तब संसार के भोगों की चाह आहिस्ता-आहिस्ता घटती जावेगी ॥

९—मालूम होवे कि मन से एक वक़्त में एक ही काम हो सकता है, यानी एक ही धार, ताक़त वाली, मन से एक वक़्त में उठ कर कार्रवाई कर सकती है, चाहे वह काम परमार्थी करे और चाहे दुनिया का ॥

१०—दुनिया के काम की धार का मुख इन्द्रियों की तरफ़ यानी नीचे को है, और परमार्थी काम की धार

का मुख, जो संतमत के मुवाफ़िक़ उठती है, ऊँचे की तरफ़ होता है ॥

११—संसारी परमार्थ की धार (जैसे कि और मतों में परमार्थी काम किये जाते हैं), इन्द्रियों के वसीले से, या तो बाहर की तरफ़ जारी होती है या अंतर में, नीचे की तरफ़, हृदय या नाफ़ के स्थान की तरफ़ जारी होता है ॥

१२—संत मत के मुवाफ़िक़ यह धार, जो बाहरमुख है, दुनिया के साथ मेल रखती है और जो पिंड के अन्दर, हृदय या नाफ़ की तरफ़ जारी होती है, वह भी, जो उसका सिलसिला ऊँचे के स्थान से मस्तक में नहीं लगा हुआ है, तो संत-मत के मुवाफ़िक़ बाहरमुख समझी जाती, और उस में सिवाय थोड़ी-बहुत मन और इन्द्रियों की सफ़ाई के कोई फ़ायदा, सुरत और मन की चढ़ाई का, हासिल नहीं होता है ॥

१३—संत कहते हैं कि जब तक सुरत और मन, अपना स्थान, जो पिंड में है, आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ कर, ऊँचे देश यानी ब्रह्मांड में न चढ़ेंगे, तब तक पक्की और सच्ची सफ़ाई और अंतर का सच्चा रस और आनन्द प्राप्त नहीं होगा, और संसारी वासना और तृष्णा का मल, जो मन और सुरत पर चढ़ा हुआ है, कभी नहीं उतरेगा। इस वास्ते सब जीवों को मुनासिब है कि संत-मत के अनुसार, भेद समझ कर और सुरत-शब्द योग की युक्ति लेकर, अपने मन और सुरत को आहिस्ता-आहिस्ता ब्रह्मांड की तरफ़ चढ़ाने का अभ्यास शुरू करें,

तो मन का झुकाव संसार की तरफ़ दिन-दिन कम होता जावेगा, और अन्तर में शब्द का रस पाकर ब्रह्मांड की तरफ़ चढ़ता जावेगा, और तब सच्चा बैराग संसार से, और सच्चा अनुराग सच्चे मालिक के चरणों में, उसको हासिल होता जावेगा ॥

१४—इस वास्ते कहा जाता है कि जो कोई सचौटी के साथ अपने मन और इन्द्रियों को संसार के भोगों की तरफ़ से हटाना चाहता है और सच्चे मालिक के चरणों में प्रेम के साथ अपने सुरत और मन को जोड़ना चाहता है, उसको चाहिए कि हमेशा अपने मन और उसकी तरंगों की चौकीदारी करे, यानी नज़र करता रहे कि वह क्या-क्या तरंग उठाता है। जो संसारी तरंगें फ़िज़ूल हैं, उनको रोके और जो परमार्थी तरंगें उठें, उनको बढ़ावे और ताक़त देवे ॥

१५—संसारी तरंगों का रोकना इस तरह पर हो सकता है कि जब इस क़िस्म की हिलोर मन में उठती हुई मालूम पड़े, उस वक़्त मन और सुरत की तवज्जह को ऊपर की तरफ़, जैसा कि भेद स्थानों का संत मत के मुवाफ़िक़ समझाया गया है, पहले स्थान पर नाम के आसरे, चाहे स्वरूप के आसरे, और चाहे शब्द के आसरे, लगावे, और उसी जगह पर जमा देवे। फ़ौरन उस धार का मुख जो इन्द्रियों की तरफ़ जाने वाली थी, ऊपर की तरफ़ मुड़ जावेगा और वह संसारी तरंग हट जावेगी या मिट जावेगी और अंतर में थोड़ा-बहुत ऊँचे देश का रस मिलेगा ॥

१६—नाम के सुमिरन का रस और स्वरूप के ध्यान का रस, जो ऊँचे स्थान पर आँखों के ऊपर लिया जावे, और शब्द का रस, जो पहले स्थान सहसदलकँवल या दूसरे स्थान त्रिकुटी की धुन सुन कर प्राप्त होवे, इस क़दर ताक़त रखता है कि मन की धार को अपनी तरफ़ थोड़ा-बहुत खींच कर दूसरी तरफ़ से हटा लेगा और जो ज़्यादा रस मिलेगा तो वह धार उसी तरफ़ को रवाँ होकर उस स्थान पर ठहर जावेगी और थोड़ी देर ख़ूब रस देवेगी और जो तवज्जह किसी क़दर कम रही तो रस कम आवेगा। फिर भी, दूसरी तरफ़ यानी इन्द्रियों और नीचे की तरफ़ उस धार की चाल बन्द हो जावेगी या कम हो जावेगी और उस तरफ़ कुछ कार्रवाई नहीं कर सकेगी ॥

१७—जब कभी ऐसा इत्तिफ़ाक़ होवे कि अभ्यासी का ज़ोर, वास्ते मोड़ने धार के मुख के, काम न देवे, यानी ऊँचे की तरफ़ को नाम या स्वरूप या शब्द के आसरे न चढ़े, और बाहर की तरफ़ को रवाँ होवे, तो भी इस खैंचा-तानी में उस धार की ताक़त नीचे की तरफ़ कुछ न कुछ कम हो जावेगी, और जो बिल्कुल मोड़ी न गई तो भी उसकी कार्रवाई नीचे की तरफ़ यानी इन्द्रियों द्वारे किसी क़दर ज़ईफ़ और कमज़ोर या कम हो जावेगी ॥

१८—और जो किसी वक़्त अभ्यासी का बस न चले और धार ज़ोर के साथ इन्द्रियों की तरफ़ रुजू करे और ऊपर की तरफ़ तवज्जह, नाम या रूप या शब्द में, न आवे

तो अभ्यासी को चाहिए कि उस धार की कार्रवाई के पीछे अपने मन में पछतावे और शर्मावे और चरणों में राधास्वामी दयाल के प्रार्थना करके मुआफ़ी माँगे, और आइन्दा को होशियारी करे। ऐसा करने से, उस धार की कार्रवाई का असर कम हो जावेगा यानी उस कार्रवाई का फल बहुत हलका हो जावेगा। और जो आइन्दा को होशियारी जारी रही, तो मुआफ़ी भी हो जावेगी ॥

१६—इसी तरह से परमार्थी का काम आहिस्ता-आहिस्ता बनता जावेगा, यानी भूल-चूक उसकी बराबर मुआफ़ होती जावेगी, इस शर्त पर कि वह अपनी मेहनत और कोशिश, वास्ते फेरने धार के मुख के, सच्चे मन से, जारी रक्खे और अपने क़सूरों पर शर्माता और पछताता रहे और प्रार्थना करता रहे। तब दिन-दिन सफ़ाई हासिल होती जावेगी, यानी मन और चित्त निर्मल और निश्चल होते जावेंगे, और एक दिन माया के घेरे से निकल कर उसकी सुरत, संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की मेहर से, दयाल देश यानी अपने निज घर में पहुँच जावेगी ॥

शब्द

सुरतिया मान तजत।
आज सतसंग में रस पाय ॥ १ ॥

मन का संग कर हुई दिवानी।
भोगन में लिपटाय ॥ २ ॥

जगत वासना नित्त बढ़ावत।
दुक्ख सहत फिर फिर पछताय ॥ ३ ॥

कर्म धर्म संग हुई बावरी ।
देवी देव पुजाय ॥ ४ ॥

तीरथ बरत जगत व्योहारा ।
निच करे, सिर कर्म चढ़ाय ॥ ५ ॥

संतन की बानी नहिं पढ़ती ।
मोह जाल में रही फँसाय ॥ ६ ॥

भाग जगा गुरु सन्मुख आई ।
निज घर का उन भेद सुनाय ॥ ७ ॥

जग का झूठा खेल पसारा ।
बहु विधि गुरु ने दिया समझाय ॥ ८ ॥

समझ बूझ सतसंग में लागी ।
मान बड़ाई तज दई आय ॥ ९ ॥

गुरु से प्रीति करत अब साँची ।
सुरत-शब्द की कार कमाय ॥ १० ॥

घट में निरख विलास नवीना ।
गुरु चरणन प्रतीत बढ़ाय ॥ ११ ॥

चरण शरण राधास्वामी हिये धर ।
लीना अपना काज बनाय ॥ १२ ॥

बचन तैंतीसवाँ

सच्चे और पूरे गुरु की पहचान जल्द नहीं हो सकती। इस वास्ते, पहले उनके साथ साध-भाव का बर्ताव करे और सतसँग और अभ्यास करे जावे। तब कोई दिन में कुछ-कुछ परख आती जावेगी।

१—संत-मत और संतों की बानी में, सतगुरु की महिमा बहुत से बहुत सुनाई और कही गई है। और संत सतगुरु नाम उन्हीं सतपुरुषों का है कि जो सत्तलोक और राधास्वामी पद में पहुँचे और सतपुरुष और राधास्वामी के स्वरूप से जिनकी एकता हुई। उनकी महिमा, जिस क़दर करी जावे, वे कम से कम है॥

२—ऐसे सतगुरु दुर्लभ हैं और जो किसी को मिल भी जावें तो उनकी पहिचान नहीं आती। क्योंकि संसारी और दुनियादार जीवों की ताक़त नहीं है कि सच्चे और पूरे महात्माओं की पहिचान कर सकें।

३—इस दुनिया में इस क़दर गुरुओं की भीड़-भाड़ और कसरत है और वे सब धन और मान के चाहने वाले हैं कि उनमें से सच्चे और पूरे गुरु की छाँट और पहिचान करना बहुत मुश्किल है।

४—जो कोई पोथियाँ पढ़ कर, और उनमें से महात्माओं के लक्षण समझ कर, अपनी विद्या और बुद्धि से सच्चों

का जाँच करना चाहे, तो हरगिज़ नहीं कर सकता। पाखंडी और झूठे गुरु, बाहरी रूप थोड़ी देर के वास्ते बना कर, चाहे धोखा देवें, पर जो पूरे और सच्चे हैं, वे कोई रूप या स्वाँग नहीं बनाते, और और जीवों के मुवाफ़िक़ उनकी रहनी साधारण होती है ॥

५—जो कोई करामात या शक्ति उनकी देखना चाहे तो हरगिज़ बचन करके या और तरह से नहीं दिखाते और न अपनी कोई ताक़त दिखाते, और न वे चाह धन और मान की जीवों से रखते हैं। फिर उनकी पहिचान कठिन है ॥

६—झूठे परमार्थी यानी स्वार्थी जीव, कुछ शक्ति और कला और करामात देख कर, यक़ीन और विश्वास लाना चाहते हैं। पर ऐसे जीवों को करामात या कला दिखाने का हुक्म नहीं है, क्योंकि जो उनको कोई शक्ति दिखाई भी जावे, तो वे संसारी और दुनिया के मतलब यानी औलाद और धन और तन्दुरुस्ती के माँगने के सिवाय और कुछ नहीं चाहेंगे, यानी वे परमार्थ की कोई चाह नहीं रखते और जो किसी के कहने-सुनने से परमार्थ की चाह भी ज़ाहिर करेंगे, तो ऐसी माँग माँगेंगे कि एक ही दिन में या बहुत जल्दी उनको अन्तर में कुछ कला या शक्ति या मालिक का दर्शन या रोशनी नज़र आवे। तब यक़ीन और प्रतीत लावेंगे, नहीं तो सच्चे परमार्थ को झूठा और सच्चे सतसंग को धोखे की जगह और सच्चे परमार्थियों को, जो प्रीति और प्रतीत करते हैं, नादान और मूर्ख और ख़ुशामदी और स्वार्थी समझ कर, उनका निरादर करेंगे और अपने मन में उनको

ओछे और तुच्छ समझवाले जान कर उनके संग से नफ़रत करेंगे ॥

७—फिर इन जीवों को सच्चे सतसंग में लगाने की मौज नहीं है, क्योंकि वे सतसंग में विघ्न डालते हैं और उनके संग से सच्चे परमार्थियों का किसी क़दर अकाज होता है ॥

८—जो सच्चे परमार्थी जीव हैं, उनको संत सतगुरु या साधगुरु ज़रूर मदद देते हैं। और जो वे उनका बचन मान कर सतसंग और अंतर अभ्यास बराबर करे जावेंगे, तो ऐसे जीवों को थोड़ी-बहुत पहिचान भी पूरे गुरु की आहिस्ता-आहिस्ता आती जावेगी, पर जब तक कि अन्तर में सफ़ाई अच्छी तरह न होवेगी और सच्चे मालिक का सच्चा प्रेम थोड़ा-बहुत मन में नहीं आवेगा, तब तक यह पहिचान पक्की नहीं होवेगी और न हर वक़्त क़ायम रहेगी ॥

९—अंतर की सफ़ाई से मतलब यह है कि मन में चाह संसार के भोग-विलास की और उसकी तृष्णा बाक़ी न रहे ॥

१०—ज़रूरी और वाजिबी चाह वास्ते अपने और अपने कुटुम्ब के पालन और पोषण के, औसत यानी मध्य के दर्जे पर, सच्चे परमार्थ की प्राप्ति में इस क़दर विघ्न नहीं डालती है। पर अनेक तरह की चाहों का मन में भरा रहना, और नित्त उनका बढ़ाना और उन्हीं के पूरा करने

ओछे और तुच्छ समझवाले जान कर उनके संग से नफ़रत करेंगे ॥

७—फिर इन जीवों को सच्चे सतसंग में लगाने की मौज नहीं है, क्योंकि वे सतसंग में विघ्न डालते हैं और उनके संग से सच्चे परमार्थियों का किसी क़दर अकाज होता है ॥

८—जो सच्चे परमार्थी जीव हैं, उनको संत सतगुरु या साधगुरु ज़रूर मदद देते हैं। और जो वे उनका बचन मान कर सतसंग और अंतर अभ्यास बराबर करे जावेंगे, तो ऐसे जीवों को थोड़ी-बहुत पहिचान भी पूरे गुरु की आहिस्ता-आहिस्ता आती जावेगी, पर जब तक कि अन्तर में सफ़ाई अच्छी तरह न होवेगी और सच्चे मालिक का सच्चा प्रेम थोड़ा-बहुत मन में नहीं आवेगा, तब तक यह पहिचान पक्की नहीं होवेगी और न हर वक़्त क़ायम रहेगी ॥

९—अंतर की सफ़ाई से मतलब यह है कि मन में चाह संसार के भोग-विलास की और उसकी तृष्णा बाक़ी न रहे ॥

१०—ज़रूरी और वाजिबी चाह वास्ते अपने और अपने कुटुम्ब के पालन और पोषण के, औसत यानी मध्य के दर्जे पर, सच्चे परमार्थ की प्राप्ति में इस क़दर विघ्न नहीं डालती है। पर अनेक तरह की चाहों का मन में भरा रहना, और नित्त उनका बढ़ाना और उन्हीं के पूरा करने

के निमित्त यत्न और मेहनत करते रहना, मन को मैला करता है। और ऐसे मन में सच्ची प्रीति और प्रतीति का, सच्चे मालिक और सच्चे गुरु के चरणों में, ठहरना और उनकी दया की परख और पहिचान का आना मुश्किल है॥

११—जिस किसी के मन में सच्ची चाह भी सच्चे मालिक से मिलने की पैदा हुई है और वह अपनी बड़भागता यानी सच्चे मालिक की मेहर और दया से संतों के सच्चे सतसंग में भी आ गया, तो भी कुछ अर्से में वह चाह मज़बूत व पक्की होवेगी और संसार की वासना, जो जन्म-जन्म से मन में भरी चली आती है, आहिस्ता-आहिस्ता कम होकर दूर होवेगी। यानी जिस क़दर वह बचन सतसंग में समझ-समझ कर सुनेगा और अंतर में अभ्यास करेगा और रस मिलता जावेगा, उसी क़दर संसार का भाव और प्यार, उसके मन से घटता जावेगा और सच्चे मालिक और सच्चे गुरु के चरणों में उसी क़दर प्रीति और प्रतीति बढ़ती जावेगी। लेकिन यह काम जल्दी का नहीं है। आहिस्ता-आहिस्ता मन की हालत बदलेगी और निर्मल समझ उसकी बुद्धि में धसती जावेगी, और उसके मुवाफ़िक़ रहनी भी सम्हलती जावेगी॥

१२—इस वास्ते, हर एक परमार्थी को मुनासिब है कि पहिले, कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम का भेद और उनके मत का निर्णय करके, यानी उसकी

ऊँचाई और गहराई को समझ लेकर, और उनके अभ्यास सुरत-शब्द मार्ग की महिमा और बड़ाई अच्छी तरह समझ कर, सतसंग और अभ्यास शुरू करे, और सच्चे मालिक सर्व समर्थ राधास्वामी दयाल का इष्ट बाँध कर, यानी उनके चरणों का निश्चय धारण करके, जिस क़दर हो सके, प्रीति और प्रतीति जगाता और बढ़ाता रहे, और उनके बचन के मुवाफ़िक़ अंतरमुख सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास करता रहे, तो उसके अंतर में आहिस्ता आहिस्ता अनुभव जागेगा और सब परमार्थी बातों और कामों का हाल और उनका फ़ायदा, अंतर के अभ्यास से, उसको आप नज़र आता जावेगा ॥

१३—पहिले इसी क़दर काफ़ी होगा कि सच्चा परमार्थी शख़्स अपने मन में राधास्वामी दयाल कुल मालिक और उनके अभ्यास सुरत शब्द योग की प्रतीति करके काम शुरू करे, और बाहर से, सतसंग शब्द-भेदी और शब्द अभ्यासी गुरु या उनके सतसँगी का करे। और जो किसी का भी संग हर रोज़ न मिले तो संत सतगुरु की बानी का समझ समझ कर थोड़ा बहुत पाठ रोज़मर्रा, और अन्तर में अभ्यास सुरत-शब्द का, करता रहे। कोई दिन में उसको हाल सच्चाई और बड़ाई अपने उपदेशक और सच्चे मार्ग सुरत-शब्द का मालूम होता जावेगा, और अंतर में राधास्वामी दयाल की दया से, परचे भी मिलते जावेंगे कि उससे थोड़ी-बहुत पहिचान सच्चे गुरु की होती जावेगी। इसी तरह कमाई करते करते प्रेम भी

जागेगा और प्रतीति भी बढ़ती जावेगी, और गुरु की क़द्र और शब्द की ताक़त भी मालूम होती जावेगी, और राधास्वामी दयाल की दया की परख अपने अंतर में, और उनकी रक्षा और सम्हाल की, अंतर और बाहर, ख़बर पड़ती जावेगी ॥

१४—जिस क़द्र ऊपर लिखी हुई हालत पैदा होती जावे, उसी क़द्र प्रीति गुरु के चरणों में बढ़ाता जावे, और उनके दर्शन और सेवा और सतसंग से फ़ायदा उठाता जावे। पर जब तक अंतर में परचे न मिलें और अभ्यास का रस और आनन्द न आवे और थोड़ा-थोड़ा बढ़ता न जावे, और दया और रक्षा परख में न आवे, तब तक राधास्वामी दयाल कुल मालिक के चरणों में, जो घट घट में अंग संग हर एक अभ्यासी के मौजूद हैं, प्रीति और प्रतीति धर कर, उनकी दया और मेहर के आसरे, अभ्यास करे जावे, और गुरू यानी अपने उपदेशक को अपने से बड़ा और अपना हितकारी समझ कर, जब-जब मौक़ा होवे, या जब जब बन सके, उनका सतसँग करता रहे, और अपने संशय और भ्रम और बिपरजय, उनकी मदद से, दूर करता रहे और राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति बढ़ाता रहे ॥

१५—संसारी और संसारी गुरु, निंदा से डरते रहते हैं कि कहीं उनके सेवक उनसे फिर न जावें और आइन्दा को सेवकों की तादाद बढ़ाने में कसर न पड़े। पर सच्चे और पूरे गुरु जान-बूझ कर अपनी निंदा कराते हैं कि

जिससे संसारी जीव उनके सतसंग में न आवें और सिर्फ़ सच्चे परमार्थी, जो कि उस निंदा को सच्चे परमार्थ का सबूत समझ कर ज़्यादा शौक़ के साथ लगेंगे, उनके सतसंग में शामिल होवें ॥

१६—सच्चे गुरु यह अभिलाषा नहीं रखते हैं कि हमारे सतसंग में भीड़-भाड़ होवे और नाम मशहूर होवे, बल्कि वे यह चाहते हैं कि चाहे थोड़े ही जीव आवें पर वे सच्चे परमार्थी होवें । और ब-सबब निंदा के, आम जीव आप ही उनके सतसँग से दूर रहते हैं और सँसार की निंदा के डर से उनके पास आने से डरते हैं ॥

१७—सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि ख़ूब समझ-समझ कर, और अपने मन में निर्णय और जाँच करके, जो जो बचन सुने, उनकी प्रतीति करता जावे और जिस क़दर अपने अँतर में क़ैफ़ियत देखे और रस लेवे, उसके मुवाफ़िक़ प्रीति बढ़ाता जावे । दूसरों के कहने और सुनने से जिस क़दर प्रीति और प्रतीति आवेगी, उसका पूरा भरोसा नहीं हो सकता है, क्योंकि तक़लीफ़ और निंदकों के ज़ोर के वक़्त ऐसी प्रीति और प्रतीति जल्द डिगमिग हो जावेगी, और निश्चय क़ायम नहीं रहेगा ॥

१८—मन का स्वभाव है कि ज़रा सी तक़लीफ़ या संसार के पदार्थ को हानि में या कोई उल्टा-सीधा बचन परमार्थ के विरोधियों का सुनकर, जल्द कच्चा होकर, अपने निश्चय से डिग जाता है और गुरु की तरफ़ अनेक तरह के भ्रम उठाता है । इस वास्ते मुनासिब है कि

जब तक पूरा-पूरा निश्चय उनकी तरफ़ न आवे, तब तक उनके साथ साध-भाव, यानी जैसा कि अपने से बढ़कर साधना करने वाले के साथ बरता जाता है, बरताव करे, और संत सतगुरु का भाव न लावे। यह भाव राधास्वामी दयाल के चरणों में, जो कुल्ल मालिक हैं, (और वे सब नाम, यानी संत सतगुरु और गुरु, उन्हीं के हैं) बढ़ाता और पकाता रहे, और उन्हीं को कुल्ल का कर्ता और धर्ता मानता रहे और हर दम उनकी दया और मेहर माँगता रहे। वे अपनी कृपा से ऐसे सच्चे अभ्यासी की हालत आप दिन-दिन बदलते जावेंगे, और जिस क़दर उसको, उनके चरणों में और गुरु और साध के संग प्रेम सहित बर्ताव करना चाहिये, कराते जावेंगे, और आहिस्ता आहिस्ता उसके अंतर की दृष्टि खोलते जावेंगे, यानी अनुभव जगा कर समझ-बूझ बढ़ाते जावेंगे। तब राधास्वामी दयाल और गुरु की गति की पूरी-पूरी समझ उसको आप आती जावेगी और उस वक़्त में जैसा भाव चाहिये, वैसा राधास्वामी दयाल और गुरु के साथ सच्चे तौर पर बर्त सकेगा ॥

बचन चौंतीसवाँ

जीवों पर सच्चे मालिक की दया का हाल, और वर्णन उनकी ग़फ़लत और बे-परवाही का, उसकी तरफ़ से, और मुनासिब और लाज़िम होना हर एक जीव पर, उस दया की परख करके, उससे

संत सतगुरु के बचन के मुवाफ़िक कमाई करके, अपने सच्चे उद्धार का फ़ायदा हासिल करना

१—सच्चे मालिक ने अपनी दया से जीव के गुज़ारे के लिये इस लोक में उसको अपने औज़ार बख़्शे हैं कि जिनके वसीले से वह अपनी रोटी और इन्द्रियों के भोग का सामान पैदा करके रस और आनन्द ले सके, जैसे दसों इन्द्रियाँ और चार अंतःकरण ॥

२—इन्द्रियों की दो क़िस्में हैं। एक, ज्ञान इन्द्रियाँ, जैसे—आँख, कान, नाक ज़बान और त्वचा यानी छूने वाली ताक़त, बदन की चमड़ी में, और दूसरी, कर्म इन्द्रियाँ, जैसे–हाथ, पाँव, ज़बान, पेशाब और पाख़ाना की इन्द्रियाँ, और चार अंतःकरण—मन, चित्त, बुद्धि, अहंकार हैं।

३—इन चौदह औज़ारों के वसीले से आदमी अनेक तरह के नये-नये काम करता है और नई-नई चीज़ें और विद्या की पोथियाँ बनाता है और मेहनत और मज़दूरी और हुनर के काम और लिखना-पढ़ना और बन्दोबस्त दुनिया का करता है, और इस तौर से धन पैदा करके अपने खाने-पीने और पहनने और रस और स्वाद की चीज़ों का भोग करने का बन्दोबस्त करता है।

४—अब ख़्याल करो कि जिस मालिक ने ये सब औज़ार और समझ और ताक़त उन औज़ारों के काम में लाने की बख़्शी है, किस क़दर इस आदमी को उसकी

शुक्र-गुज़ारी और सेवा, जान और दिल से करनी चाहिये ?

५—वह सच्चा मालिक कुल्ल, दयाल और दातार है और सब जीवों पर, चाहे वे समझें या न समझें और उसकी दया और दात का शुक्राना करें या न करें, बराबर दया कर रहा है और सब तरह से उनकी सम्हाल और रक्षा, जैसे-जैसे, जब-जब मुनासिब होती है करता है ॥

६—सिवाय तन में औज़ारों के, उस सच्चे मालिक ने बाहर से भी बहुत सामान आदमी और जानदारों के आराम के लिए जैसे—सूरज और चाँद और पानी और हवा और अग्नि और रोशनी और बिजली वग़ैरा—पैदा किये हैं ॥

७—इस सब दया और दात के एवज़ में वह सच्चा दाता और दयाल मालिक, कि जो सब का सच्चा माता और पिता है, कोई ख़िदमत या सेवा या शुक्र-गुज़ारी का काम या उस शुक्र-गुज़ारी का इज़हार और वर्णन जीवों से नहीं चाहता है, और न इन बातों की उसको परवाह है।

८—पर उन जीवों पर, जिनको उस मालिक ने बुद्धि की ताक़त, निर्णय और भेद करने वाली, और नफ़े और नुक़सान की परख करने वाली, और रचना और उसके सामान को देख कर उसके बनाने और पैदा करने वाले की पहिचान करने वाली बख़्शी है, फ़र्ज़ और लाज़िम है कि वे दरियाफ़्त करें कि उनके जीव यानी रूह का

असली मक़ाम कहाँ है, और वहाँ कैसा आनन्द और सुख है, और इस देश में, जहाँ कि वह तन, मन और इन्द्रियों के साथ संसार में बँध गई है, और उस देश के सुखों में क्या फ़र्क़ है, और उनके सच्चे पिता और माता कुल्ल मालिक का कैसा स्वरूप और धाम है और उस मालिक से मिलने में क्या फ़ायदा, और दूरी में क्या नुक़सान है, और वह दूरी किस तरह दूर हो सकती है, यानी वह रास्ता किस तरक़ीब और किस सवारी से तै करके, सुरत यानी रूह अपने निज घर में पहुँच सकती है ॥

९—और हरचन्द (जोकि) वह सच्चा मालिक जीवों की शुक्र-गुज़ारी और ख़िदमत और सेवा का मोहताज नहीं है, पर जीवों को मुनासिब है कि अपने नफ़े और फ़ायदे के वास्ते ज़रूर शुक्र-गुज़ारी उसकी दया और दात की हमेशा और हरदम करते रहें। जो वे ऐसा करेंगे तो उनके मन में उस सच्चे मालिक का प्यार और भाव क़ायम होगा और बढ़ता जावेगा और उसके सबब से अंतर में शान्ति और एक तरह की ख़ुशी पैदा होगी कि जो उनकी सुरत यानी रूह को ताक़त देती रहेगी ॥

१०—देखो, दुनिया में जो एक आदमी दूसरे आदमी से किसी तरह का सलूक करता है, या तक़लीफ़ के वक़्त में उस की मदद और ग़म-ख़्वारी करता है, या ज़रूरत के वक़्त में धन देता है, तो वह शख़्स उसका किस क़दर अहसानमँद होता है और तहे-दिल से, यानी अपने अन्तर के अन्तर से, उसको दुआ देता है, और जिस क़दर उससे

बन सके, उसकी सेवा और उसके लड़कों या प्यारों की सेवा करने को तैयार रहता है, और जब मौक़ा पाता है, तब फ़ौरन सेवा करके थोड़ा-बहुत उस अहसान का एवज़ाना (बदला) करके अपने मन में बहुत ख़ुश होता है ॥

११—जो कि सुरत यानी सब जीव उस सच्चे मालिक की अंश हैं और इन में यह स्वभाव और चाल जारी है कि एक दूसरे की तकलीफ़ और सख़्ती में मदद करता है और फिर वह दूसरा उसका अहसान मान कर, एवज़ में प्यार और मुहब्बत और ख़िदमत (सेवा) करता है तो उसी स्वभाव और चाल के मुवाफ़िक़ ज़रूर हर एक आदमी के मन में सच्चे मालिक की दया और दात के एवज़ में उसके चरणों में प्यार और भाव और उनकी सेवा का शौक़ पैदा होना चाहिये और उसका ज़हूर भी अच्छी तरह होना चाहिये। पर आम तौर पर यह बात नज़र नहीं आती, यानी आदमियों में यह चाल मालिक की शुक्र-गुज़ारी की कम देखने में आती है ॥

१२—सबब इसका यह है कि पहले तो वह मालिक किसी को नज़र नहीं आता और न मिलता है, और जहाँ कहीं वह प्रकट यानी ज़ाहिर होता है, वहाँ उसकी पहिचान नहीं आती, और जो उसने इस मामले में हुक्म दिया है, उस से लोग ना-वाक़िफ़ हैं ॥

१३—मालिक ने कहा है कि जहाँ सच्चे प्रेमी और भक्त जन हैं, उनके हृदय में मेरा वासा रहता है। और

कहीं जो मुझको कोई ढूंढ़ना और तलाश करना चाहे, तो मैं नहीं मिलूँगा, पर प्रेमी भक्त के हृदय में बसता हूँ, वहाँ मुझको तलाश करे, और जो सेवा और भाव और प्यार करना होवे, वहाँ उस सच्चे प्रेमी भक्त के साथ बरताव करे, तो वह सब सेवा मेरी है। और जिस क़दर भाव और प्यार कोई करेगा, वह मेरे साथ भाव और प्यार समझा जावेगा और उसका फल मैं दूँगा ॥

१४—दुनिया में भी इस बात का सबूत प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि जो कोई किसी के बालक से प्यार करे, और उसको कुछ खिलावे-पिलावे या पहिनावे, तो उस बालक के माँ-बाप उस शख़्स से बहुत खुश होते हैं और उसकी सेवा का बदला आप देते हैं। इस तरह जो कोई दुखी और निर्धन जीवों की (जो कि सच्चे मालिक के बालक हैं) मदद और उपकार करें, उस से मालिक राज़ी होता है और, और जीव भी उसकी कार्रवाई देख कर राज़ी और खुश होते हैं, और जहाँ तक जिस से बने, मदद भी करते हैं। और जो ऐसा काम निष्काम बन आवे, तो उसके बदले में मालिक प्रेम और भक्ति की बख़्शिश करता है, और नहीं तो इस लोक में या परलोक (स्वर्ग) में सुख देता है। यह तो हाल आम जीवों के साथ उपकार करने का बयान हुआ। और प्रेमी जन जो कि मालिक के निज प्यारे बालक हैं, बल्कि किसी दर्जे में खुद उसी का स्वरूप हैं, उनकी सेवा का फल तो कुछ कहने और

लिखने में नहीं आ सकता। मुक्ति का देना तो ऐसी सेवा के बदले में बहुत ज़र्रा सा (किनका मात्र) इनाम है। ऐसी निष्काम सेवा के फल में मालिक का दर्शन और निज धाम में बासा मिलता है।

१५—और मालिक ने कहा है कि प्रेमी और भक्त जन मेरी आत्मा यानी मेरी जान हैं, उनकी मार्फ़त जो कोई मुझसे मिलना चाहे मिल सकता है और उनके वसीले से जो कोई मेरी सेवा करना चाहे, वह सेवा मुझ को पहुँच सकती है। ऐसे पूरे प्रेमी और भक्तजन जो कि सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से मिल रहे हैं, वे संत कहलाते हैं। और जो ब्रह्म और पारब्रह्म से मिल रहे हैं, वे साध कहलाते हैं, और जो मिलने का जतन और अभ्यास कर रहे हैं और अभी ब्रह्मपद तक नहीं पहुँचे, वे सतसँगी कहलाते हैं॥

१६—संतजन तो आप ही सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल का स्वरूप हैं और साधजन ब्रह्म और पारब्रह्म का स्वरूप हैं और सच्चे सतसंगी, जो अभ्यास में दर्द और शौक़ के साथ लगे हुए हैं, वे सच्चे मालिक के निज प्यारे बाल-बच्चे हैं। जो कोई मालिक के निमित्त इनकी सेवा करेगा और इनके साथ भाव और प्यार करेगा, उससे कुल मालिक प्रसन्न होवेगा और मेहरबान होकर भक्ति यानी प्रेमदान देवेगा कि जिस से वे भी एक दिन साध और संतगति हासिल करके, सच्चे मालिक के दर-

बार में दाख़िल होकर अजर-अमर हो जावेगा और जन्म-मरण से रहित होकर परम आनन्द और महा सुख को, जिसमें कमी व बेशी नहीं होवेगी, प्राप्त होवेगा ॥

१७—बाज़े आदमी ख़्याल करते हैं कि वह मालिक तो चैतन्य और अरूप है, उसको किसी के नफ़े और नुक़सान और आराम और तक़लीफ़ से कुछ वास्ता नहीं है, और न किसी की प्रार्थना और विनती की वहाँ ख़बर होती है और न कोई कारज वह करता है, यानी वह अकर्ता और निरलेप है, इस वास्ते उसकी कोई सेवा और ख़िद्मत नहीं हो सकती है ॥

१८—यह ख़्याल इन विद्यावानों और बुद्धिमान लोगों का ग़लत है । सच्चा मालिक अरूप और अकर्ता भी है और स्वरूपवान और कर्ता भी है । जो वह आदि में आप रूप नहीं धरता, तो रचना में कोई रूप प्रकट नहीं होता ॥

१९—अब ख़्याल करो कि आदमी इस लोक की रचना में सब से श्रेष्ठ और उत्तम है और उसको कुल्ल इख़्तियार और हुकूमत इस लोक में दी गई है । उसका जो रूप है, वही रूप या उसका नक्शा या ख़ाका, थोड़ी-बहुत कमी के साथ, सब जानदारों में, जैसे चौपाये और परिन्द और कीड़े-मकोड़े वग़ैरा में बराबर नज़र आता है । जब कि नीचे की रचना में इस आदमी का रूप या उसका नक़्शा या ख़ाका बराबर चला गया है तो अब

दरियाफ़्त करना चाहिये कि आदमी का रूप कहाँ से आया, यानी ऊपर के लोकों की रचना में यही रूप बढ़के दर्जे का ज़रूर होगा, और कोई ऐसा स्थान रचना में ज़रूर है कि जहाँ आदि में आकार स्वरूप मालिक का प्रकट हुआ, और फिर उससे नीचे की रचना में उसी का नक़्शा या ख़ाका दर्जे-ब-दर्जे कमी के साथ बराबर चला आया है ॥

२०—संत सतगुरु जो कुल मालिक के स्वरूप हैं और तमाम रचना के भेद को जानते हैं, फ़रमाते हैं कि प्रथम रूप, रंग और रेखा सत्तलोक में प्रकट हुए, और वहाँ से दर्जे-बदर्जे, जैसे कि रचना नीचे के स्थानों में होती आई, उस रूप का भी उसी के साथ उतार होता चला आया ॥

२१—अब विचारना चाहिये कि जहाँ से आदि ज़हूर स्वरूप का हुआ, वही स्वरूप कुल नीचे की रचना का कर्ता है और वही प्रेम स्वरूप और दयाल स्वरूप है, और जिस अरूप से कि आदि धार आई, वह प्रेम और दयालुता और कुल स्वरूपों का भंडार है। यही स्वरूप उस अरूप को, जो उसका निज रूप और भंडार है, लखावेगा और बग़ैर इस स्वरूप की मदद के, कोई उस अरूप भंडार तक नहीं पहुँच सकता है ॥

२२—इस वास्ते जो कोई उस अरूप से मिलना चाहे उसको चाहिये कि पहले उस आदि स्वरूप की भक्ति करके, वहाँ तक उस रास्ते से, कि जो उस स्वरूप ने संत सतगुरु

रूप धर कर इस संसार में प्रकट किया है, पहुँचे। तब अरूप से मेला होगा और जो ऐसा करेगा, तो जिस जगह कि जीव की पिंड में बैठक है, वहीं बैठा २ चाहे जिस तरह अरूप की महिमा गाया करे और ज़िक्र किया करे और निर्णय और तहक़ीक़ात करता रहे, पर जब तक कि उस जुगत की, जो कि उस स्वरूप ने आप संत रूप धर कर प्रकट की है, कमाई और अभ्यास नहीं करेगा, तब तक अपनी जगह से नहीं हिलेगा, और इस वास्ते, देह का बंधन उसका कभी नहीं काटा जावेगा, और न जन्म-मरण से रिहाई होवेगी और न अपने निज घर में, यानी सत्तलोक और राधास्वामी पद से दख़ल पावेगा।

२३—इस सबब से कुल विद्यावान और बुद्धिमान लोग ख़ाली रह गये, सिर्फ़ बातें विद्या बुद्धि की बनाते रहे और जो कुछ उन्होंने उस मालिक के रूप या अरूप का निर्णय किया, वह भी सही नहीं हो सकता और न उनको रचना के भेद की सही ख़बर मिली। इस वास्ते, उनके मन और बुद्धि का अँधेरा और भ्रम और सन्देह बिलकुल दूर नहीं हुआ। और इसी सबब से इन लोगों के बचन में आपस में इत्तफ़ाक़ नहीं है। कोई कुछ कहता है और कोई कुछ कहता है। और दूसरा उसी को रद्द (खंडन) करता है और दूसरी बात बताता है। पर यह सब के सब भूल और भ्रम में पड़े हुए हैं और अक़्ल से अनुमान करके बातें बनाते हैं। सुरत यानी रूह की आँख से तो इन्होंने कुछ देखा नहीं, और संत सतगुरु जो हाल फ़रमाते हैं, वह देखे हुए कहते हैं, और

उनका बचन एक ही है और हमेशा क़ायम है, कोई उसको काट नहीं सकता और न उसमें कमी-बेशी कर सकता है ॥

२४—इस वास्ते सब जीवों को चाहिए कि संत-बचन को मानें और मुवाफ़िक़ उनके हुक्म के, भक्ति करके और जो युक्ति वे बताते हैं, उसकी प्रेम के साथ कमाई करके, जो रास्ता कि उन्होंने बताया है, उसी रास्ते से होकर, पहले सत्तलोक में पहुँच कर दर्शन सत्तपुरुष का करें और वहाँ से सत्तपुरुष की मदद लेकर राधास्वामी पद में जो कुल मालिक और सब का निज भंडार है, पहुँचें ॥

२५—बाज़े आदमी कहते हैं कि देहधारी, मालिक का स्वरूप कैसे हो सकता है, वह तो बे-हद् और अनन्त और अपार है और देहदारी का स्वरूप हद्दार है। यह बात भी निहायत नादानी यानी अनजानताई की है, क्योंकि सब कहते हैं कि मालिक सर्व-व्यापक है यानी सब जगह है। तो जो वह सब जगह है तो आदमी में भी ज़रूर मौजूद है, पर किसी को नज़र नहीं आता। जो कोई संतों की युक्ति की क़माई करके अपने अंतर में मथन करेगा उसको मालिक का रूप ज़रूर नज़र आना चाहिए, क्योंकि वह आवरणों यानी पर्दों से ढका हुआ है। जब अभ्यास करके सब आवरण दूर किये जावें, तब उस मालिक का जलवा और जमाल नज़र आना चाहिए। फिर किसी को इस भेद की ख़बर नहीं है। इस सबब से वे अपनी तुच्छ बुद्धि से, जो निहायत अनजान है, ऐसी उलटी समझ निकालते हैं ॥

२६—उस अपार और अनन्त रूप मालिक का हर जगह और देहधारी स्वरूप में मौजूद होना, इस दृष्टांत से साफ़ तौर पर समझ में आ सकता है। जैसे कि हवा या आकाश हर घर में मौजूद है और उस घर की लम्बाई और चौड़ाई के मुवाफ़िक़ हद्दार मालूम होता है, पर वह कभी हिस्से और टुकड़े नहीं हुआ, बाहर के मंडल से जो निहायत वसीअ है, हमेशा मिला हुआ है और दर्जे-ब-दर्जे ऊँचे की तरफ़ लतीफ़ और सूक्ष्म होता चला गया है। और यह हाल उस मकान के दर्जे या खनों से जो पाँच या सात होवें, मालूम हो सकता है। सब से ऊपर के दर्जे की हवा या आकाश निहायत सूक्ष्म और साफ़ होता है और हर दर्जे की हवा और आकाश बाहर के मंडल के उसी दर्जे या तह से मिले हुए हैं, फिर जो युक्ति के साथ नीचे के दर्जे या खन की हवा मथन करके ऊपर चढ़ाई जावे तो वह बिल्कुल साफ़ और निर्मल और सूक्ष्म होकर अपने मंडल के साथ मिल जावेगी, और वहाँ पर, न वह मकान के अन्दर में कही जा सकती है और न बाहर। और कोई हद उसकी नहीं है यानी अन्दर और बाहर एक ही है और मुवाफ़िक़ अपने मंडल के अपार और बे-हद है। इसी तरह मालिक सब जगह और सब देहों में बग़ैर टुकड़े और हिस्से होने के मौजूद है। और जितने दर्जे कि उस चैतन्य में कहे जा सकते हैं, वे ब-सबब माया की मिलौनी के हुए हैं और माया भी किसी मक़ाम पर पैदा हुई है। निर्मल चैतन्य देश में, जो संतों

के सच्चे मालिक का देश है, उस माया का नाम और निशान भी नहीं है। यह, सब दर्जे, देह धारी के स्वरूप में सूक्ष्म रीति से मौजूद हैं और हर एक दर्जे का चैतन्य उसी दर्जे के बाहर के चैतन्य मंडल से मिला हुआ है। जो सुरत-चैतन्य कि उस निर्मल चैतन्य से धार रूप होकर पिंड में उतर कर ठहरी है, उस निर्मल चैतन्य देश के बासी और भेदी संत सतगुरु से मिल कर, और रास्ते का भेद और जुगत उसी धार पर सवार होकर लौटने की दरियाफ़्त कर के, अभ्यास करे, यानी अपने घट को मथ कर आवरण दूर करती जावे, अथवा उनको छेद कर ऊपर को चढ़ती जावे, तो वह सुरत एक दिन निर्मल चैतन्य देश में पहुँच कर उस अपार और अनंत रूप से मिल कर एक हो जावेगी, और देह की हद किसी तरह से उसके अपार और अनंत रूप में हारिज और मानै नहीं होगी। जैसे कि मकान में ऊँचे दर्जे या खन की हवा का मेल उस मंडल के साथ होने में मकान की रोकने वाली हद्द कोई रोक नहीं कर सकती है, ऐसे ही जिस अभ्यासी सुरत का रास्ता, नीचे से ऊपर तक घट में इस तौर से खुल गया, वही सुरत उस अरूपी, अनन्त और अपार रूप से मिल कर एक हो गई, पर बाहरमुख दृष्टि वालों को हद्ददार और देह स्वरूप ही दिखलाई देती रहेगी। पर जो भेदी और अभ्यासी हैं, वे उसके अपार और अनन्त रूप की पहिचान करके उसके साथ मालिक के मुवाफ़िक़ प्रेमपूर्वक बर्ताव करेंगे ॥

२७—मालिक हर एक के घट में ऐसे गुप्त है जैसे फूल में खुशबू, और दूध में घी, पर जब तक कि मथन नहीं किया जावेगा, फूल में से इत्र और दूध में से घी नहीं निकलेगा। सो मथन की तरकीब और घट के भेद की किसी को खबर नहीं है और जो उनको जताया जाता है तो दुनिया और उसके सामान और मन और इन्द्रियों के भोगों की आसक्ती के सबब से नहीं मानते हैं, और हँसी और ठठोली या और वाद-विवाद करके सच्ची बात को उड़ा देते हैं, और अपनी अभाग्यता को दूर नहीं कराना चाहते, बल्कि और उसी को बढ़ाते चले जाते हैं। और इस सबब से जन्म-मरण के चक्कर से नहीं बच सकते और बारम्बार देह धर कर दुख-सुख, ऊँचे-नीचे देश और योनियों में भोगते रहते हैं ॥

२८—अब समझना चाहिए कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल का धाम ऊँचे-से-ऊँचे देश में है, और वही सब का मरकज़ यानी मध्य है और आप अनन्त और अपार रूप है। वहीं से आदि में धार प्रकट हुई और नीचे की तरफ़ ठेके २ पर ठहरती हुई और रचना करती हुई चली आई। जो कोई उस धार का भेद जैसा कि संत सतगुरु ने फ़रमाया है, लेकर और उसी धार को पकड़ कर ठेके २ यानी मंज़िल २ पर होता हुआ चढ़ कर चलेगा, वही एक दिन उस निज धाम में पहुँच कर अजर-अमर हो जावेगा, और परम आनन्द को प्राप्त होगा ॥

२६—यह सच है कि वह धाम और वह अरुप, चैतन्य और प्रेम का भंडार किसी की सेवा का मुहताज नहीं है। पर जो जीव उस कुल मालिक की दया और दात का विचार करेगा, उसके मन में ज़रूर अभिलाषा दर्शन और सेवा करने की पैदा होगी और प्रेम और भाव उस मालिक के चरणों में जागेगा। फिर उस प्रेम और भाव के प्रकट करने और उस सेवा की अभिलाषा पूरी करने के वास्ते, उस अरूप मालिक का स्वरूपवान रूप संत सतगुरु रूप धारकर, जगत में प्रकट हुआ, और अपने सच्चे प्रेमी और भक्तों की अभिलाषा देह रूप धर कर पूरी करी। और अपनी मेहर और दया दिन २ उन पर ज़्यादा से ज़्यादा करके और भेद अपने निज धाम और उसके रास्ते का देकर और उस आदि धार की डोरी पकड़ के, और चलने की जुगत का अभ्यास कराके, उनको अपने संग, निज घर में पहुँचा कर परम आनन्द को प्राप्त कर दिया॥

३०—सिवाय उस जुगत के जो कि ऊपर लिखी गई और कोई तरकीब या रास्ता निज धाम में पहुँचने का नहीं है, क्योंकि वह सच्चा मालिक आप प्रेम का भंडार है और जीव यानी सुरत भी प्रेम स्वरूप है। पर इसका प्रेम उल्टा होकर संसार और उसके भोगों की चाह में लग गया, जिसको मोह और माया का जाल कहते हैं। इस वास्ते जब तक कि प्रेम अंग लेकर जीव, उस आदि धार को जो कि प्रेम की धार है, पकड़ कर नहीं चलेगा, तब तक रास्ता तै नहीं होगा। और यह प्रेम इस देह और इस लोक में सेवा

और भाव सहित संत सतगुरु और साधगुरु और सच्चे प्रेमी सतसंगियों के संग से पैदा होगा। और सुरत-शब्द योग की कमाई से, जिसको प्रेम-योग कहना चाहिए, वह प्रेम दिन-दिन बढ़ता जावेगा, और एक दिन निज घर में पहुँचा कर छोड़ेगा। और जिस क़दर उस तरफ़ सुरत की चाल चलती जावेगी, दुनिया और उसके सामान का मोह आप ही दिन-दिन कम होता जावेगा। जो कोई बड़भागी जीव हैं, वे इस बचन को मानेंगे और उससे पूरा-पूरा फ़ायदा उठावेंगे, यानी अपना सच्चा और पूरा उद्धार संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की मेहर से करावेंगे। और जिनका भाग जागनहार नहीं है, वे इस बचन को नहीं मानेंगे और इस वास्ते माया-और काल की रचना में पड़े रहेंगे, और देह और संसार के दुख सुख और बारम्बार जन्म-मरण की तकलीफ़ सहते रहेंगे॥

बचन पैंतीसवाँ

वर्णन हाल सच्चे परमार्थी जीवों का, और दर्जे उनकी प्रीति और प्रतीत के, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल और सच्चे गुरु के चरणों में, और यह कि कैसे यह प्रीति और प्रतीत दिन-दिन बढ़ती जावे

१—सच्चा परमार्थी वह है कि जिसके मन में सच्चे मालिक से मिलने और अपने जीव का सच्चा और पूरा कल्याण करने की चाह ज़बर है, और संसार के पदार्थ और

भोगों की चाहें थोड़ी और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ हैं और फिर उनमें भी उसके मन का बंधन बहुत कम है, और धन, संतान और कुटुम्ब परिवार में भी बहुत आसक्ति और गिरफ़्तारी नहीं है ॥

२—ऐसे परमार्थी जीवों के मन में थोड़ी-बहुत तड़प और बेकली लगी रहती है कि कैसे और कब सच्चे मालिक का दीदार मिलेगा, और जो उसका भेद और रास्ता बताने वाले हैं यानी संत सतगुरु अथवा साधगुरु कैसे जल्दी से मिलें कि रास्ता चलने का काम जल्दी से जारी हो जावे।

३—ऐसे परमार्थी जीवों को जो कोई सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा सुनावे और उनके धाम का भेद और उनके मिलने की जुगत लखावे, तो वे निहायत अहसानमंद और मगन हो जाते हैं और उसका संग ज़्यादा से ज़्यादा करना चाहते हैं, और जो जुगत वास्ते हासिल होने इस मतलब के बताई जावे, उसको बहुत शौक़ के साथ करने को तैयार होते हैं ॥

४—ऐसे सच्चे परमार्थियों को जो भेद और हाल रास्ते का और महिमा सच्चे मालिक की सुनाई जावे, उसको दिल और जान से सुनते हैं, और उसमें कोई तर्क बेजा नहीं उठाते, और न सच्चे मालिक की मौजूदगी में कोई शक लाते हैं, बल्कि रचना और क़ुदरत का कारख़ाना देख कर उनके मन में पहले ही यक़ीन होता है कि ज़रूर इस रचना का कोई सच्चा करतार है, और वह सर्व-समर्थ

और सर्व-ज्ञानी है और अपनी शक्ति के साथ सब जगह मौजूद है ॥

५—ऐसे सच्चे मालिक का भेद और उसके दर्शनों की प्राप्ति की जुगत सुन कर निहायत ख़ुशी उनके दिल में पैदा होती है और हर तरह से उसके मिलने के वास्ते तन, मन, धन लगाने को अपनी बड़भागता समझते हैं ॥

६—ऐसे जीव, जिस वक़्त कि अपने घट में अभ्यास (मुवाफ़िक़ उस युक्ति के जो कि संत सतगुरु बतावें) शुरू करते हैं, तो उनको जल्द परचा भी मिलता है, यानी उनका मन शब्द की धुन सुन कर और स्वरूप का ध्यान करके फ़ौरन थोड़ा-बहुत निश्चल हो जाता है और आनन्द पाता है और दिन-दिन उनका शौक़ बढ़ता जाता है ॥

७—ऐसे अभ्यासी जीव सतगुरु के संग में, उनके दर्शन और बचन के रस में रसीले और मगन होते जाते हैं और अंतर अभ्यास में भजन और ध्यान का रस और आनन्द लेते हैं और दिन-दिन उनके मन में प्रीति और प्रतीति सच्चे मालिक और गुरु के चरणों में बढ़ती जाती है, और उमंग और प्रेम के साथ तन, मन, धन से अंतर और बाहर सेवा करते हैं और जगत का भय और भाव और लज्जा छोड़कर और भ्रम और संशय को दूर हटा कर भक्ति की चाल और रीति में बे-खटके बर्ताव करते हैं। बल्कि अपने प्रेम की उमंग में नई-नई रीति आप निकालते हैं और दुनियादारों की निंदा और स्तुति का ख़्याल नहीं करते, क्योंकि ये उन लोगों को परमार्थ के हाल

और चाल से बिल्कुल बे-ख़बर और नादान देखते हैं। ये जीव उत्तम परमार्थी कहलाते हैं ॥

८—जो जीव कि मध्यम परमार्थी हैं, उनके मन में अपने जीव के कल्याण की चाह भी मज़बूत होती है, पर संसार की सम्हाल और दुनियादारों के नाराज़ न करने का ख़्याल भी बराबर रहता है, और धन, सन्तान और जगत के पदार्थों में भाव और आसक्ति, ब-निस्बत उत्तम परमार्थियों के, ज़्यादा होती है। ये लोग ऐसा चाहते हैं कि परमार्थ सहज-सहज हासिल होता जावे और दुनिया का भी नुक़सान किसी तरह या उसमें बदनामी भी न होवे। पर सच्चे प्रेमियों की हालत और चाल सतसंग में देख कर थोड़ी-बहुत उनके साथ मुवाफ़िक़त करके उसकी पैरवी जिस क़दर बन सके, करते हैं और आहिस्ता आहिस्ता उनको भी थोड़ा-बहुत भजन और ध्यान का रस अभ्यास के समय अंतर में मिलता जाता है, और कभी कभी मालिक की दया का परचा भी देखते हैं। इस तरह सच्चे प्रेमियों की मदद और संत सतगुरु की दया से उनकी भी प्रीति और प्रतीति सच्चे मालिक और गुरु के चरणों में आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ती और पकती जाती है। ये जीव भक्ति और प्रेम की रीति में, जैसा चाहिए जल्दी बरताव नहीं कर सकते, पर आहिस्ता-आहिस्ता थोड़ा-थोड़ा सच्चे प्रेमियों के साथ उनका भी बरताव उसी मुवाफ़िक़ हो जाता है ॥

९—मध्यम परमार्थी जीवों के मन में जल्दी प्रतीति

सच्चे मालिक और सच्चे परमार्थ की, जैसा कि चाहिये, नहीं आती है। और सबब उसका यह है कि इनका झुकाव संसार और उसके परमार्थी और स्वार्थी व्यवहार की चाल-ढाल की तरफ़ ज़्यादा रहता है और पूरी खोज और तहक़ीक़ात परमार्थ की करने में ये लोग किसी क़दर ढीले रहते हैं और उनकी तवज्जह दुनिया के कामों में ज़्यादा बँटी हुई रहती है। पर, परमार्थ की भी ज़रूरत का इनके मन में थोड़ा-बहुत यक़ीन रहता है और उसके हासिल करने में थोड़ी-बहुत कोशिश जारी रखते हैं ॥

१०—तीसरे दर्जे के जीव निकृष्ठ परमार्थी कहलाते हैं। इनके मन में दुनिया और उसके भोगों की चाह ज़बर रहती है और परमार्थ में कहने-सुनने और कुछ देखा-देखी और दबाव के सबब से शामिल होते हैं। सच्चे मालिक की महिमा और सच्चे परमार्थ की बड़ाई, जैसी कि चाहिये, इनके मन में नहीं समाती है, पर दूसरों के आसरे यानी सच्चे परमार्थियों की चाल-ढाल देख कर और उनके बचन सुन कर ये भी थोड़ा-बहुत उनके मुवाफ़िक़ बरताव करने लगते हैं, लेकिन जब कुछ निंदा या बुराई की बात सुनें, तब फ़ौरन परमार्थ के छोड़ने को तैयार होते हैं और दुनियादारों के डर से परमार्थ की महिमा और ज़रूरत का ख़्याल उनके मन में फ़ौरन जाता रहता है ॥

११—ऐसे जीवों को सच्ची प्रीति और प्रतीति सच्चे

मालिक और गुरु के चरणों में नहीं आती है, पर जब तक उनके दुनिया के कारोबार उनके मन के मुवाफ़िक़ जारी रहें और कोई उलटे बचन सुना कर उन पर दबाव न डाले, तब तक परमार्थ में थोड़े-बहुत लगे रहते हैं। पर जब कोई दुनिया के कामों में नुकसान आया या तन्दु-रुस्ती में ख़लल पैदा हुआ या कोई मतलब उनका मुवा-फ़िक़ उनकी चाह के पूरा नहीं हुआ या उनके कुटुम्बी और बिरादरी ने ज़ोर डाला, उस वक़्त उनको सच्चे पर-मार्थ और सच्चे गुरु और मालिक के चरणों में अभाव आ जाता है और कारवाई उसकी बन्द कर देते हैं, यानी अभ्यास भी छोड़ देते हैं, और जो थोड़ा करे भी जावें, तो अभाव के सबब से उनको उसमें रस नहीं आता है और इस वास्ते आहिस्ता २ काम करते जाते हैं और प्रीति और प्रतीति में बड़ा खलल पड़ जाता है ॥

१२—ऐसी हालत में जो कोई दुनिया के बड़े आदमी का (जो सतसंग में शामिल है) सहारा मिल जावे, तो अलबत्ता इन जीवों को बहुत मदद हो जाती है और उनकी भक्ति और अभ्यास थोड़ा-बहुत जारी रहता है। इन जीवों का काम संत सतगुरु और सच्चे मालिक राधा-स्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से आहिस्ता २ बनाते जाते हैं, और किसी न किसी तरह का सहारा वक़्त २ पर देकर भक्ति में उनका निर्वाह कराते हैं। और जब कुछ अंतर में रस और आनन्द इन जीवों को मिलने लगता है, और परमार्थ के बचन सतसंग में सुन कर

समझ बढ़ती जाती है, तब ये लोग भी भक्ति में मज़बूत होते जाते हैं और आहिस्ता-आहिस्ता दर्जा उनका बढ़ता जाता है।

१३—चौथे दर्जे के जीव निपट संसारी और भोगी कहलाते हैं। इनके मन में सिवाय दुनिया के भोग-बिलास और धन और मान-बड़ाई के हासिल करने के और कोई चाह ज़बर नहीं है। ये हमेशा परमार्थ की हँसी उड़ाते हैं और परमार्थियों को नादान समझ कर उनके चाल-ढाल की निंदा करते रहते हैं। इनको मालिक का यक़ीन या ख़ौफ़ या प्यार बिल्कुल नहीं होता है, अलबत्ता अपने संसारी फ़ायदे और नामवरी के वास्ते, चाहे जिसको (जब २ ऐसा मौक़ा आन पड़े) पूजने लगते हैं और तन और धन भी ख़र्च करते हैं। पर निर्मल परमार्थी काम इन से बिलकुल नहीं बन सकता है, और न परमार्थ के उपदेश करने वालों या परमार्थ की कमाई करने वालों पर भाव और प्यार आ सकता है। इस वास्ते ये जीव सच्चे मालिक के प्रेम और भक्ति से हमेशा ख़ारिज रहते हैं। इस वास्ते सच्चे परमार्थी जीवों को चाहिये कि वे चाहे जिस दर्जे के होवें (यानी उत्तम, मध्यम या निकृष्ट), ऐसे जीवों के संग और मोहब्बत और सलाह से जिस क़दर बन सके, हमेशा अपना बचाव रक्खें, क्योंकि वे आप सच्ची भक्ति नहीं करते और दूसरों को, जो सच्ची भक्ति करते हैं, उनके काम और इष्ट से हटाने में बड़ी कोशिश करते हैं॥

१४—संत सतगुरु दया करके फ़रमाते हैं कि कुल जीवों को मुनासिब और कर्त्तव्य है कि अपने जीव के फ़ायदे के

वास्ते सच्चे परमार्थी या साधगुरु या संत सतगुरु की खोज करते रहें और जहाँ-कहीं सच्चे परमार्थ की रीति जारी होवे, यानी सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की भक्ति का उपदेश दिया जाता होवे, और भेद रास्ते का और युक्ति उस पर चलने की सुरत-शब्द अभ्यास के साथ बताई जाती होवे, वहाँ जाकर ज़रूर शामिल होवें और कोई दिन सतसंग करके महिमा, सच्चे मालिक और सच्ची भक्ति और सच्चे मार्ग और अभ्यास की, ख़ूब ग़ौर करके सुनें और समझें, और दुनिया के हाल और कारोबार को अच्छी तरह से देखें और विचार करें कि कोई चीज़ यहाँ ठहराऊ नहीं है, और यह देश सुरत यानी रूह के रहने का नहीं है, उसका निज घर माया की हद के पार है और वही निर्मल चैतन्य देश सच्चे मालिक का धाम है ॥

१५–जो ये लोग इस तरह बरताव करेंगे तो आहिस्ता आहिस्ता उनके मन में सच्चे मालिक और उसके सच्चे धाम की थोड़ी-बहुत प्रतीति और शौक़ उसके मिलने का पैदा होगा। और जिस क़दर सच्चे गुरु और सच्चे प्रेमियों का संग होता जावेगा, उसी क़दर यह प्रीति और प्रतीति बढ़ती जावेगी ॥

१६–जब यह प्रीति और प्रतीति किसी क़दर मज़बूत हो जावे, तब मुनासिब है कि मार्ग के भेद और उस पर चलने की युक्ति का उपदेश लेकर, थोड़ा-बहुत अभ्यास अंतर में शुरू करे। तब जिस क़दर मन और सुरत, स्वरूप के ध्यान और शब्द के सुनने में शौक़ के साथ लगेंगे, उसी क़दर अंतर में रस और आनन्द मिलता जावेगा और दिन-

दिन मन निश्चल और चित्त निर्मल होता जावेगा, और गुरु और मालिक के चरणों में उमंग के साथ प्रेम पैदा होता जावेगा, और चरणों में प्रतीति गहरी और मज़बूत होती जावेगी ॥

१७—अब मालूम होवे कि जिस क़दर मन में संसार के भोगों की चाह ज़बर होगी, उसी क़दर संसारी तरंगें हर वक़्त उठती रहेंगी और मन को चंचल और मलीन करती रहेंगी । फिर ऐसे मन में मालिक का भाव और प्यार नहीं ठहर सकता । इस वास्ते, कुल परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि जो वे अपने सच्चे मालिक के चरणों का नित्य आनन्द और रस लेना चाहते हैं, तो दुनिया के भोग और विलास की चाह कम करते जावें, और फ़िज़ूल कामों और भोगों में अपना बरताव घटाते जावें, तो आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन सफ़ाई हो जावेगी और चरणों का प्रेम पैदा होकर बढ़ता जावेगा ॥

१८—दुनियादार लोगों को भी मुनासिब है कि जो सतसंग, सच्चे गुरु और सच्चे परमार्थियों का न कर सकें, तो उनके साथ प्यार और भाव रक्खें और जब कभी मौक़ा होवे, तिथि-त्यौहार और कार्य-व्यवहार के दिन दर्शन और कुछ सेवा करते रहें, तो उनके जीव का भी थोड़ा-बहुत गुज़ारा और चौरासी के चक्कर से बचाव हो जावेगा ॥

१९—जो कोई चरणों में प्रीति और प्रतीति पैदा करना, और फिर उनको बढ़ाना चाहे तो उसके वास्ते मुख्य उपाय ये हैं :—

(१) सतसंग में शामिल होकर बचन, चित्त से सुनना और ग़ौर के साथ समझना ॥

(२) राधास्वामी दयाल की सर्व-समर्थता और दयालुता के बचन सुनकर यक़ीन करना और यह कि सिवाय सुरत-शब्द मार्ग के दूसरा सीधा और आसान और पूरा रास्ता सच्चे और पूरे उद्धार के हासिल करने के लिए नहीं है ॥

(३) सुरत-शब्द मार्ग की ऐसी महिमा समझ कर उसके अभ्यास की युक्ति दरियाफ़्त करके कार्रवाई शुरू करना ।

(४) मन और इन्द्रियों को थोड़ा-बहुत रोक कर स्वरूप के ध्यान और अंतर के शब्द के श्रवण में तवज्जह के साथ अभ्यास करना ॥

(५) सच्चे प्रेमियों से प्रीति-भाव के साथ बरताव करके उनके संग से फ़ायदा उठाना और जो भक्ति की रीति में वे बरताव करें उनका संग देना यानी आप भी थोड़ा-बहुत उसके मुवाफ़िक़ बरतना ॥

(६) राधास्वामी दयाल की बानी का समझ २ कर, और उसके अर्थ को अपने ऊपर घटा कर, थोड़ा-बहुत हर रोज़ पाठ करना ॥

(७) सतसंग के वक़्त सतगुरु के दर्शन, दृष्टि जमा कर, करना और अपने मन और सुरत को ऊँचे मक़ाम पर ठहरा कर बचन सुनना और फिर उनका मनन और विचार करके जो जो बचन

अपने वास्ते मुनासिब और मुफ़ीद मालूम होवें, उनके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करना ॥

(८) तन, मन, धन से अपने प्रेम और उमंग के मुवाफ़िक़ (जो अंतर और बाहर थोड़ा-बहुत रस और आनन्द पाकर पैदा होवे) संत सतगुरु या साध गुरु और प्रेमी जन और शब्द-अभ्यासी साधुओं की सेवा करना ॥

(९) पिछले और हाल के यानी अपने वक़्त के गुरु-भक्तों की चाल को सुन कर और देख कर उसके मुवाफ़िक़ जिस क़दर मुनासिब और फ़ायदेमंद मालूम होवे, पैरवी करना ॥

(१०) अंतर में दिन-रात में कई बार थोड़ी-थोड़ी देर चित्त को चरणों में जोड़ कर चरण-रस लेना और इस अभ्यास को आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाते जाना ॥

(११) नित्त, सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल की दया और मेहर और सतगुरु की मदद और मेहरबानी का गुण गाते और शुक्राना करते रहना ॥

(१२) जगत के परमार्थ की चाल और कर्म-धर्म में जग जीवों का बरताव देख कर उसको, ब-मुक़ाबले अंतरमुख, ऊँचे और गहरे और सच्चे परमार्थ राधास्वामी मत के, ओछा और पोच समझ कर उस से बचे रहना, और अपने भागों को सराहना और किसी से हुज्जत और तकरार बे-

फ़ायदा न करना और न किसी पर तान मारना ॥

(१३) अपने मन और इन्द्रियों की चाल को निरखते चलना और फ़िज़ूल तरंगों और चाहों को हटाते रहना ॥

(१४) सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया को, अंतर और बाहर, परखते चलना और चरणों में प्रीति-प्रतीति बढ़ाते रहना ॥

(१५) अपनी ना-लायक़ी और निर्बलता की जाँच करके, सर्व-अंग करके, राधास्वामी दयाल को शरण दृढ़ करना और बे-फ़ायदा घबराहट छोड़ कर धीरज के साथ, दुरुस्ती से, अभ्यास में लगे रहना ॥

(१६) सतसंग और अभ्यास के समय दूसरे ख़यालों को जिस क़दर बन सके, मन में न आने देना और जो ऐसे ख़्याल पैदा होवें तो सुमिरन और ध्यान के बल से हटाते रहना ॥

(१७) जिस संग और सुहबत और तमाशे से मन में चंचलता और मलीनता यानी भोगों की चाह पैदा होवे, ऐसे संग और तमाशे वग़ैरा से हमेशा, जहाँ तक बन सके, बचते रहना ॥

(१८) जब कोई संशय या भ्रम या निराशता मन में ज़ाहिर होवे, उसको फ़ौरन अपने सतसंग की समझ के मुवाफ़िक़ विचार करके, या सतगुरु या

प्रेमी सतसंगी के सामने बयान करके, या बानी में से उसी क़िस्म के बचन निकाल कर, ग़ौर के साथ पाठ करके, जिस क़दर जल्दी बन सके, उसको दूर करना कि जिससे प्रीति और प्रतीति और अभ्यास में विघ्न न पड़े ॥

(१६) किसी सतसंगी की चाल-ढाल ना-मुनासिब देख कर, या सतसंग की कोई रीति अपनी समझ के मुवाफ़िक़ फ़िज़ूल जान कर सतगुरु और सतसंग में अभाव न लाना, क्योंकि सतसंग बेड़ा है और इसमें हर क़िस्म के जीव शुद्ध और मैले शामिल होवेंगे, और जो सच्चे होकर लगेंगे, उनकी चाल आहिस्ता-आहिस्ता बदलती जावेगी ॥

(२०) परमार्थी को अपने काम बनाने का मतलब नज़र में रखना चाहिए, और औरों के काम में दख़ल देना अपना अकाज करना है ॥

(२१) जिन सतसंगियों पर अपना भाव होवे, उन से मेल करना मुनासिब है, और जिनकी चाल अपनी तबियत के मुवाफ़िक़ न होवे, उनसे मेल करना ज़रूरी नहीं है। और किसी से ईर्षा या विरोध चित्त में नहीं लाना चाहिए और न किसी पर तान का बचन लगाना चाहिए, क्योंकि इससे अपने प्रेम और भक्ति में बे-फ़ायदा विघ्न होता है, और ऐसे शख़्स अकसर सतसंग और अभ्यास से दूर पड़ जाते हैं ॥

(२२) जहाँ तक बन सके, और जहाँ अपना किसी तरह का ताल्लुक़ न होवे, वहाँ किसी का ऐब या बुराई देख कर उसका दूसरे से ज़िक्र करना या अपने मन में उसका ख़्याल रखना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसी कार्रवाई से उस ऐब या बुराई का असर और नुक़सान ऐब देखने वाले के मन में पैदा होगा, और इसमें बे-मतलब उसका अकाज होता है ॥

(२३) शील और क्षमा को, जहाँ तक बन सके, हर जगह और हमेशा काम में लाना चाहिए, यानी सख़्ती और तकलीफ़ और कड़वे बचन और ताना की बरदाश्त करनी चाहिए, और जल्दी भड़क कर झगड़ा और बखेड़ा पैदा करने और बढ़ाने की आदत छोड़नी चाहिए। यह आदत संसारियों की है कि अपना अहंकार और मान बड़ाई का ख़्याल करके जल्दी लड़ने को तैयार हो जाते हैं, पर परमार्थी को दीनता और ग़रीबी के साथ बरताव करना चाहिए। जो और कोई जगह इसका ख़्याल कम रहे, तो सतसंग में इस बात का जरूर लिहाज़ रखना चाहिए कि किसी सतसंगी से झगड़ा और बखेड़ा पैदा न होवे ॥

(२४) संत सतगुरु से रूठना या नाराज़ नहीं होना चाहिए। इस में प्रेम-अंग को बड़ा झकोला

लगता है। जो वे कभी बचन ताड़ना या समझौती का कहें, उसको चित्त देकर सुनना और उसके मुवाफ़िक़, जहाँ तक बन सके, कार्रवाई करनी चाहिए ॥

(२५) जो कोई सतसंगी किसी दूसरे सतसंगी की बुराई या निन्दा करे, तो उसको नहीं सुनना चाहिए, और उसको समझाना चाहिए कि यह आदत निहायत नाक़िस है, बल्कि संसारियों में भी यह आदत बहुत बुरी समझी जाती है। क्योंकि जो कोई एक की बुराई और निंदा करता है, वह इसी तरह सब की बुराई और निंदा करता फिरेगा और अपना भारी अकाज करता है कि उसके मन में सच्चे मालिक और गुरु का प्रेम कभी नहीं ठहरेगा और ऐसा शख़्स दूसरे के प्रेम और भक्ति को भी गदला करता है। परमार्थी को मुनासिब है कि हमेशा सब के गुण देखता रहे और औगुण दृष्टि न लावे, और जो किसी सतसंगी में कोई औगुण नज़र पड़े, तो उसको एकान्त में प्यार से समझा देवे, और जो वह उस औगुण को न छोड़े तो सतगुरु को इत्तला करे। वे जैसा मुनासिब समझेंगे, कार्रवाई करेंगे। पर इसको चाहिए कि फिर उसका ख़्याल अपने मन में न रक्खे ॥

मत देख पराये औगुण ।
क्यों पाप बढ़ावे दिन दिन ॥
मक्खी सम मत कर भिन भिन ।
नहिं खावे चोट तू छिन छिन ॥
देखा कर सब के तू गुण ।
सुख मिले बहुत तोहि पुन पुन ॥

२०—यह सब बातें जो ऊपर लिखी गईं, प्रेम के जगाने वाली और बढ़ाने वाली हैं, और हर एक परमार्थी को मुनासिब है कि जहाँ तक बन सके, उनके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करे । राधास्वामी बड़े दयालु हैं, भूल-चूक हमेशा माफ़ करते हैं । पर जीव को चाहिए कि अपनी हालत और भूल-चूक को निहारता चले और जब-जब कोई कसर पड़े, तब-तब अपने मन में पछतावे और शरमावे और माफ़ी माँगे ॥

२१—जो लोग कि भजन और ध्यान में रस न मिलने की शिकायत करते हैं, उनको चाहिए कि अपने मन और इन्द्रियों की हालत की परख करते रहें, और जो कसर अभ्यास में उनकी तरफ़ से मालूम पड़े, उसके दूर करने में राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर कोशिश करते रहें । जिस क़दर सफ़ाई मन और इन्द्रियों की होगी, और जिस क़दर प्रेम या उमंग या विरह-अंग लेकर वे अभ्यास में लगेंगे, उसी क़दर रस मिलता जावेगा । बे-फ़ायदा घबराहट और जल्दी करना मुनासिब नहीं है । यह काम आहिस्ता-आहिस्ता करने का है, और आहिस्ता-

आहिस्ता सफ़ाई होगी और अंतर में रस और आनन्द मिलता जावेगा ।

बचन छत्तीसवाँ

धर्म और कर्म का बयान

१—धर्म का मतलब उन क़ायदों और दस्तूरों से है कि जिनके मुवाफ़िक़ हर एक आदमी को कर्म और करतूत परमार्थ की करना चाहिए और अपने चाल-चलन और बर्ताव को दुरुस्ती से सम्हालना चाहिए ॥

२—कर्म का मतलब उस करतूत से है कि जो मन और इन्द्रियों से ज़ाहिर में बने, चाहे वह परमार्थी होवे या संसारी, और शुभ होवे या अशुभ ॥

३—यह परमार्थी धर्म और कर्म का ज़िक्र किया जाता है ॥

४—जो कोई सच्चा परमार्थी है और सच्चा परमार्थ कमाना चाहता है, उसको मुनासिब है कि सच्चे धर्म और कर्म के मुवाफ़िक़ अपना बर्ताव करे ॥

५—सच्चा धर्म यह है कि अपने सच्चे मालिक और माता-पिता का भेद और पता दरयाफ़्त करके, उसकी भक्ति करे, यानी सच्चे और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीति करे, और उनके धाम में पहुँचने और उनके दर्शन करने की युक्ति संत सतगुरु से

हासिल करके, नित्त उसका अभ्यास करे और अपने अभ्यास का फल देखता जावे कि उसके मन और सुरत आहिस्ता-आहिस्ता पिंड देश से थोड़े-बहुत न्यारे होकर ऊँचे की तरफ़, यानी अपने सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम की तरफ़, घट में, चढ़ते और चलते जाते हैं ॥

६—सच्चा कर्म यह है कि जिस करतूत से मन और सुरत की अलेहद्गी पिंड देश से, और चढ़ाई पिंड और ब्रह्मांड के पार, संतों के देश की तरफ़ आसान होती जावे, और जिससे दिन-दिन इस काम में मदद मिलती जावे ॥

७—और वह सच्चा कर्म यह है कि :—

(१) नित्त, संत सतगुरु या साध गुरु या प्रेमी अभ्यासी जन का या संत सतगुरु की बानी और बचन का, चित और तवज्जह और शौक के साथ, सतसँग किया जावे ॥ और

(२) तन, मन और धन से, जिस क़द्र अपनी ताक़त के मवाफ़िक़ बन सके, संत सतगुरु या साध गुरु या प्रेमी जन की सेवा, उमंग और भाव के साथ, की जावे ॥ और

(३) सच्चे नाम का मन से सुमिरन और सच्चे नामी के स्वरूप का प्रेम और भाव के साथ, जिस रीति से कि संत सतगुरु बतावें, अपने घट में ध्यान किया जावे ॥ और

(४) सच्चे भूखे और प्यासे और नंगे को, बग़ैर ख़याल ज़ात और क़ौम और किसी वास्ते के, अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़, जिस क़द्र बन सके, अपने सच्चे मालिक और सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के नाम पर अन्न-दान और जल-दान और वस्त्र-दान दिया जावे और उसमें अपनी नामवरी का ख़्याल बिल्कुल न होवे, और न मँगता से किसी क़िस्म की सेवा या ख़िदमत की, उसके एवज़ में, चाह और आस रक्खी जावे ॥

८—इस तरह पर सच्चे परमार्थी को अपना धर्म और कर्म सम्हालना चाहिये और व्यवहार में दया-भाव और सचौटी के संग, जिस क़द्र मुमकिन और मुनासिब होवे, जीवों के साथ बर्ताव करना चाहिये, और अपना चाल-चलन भी इसी तौर पर दुरुस्त करना चाहिये कि मन से और बचन से और काया यानी कर्म से, जहाँ तक हो सके, अपने निज मतलब के वास्ते या मनोरँजन के लिए, किसी जीवधारी को दुख और क्लेश न पहुँचे बल्कि जहाँ तक मुमकिन होवे, सुख और ख़ुशी पहुँचावे और जो ऐसा न कर सके तो दुख भी न पहुँचावे ॥

९—जो तफ़सील कर्म की ऊपर लिखी गई है, इसी को सँतमत के मुवाफ़िक़ शुभ कर्म समझना चाहिए और जो करनी इसके बर-ख़िलाफ़ है, यानी सच्चे मालिक की खोज और उसकी भक्ति न करना, और उसके दर्शनों की

चाह का न होना, और न उसके निमित्त यत्न करना, और न संत सतगुरु और प्रेमी जन की तलाश और उनका संग करना, और न सच्चे ग़रीब और मुहताज को अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़ मदद करना वग़ैरा वग़ैरा, यही अशुभ कर्म है। और इसका फल यह मिलेगा कि सच्चे मालिक से दिन २ दूर होकर जन्म-मरण के साथ चौरासी योनि और नर्कों में दुख-सुख भोगना पड़ेगा ॥

१०—और मतों में जो धर्म और कर्म वर्णन किये हैं, उनका मतलब सच्चे मालिक की प्राप्ति का नहीं है। जो धर्म या क़ायदे वहाँ मुक़र्रर किये हैं, और जो शुभ-कर्म सुख के फल की आशा करके वहाँ कराये जाते हैं, जिस किसी से वे दुरुस्ती से बन आवें तो उनका फ़ायदा यह होगा कि इस लोक में या ऊँचे-नीचे लोकों या योनियों में किसी क़दर सुख मिलेगा, पर जन्म-मरण का चक्कर दूर नहीं होगा, और न सच्चे मालिक का दर्शन और उसके धाम में विश्राम मिलेगा ॥

११—फिर जब कि धर्म और कर्म के बर्ताव में सब जगह थोड़ा या बहुत तन,मन, धन ज़रूर ख़र्च करना पड़ेगा, तो हर एक सच्चे परमार्थी को, चाहे मर्द होवे या औरत, मुनासिब और लाज़िम है कि जहाँ तक हो सके संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ अपने धर्म और कर्म की सम्हाल करें तो उसका बहुत-जल्द जन्म-मरण से छुटकारा होना मुमकिन है, नहीं तो हमेशा माया के घेर में

यानी काल देश में ऊँची-नीची योनियों में दुख-सुख सहता रहेगा ॥

१२—जो कोई संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ कार्रवाई करेगा, उसको (सिवाय इसके कि एक दिन उसको सच्ची मुक्ति प्राप्त होगी और अजर-अमर देश में आप अमर होकर सदा परम आनन्द को प्राप्त होगा) एक बड़ा फ़ायदा यह हासिल होगा कि दिन दिन उसको थोड़ा-बहुत रस और आनन्द सतसंग और अभ्यास का मिलता जावेगा, और सच्चे मालिक की दया उस पर दिन २ बढ़ती जावेगी और उसके साथ रस और आनन्द भी बढ़ता जावेगा, और संतों के मत के मुवाफ़िक़ धर्म और कर्म यानी भक्ति और प्रेम और अभ्यास और अंतर और बाहर सेवा करने की ताक़त भी बढ़ती जावेगी, और एक दिन सच्चा उद्धार और जन्म-मरण से हमेशा को बचाव हो जावेगा ॥

बचन सैंतीसवाँ

मन और इच्छा का बयान

१—पिंडी-मन और इच्छा, ब्रह्मांडी-मन और माया की (जिनको ब्रह्म और माया और शिव-शक्ति कहते हैं) अंश हैं। इनका असली रुख़ बाहर और नीचे की तरफ़ है और जिस मसाले के ये बने हुए हैं, वह भी तीसरे दर्जे यानी

ब्रह्मांड के नीचे के आकाश का मसाला है। यह मसाला भी ब्रह्मांड के मसाले की निस्बत बहुत स्थूल है, यानी स्थूल माया की मिलोनी उसमें ज़्यादा है और उसके मुख का भी नीचे और बाहर की तरफ़ झुकाव ज़्यादा है, यानी माया के पदार्थों के साथ उसका मेल है और उन्हीं से ये पिंडी मन और उसके औज़ार—इन्द्रियाँ और देह—अपना अहार और ताक़त लेते हैं ॥

२—जब कि इस मन का यह हाल है, तब ज़ाहिर है कि इसका असली झुकाव इन्द्रियों के वसीले से भोगों की तरफ़ बहुत है, पर उसमें चैतन्य-शक्ति, जिससे वह काम ले रहा है, सुरत की धार की है ॥

३—पहले, इस मन से इच्छा उठती है यानी एक क़िस्म की हिलोर पैदा होती है, और जिस क़िस्म की वह इच्छा है यानी जिस इन्द्रिय की भोग की चाह है, उसी इन्द्रिय की तरफ़ पहले मन में हिलोर उठ कर और फिर धार पैदा होकर रवाँ होती है। और जो भोग का पदार्थ सन्मुख है तो उसका वह इन्द्रिय भोग करती है, और जो भोग का पदार्थ मौजूद नहीं है, तो उसकी प्राप्ति के लिए जो यत्न दरकार है, उस यत्न में कारज करने वाली इन्द्रिय के द्वारे लग जाती है।

४—सुरत की शक्ति की धार सिर्फ़ मन तक आती है, और उस चैतन्य को, जो मन-आकाश में है, मदद और ताक़त देती है। फिर वहाँ से मन-आकाश के चैतन्य की धार पैदा होकर इन्द्रिय द्वार पर आती है, और इन्द्रिय

द्वार से जो इस आकाश के चैतन्य की धार है, उससे मिल कर, भोगों और पदार्थों से बाहर जाती है। और इसी तरह मन-आकाश से, मुवाफ़िक़ इच्छा या चाह के, धार पैदा होकर पिंड में इन्द्रिय द्वार और नीचे की तरफ़ जाती है, और अंग-अंग को ताक़त देती है ॥

५—अब समझना चाहिए कि जब कि मनाकाश से धार, मुवाफ़िक़ इच्छा के, पैदा होकर रवाँ होती है, तो पहले सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि अपनी इच्छा की सम्हाल करे, और यह सम्हाल बिना संत सतगुरु या साधगुरु या सच्चे प्रेमीजन के संग और उपदेश के, नहीं हो सकती है ॥

६—संग से मतलब यह है कि संत सतगुरु और साध या प्रेमी जन की रहनी देख कर और उनके संग रह कर उनकी सी रहनी रहना शुरू करे, यानी उनकी चाल के मुवाफ़िक़ यह परमार्थी भी अपनी चाल को बदल कर चलना इख़्तियार करे, तब कोई दिन में, असर उनके उपदेश और बचन और रहनी का, इसके दिल में पैदा होगा, और तब इसका मन, उन की चाल के साथ, ख़ुशी से मुवाफ़िक़त करना शुरू करेगा ॥

७—मालूम होवे कि इच्छा के पैदा होने के तीन सबब हैं। एक, संग, दूसरा, तमाशा और नज़ारा यानी सैर और देखा-भाली, और तीसरा, ज़रूरत और एहतियात ॥

८—अब इन तीनों अस्बाब का मुफ़स्सिल बयान किया जाता है—

(१) पहिला, संग—यह ज़ाहिर है कि जैसा जिस को संग मिलेगा, यानी जिस क़िस्म के आदमियों के साथ उसका मेल या रहना होगा, उसी क़िस्म की बोल-चाल और चाल-ढाल और आदत और स्वभाव और मन की चाहें होवेंगी, यानी जिस बात या चीज़ को वे लोग पसन्द करते होंगे या जो काम वे करते होंगे और जो रीति, रहनी और खाने-पीने और पहिनने-ओढ़ने की जारी होगी, तो संग करने वाले की भी वैसी ही आदत और चाह और पसन्द होगी, और उसी सामान की ख़्वाहिशें उसके मन में भरी रहेंगी, और उनके पूरा करने के लिए जो जो यत्न वे लोग करते होंगे, वह भी करेगा ।।

(२) दूसरा, सैर और देखा--भाली-इस से यह मतलब है कि जिस गाँव या क़स्बे या शहर या देश में वह रहता है, या जहाँ-जहाँ सैर या तमाशे को जाता है, और जो-जो कारख़ाना और सामान, और लोगों की रहनी और समझ-बूझ और चाहें और करतूत वह आँख से देखता है, और जिस-जिस काम और चीज़ की तारीफ़ और बड़ाई सुनता और देखता है, उन्हीं काम और चीज़ों की बड़ाई उसके मन में समाती जाती है, और उसी सामान और

असबाब के हासिल करने की चाह पैदा होती है और उसकी प्राप्ति के लिए जैसी-जैसी करतूत लोगों को करते देखता है, उसी काम के करने की ख़्वाहिश बढ़ती जाती है ।

(३) तीसरे, ज़रूरत और एहतियाज—इस से यह मतलब है कि जिन-जिन चीज़ों या सामान को, जैसे खाने और पीने और पहिरने और ओढ़ने की, या और रोज़-मर्रा में बरताव और गुज़ारे के लिए दुनिया में, मुवाफ़िक़ हैसियत और रहनी अपने मेल वालों के, ज़रूरत इसको होवेगी, उन चीज़ों और सामान की चाह मन में ज़रूर उठेगी और उनके हासिल करने के वास्ते जो जो यत्न या करनी आम तौर पर लोगों को करते देखेगा, उसी मुवाफ़िक़ आप भी, चाह उठा कर मेहनत और यत्न करेगा ॥

९—इन ऊपर के लिखे हुए तीनों अस्बाब से जो चाह और हालत मन में पैदा होती है, वह इन क़िस्मों में से होगी :—

(१) स्त्री और पुत्र और धन की चाह और मुहब्बत ॥

(२) मान-बड़ाई और हुकूमत की चाह और उस में बंधन ॥

(३) अहंकार अपनी ज़ात-पाँत और ख़ानदानी बुज़ुर्गी और धन और हुकूमत और बड़ाई का ॥

(४) तन, मन और इन्द्रियों के भोग-बिलास और ऐश

और आराम की ख़्वाहिश और उसके प्राप्ति के लिए फ़िक्र और मेहनत ॥

१०—जो कोई समझदार और विचारवान आदमी है, वह दुनिया के कारोबार और जीवों की मौत, और भोगों और पदार्थों की नाशमानता, और लोगों की ख़ुद-मतलबी के साथ मुहब्बत, और दुक्ख और दर्द में धन और मान-बड़ाई और हुकूमत और कुटुम्ब-परिवार से कुछ मदद और सहारे के न मिलने का हाल देख कर, ज़रूर अपने मन में ख़्याल करेगा कि जिस क़दर लोग, मेहनत और यत्न वास्ते पूरा करने और अनेक चाहों के, जो मन में भरी हुई हैं, करते हैं, वे सब, कुछ तो बिलकुल फ़िज़ूल हैं और कुछ ज़रूरी हैं, मगर सच्चे और पूरे सुख का फ़ायदा इनमें बहुत कम है। और जब दुख या दर्द पैदा होवे या मौत आ जावे तो उसका फल एक छिन में जाता रहता है, या कुछ अपने मुफ़ीद्-ए-मतलब नहीं होता है। और किसी-किसी दुक्ख का, जैसे भारी रोग और शौक का कोई यत्न और इलाज नहीं है कि जिससे वे दूर हो जावें। और ऐसी हालत में, चाहे सब तरह के समान सुख के हासिल भी हों, वे सब के सब फीके और बेकार हो जाते हैं ॥

११—फिर ऐसे विचारवान के दिल में ज़रूर तलाश इस बात की पैदा होगी कि यह जीव कहाँ से आता है और कहाँ जाता है ? और वहाँ दुख पाता है या सुख ? और दुख के हटाने और सुख की प्राप्ति के वास्ते कौन यत्न

मुनासिब है ? और किस तरह इस दुनिया में बर्ताव या गुज़ारा करना चाहिए कि जिससे दुख कम होवे और सुख ज़्यादा मिले, और आइन्दा को, बाद छोड़ने इस देह के भी सुख मिले, और दुख न होवे ? और यहाँ की ज़िन्दगी में जो मेहनत और मशक़्क़त करनी पड़ती है और अनेक तरह की फ़िक्र और चिन्ता घेरे रहती है, उस से थोड़ा-बहुत बचाव किस तरह से होवे ? और ऐसी कौन सी तद्-बीर है कि जिस से मौत का दुख कम व्यापे या बिल्कुल न व्यापे ?

१२—ऐसे सोच-विचार की हालत में, जिस जीव को भाग से संतों का या उनके प्रेमियों का संग मिल जावे, तो उनके बचन, चित्त से सुन कर, सब संदेह और भ्रम इसके आहिस्ता-आहिस्ता दूर हो जावें, और अपने सच्चे मालिक और निज घर का पता और भेद और युक्ति उसके प्राप्ति की मिल जावे, और दुक्खों से बचने और परम आनन्द के हासिल करने का भी यत्न इसकी समझ में आ जावे। फिर जिस क़दर यह शख़्स उनका तन-मन से संग करेगा और उनके बचन और उपदेश के मुवा-फ़िक़ कार्रवाई करेगा, उसी क़दर दिन-दिन उसको अपने अंतर में फ़ायदा मालूम होता जावेगा ॥

१३—अब ऐसे शख़्स को मुनासिब और लाज़िम होगा कि संत सतगुरु और साध और प्रेमी-जन का संग करके, अपनी पिछली चाल-ढाल और रहनी और चाहों को,

जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, बदलता जावे और संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ सच्चे परमार्थियों की रहनी और बर्ताव इख़्तियार करे। जिस क़दर तन, मन और तवज्जह के साथ यह शख़्स उनका संग करेगा, और जिस क़दर ग़ौर और विचार के साथ प्रेमियों की रहनी और रीति समझ कर और उसके मुवाफ़िक़ कार्रवाई शुरू करेगा, और अपनी पिछली हालत और चाल और स्वभाव और चाहों को निरख-परख कर जिस क़दर उन में फ़िज़ूल और ना-मुनासिब चाहें होवें उनको आहिस्ता-आहिस्ता छोड़ता जावेगा, और सच्चे मालिक से मिलने और अपने निज घर में पहुँचने का इरादा मज़बूत करके, सचौटी के साथ, जो युक्ति कि संत बतावें, उसके अभ्यास में लगेगा, उसी क़दर उसके मन और इच्छाओं का रंग बदलता जावेगा। और जो झुकाव उसका, दुनिया और उसके भोग-बिलास और पदार्थों को बड़ा समझ कर, बाहर और नीचे की तरफ़ हो रहा है, वह भी बदल कर, ऊपर की तरफ़, यानी सच्चे मालिक के धाम और निज घर की तरफ़ आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ता जावेगा। और जिस क़दर मन और सुरत की चढ़ाई ऊँचे को, घट में, होती जावेगी, उसी क़दर मन और इच्छा का ख़मीर यानी मसाला भी निर्मल होता जावेगा। जैसे जिस क़दर नीचे की हवा ऊपर की तरफ़ चढ़ती जाती है, उसी क़दर उसकी कसाफ़त और मलीनता दूर हो कर, शीतलता और ताज़गी बढ़ती जाती है, उसी तरह, एक दिन, उस अभ्यासी की सुरत, तन-मन

और इच्छा और माया के देश से न्यारी होकर, और निर्मल चैतन्य देश में पहुंच कर, अपने सच्चे मालिक का दर्शन पावेगी और अमर-अजर होकर परम आनन्द को प्राप्त होगी, और रोग, शोक और जन्म-मरण के दुख से पूरा छुटकारा हो जावेगा ॥

१४—परमार्थी जीवों को अच्छी तरह समझना चाहिए कि सिवाय संत सतगुरु या प्रेमियों के संग के, जो-जो बातें ऊपर लिखी हैं, वे और किसी तरह से हासिल नहीं हो सकतीं, क्योंकि और मतों में बाहर के कर्म और धर्म का पसारा और विस्तार बहुत किया है, और सच्चे मालिक और उसके निज धाम का पता और भेद साफ़ तौर पर वर्णन नहीं किया है, और युक्ति उसकी प्राप्ति की, ऐसे आसान तौर पर कि जिस में गृहस्थ और विरक्त और औरतें और मर्द, सब कोई बिला दिक़्क़त शामिल हो सकें, बिल्कुल नहीं बताई है। फिर जीव विचारे हमेशा डावाँडोल रहते हैं और भ्रम और संदेह उनके बिल्कुल दूर नहीं होते, और न सच्चा सुख और आनन्द उनको बाहर की करनी से प्राप्त होता है। और जो किसी मत में अंतर की करनी भी बताई है, वह भी पिंड के अंतर की है, चढ़ाई की, और पिंड के पार जाने की युक्ति उस में बिल्कुल नहीं समझाई है। बल्कि उन मतों में चढ़ने और चलने का ज़िक्र भी बहुत कम है। फिर जीव से यह मलीन देश, जहाँ कि मलीन माया और इच्छा और मलीन-मन दुनिया का

काम दे रहे हैं, कैसे छूटे ? और निर्मल चैतन्य देश में यह जीव कैसे पहुँचे ? और जो दुख-सुख और अनेक तरह की तकलीफ़ें इस मलीन देश में माया की मिलौनी के सबब से पैदा होती हैं और सब जीव उन को सह रहे हैं, उनसे कैसे बचाव होवे ?

१५—इस वास्ते, सच्चे परमार्थी जीवों को मुनासिब है कि संतों की युक्ति लेकर अपना काम बनाना शुरू करें। पर इस क़दर ख़्याल रक्खें कि जितनी बने और जिस क़दर हो सके, अपने मन और इच्छा की हालत बदलें। और यह हालत, बग़ैर संतों की युक्ति के अभ्यास के, जिससे यह मलीन देश और मलीन-मन और मलीन-माया और इच्छा से दिन २ अलेहदगी होती जावेगी, किसी सूरत में और किसी तरह से हासिल नहीं हो सकती। इस वास्ते, चाहिए कि अभ्यास नित्त होशियारी के साथ करें और अपने मन और इच्छा की हालत परख २ कर संतों के बचनों के मुवाफ़िक़ सम्हालते और बदलते जावें। इस काम में सुरत-शब्द का अभ्यास उनको मदद देगा, और जो सचौटी के साथ यह अभ्यास शुरू करेंगे और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और उनके सतसंग की, सच्चे मन से शरण लेवेंगे, तो राधास्वामी दयाल कुल मालिक अंतर में दया करते जावेंगे, और अपनी मेहर और दया से अभ्यासी का काम बनाते जावेंगे, यानी दिन २ उसकी तरक़्क़ी होती जावेगी, और उसके साथ अंतर

और बाहर, और व्यवहार और वर्ताव और चाल-ढाल में भी सफ़ाई होती जावेगी, और एक दिन सब काम दुरुस्ती के साथ बन जावेगा, यानी सच्चा और पूरा उद्धार हासिल होगा ॥

१६–संसारी लोगों के संग से मन में मलीन इच्छायें और तरंगें, यानी दुनिया के भोग-बिलास की चाह पैदा हुई थी, सो संत सतगुरु और उनके प्रेमी-जन और उनकी बानी का संग करके यह इच्छा बदलेगी। और जो कोई अपनी इच्छा के बदलने में थोड़ी-बहुत कोशिश नहीं करते जावेंगे, उनको भजन और अभ्यास का भी रस कम आवेगा और राधास्वामी दयाल की दया की भी परख अंतर में नहीं आवेगी, और न उनको अपने मन के विकारों की ख़बर पड़ेगी और न उनके दूर करने का यत्न दुरुस्ती से बन पड़ेगा। फिर ऐसे लोगों की संतमत की प्रतीति का भी पूरा २ भरोसा नहीं हो सकता, और न उनकी प्रीति राधा-स्वामी दयाल और गुरु के चरणों में बढ़ेगी ॥

बचन अड़तीसवाँ

मन की भूल, भ्रम और ग़फ़लत और बे-परवाही

१—मन में भूल और भ्रम निहायत दर्जे के धसे हुऐ हैं। सबब इसका यह है कि अनेक ख़्याल और अनेक कामों का फ़िक्र और अनेक बातों का बन्दोबस्त, वाजिबी

और जरूरी या फ़िज़ूल, इसने अपने सिर पर ले लिया है और कोई वक़्त ऐसा नहीं होता है कि जो यह मन ख़ाली और चुप बैठे ॥

२—जो किसी वक़्त कोई काम नहीं करता है तो हाल और आइन्दा के दुख-सुख के ख़्यालों में लगा रहता है, और अपनी समझ के मुवाफ़िक़ तरह-तरह की चाहों के पूरा करने की युक्ति और यत्न सोचता रहता है या किन्हीं कामों की दुरुस्ती की आशा बाँध कर उनके सामान और तैयारी या उन के फल के भोगने के ख़्यालों में अपना वक़्त खोता है, और किसी से प्रीति और किसी से बैर-विरोध और किसी से ख़ौफ़-ओ-ख़तर के झगड़ों में, चक्कर खाया करता है, और अपनी पिछली, और हाल और आइन्दा की हालतों की समझ के मुवाफ़िक़ अपनी तरह-तरह की ...ई और मान के ख़्याल उठा कर अहंकार बढ़ाता है ॥

३—इन कामों में यह मन हर वक़्त ऐसा लिपटा ...ा है कि कभी इसको निःचिंताई और फ़ुर्सत नहीं ...लती। और जिस किसी के पास दुनिया का सामान और ...न और कुटुम्ब-परिवार ज़्यादा है, उसी क़दर वह मन और माया के पंजे में ज़्यादा गिरिफ़्तार रहता है ॥

४—अपने मरने का सोच बहुत कम आता है और इस बात का विचार कि बाद मरने के क्या हाल होगा और यह जीव कहाँ जावेगा, कभी मन में नहीं आता है। और जो किसी को मरते देखता है, या किसी की मौत का हाल

सुनता है, तो शायद थोड़ी देर के वास्ते उसका जिक्र, अफसोस या रंज या अचरज के साथ, करता है, और फिर बहुत जल्द उसको भूल जाता है और दूसरे कामों या बातों के खयालों में पड़ जाता है ॥

५—सब में बड़े खयालात जो मन को घेरे रहते हैं, ये हैं:—

(१) पहले, फ़िक्र धन के कमाने और बढ़ाने का है, जिस तरकीब और तद्बीर और मेहनत से हो सके ।

(२) दूसरे, अपनी और अपने कुटुम्ब-परिवार की तरक़्क़ी और तन्दुरुस्ती और सलामती का ।

(३) तीसरे, ऐश और आराम और मज़े और स्वाद के पदार्थों को हासिल करके उनका भोग करना, उनकी सम्हाल और हिफ़ाज़त (रक्षा) करना ।

(४) चौथे, वे काम सोचना और करना कि जिन में मान-बड़ाई और शोहरत (यश) और हुकूमत और इख़्तियारात ज़्यादा हासिल होवें ॥

६—जो ये सब काम थोड़े-बहुत इस जीव की ताक़त के मुवाफ़िक़ मालिक की मौज से दुरुस्त बन जावें, तो फिर और उन्हीं के बढ़ाने की फ़िक्र में और उनकी प्राप्ति के अहंकार में हर वक़्त लिपटा रहता है और नित्त उनका सामान और असबाब बढ़ाता जाता है, चाहे वे मुनासिब और जरूरी हैं या नहीं, और जिन लोगों से इन कामों में

मदद मिले या उनके वसीले से यह काम दुरुस्त बन जावें, उन की ख़िदमत और ख़ुशामद में अपना फ़ाज़िल वक़्त लगाता रहता है ॥

७—ख़ुलासा यह है कि दुनिया के सब कामों में, यह आदमी तन, मन, और धन और अपना वक़्त लगाने को तैयार रहता है, जो उन में इन चारों पदार्थों की कि जिनका ज़िक्र दफ़ा पाँच में हुआ है, प्राप्त या तरक़्क़ी मुमकिन होवे, यानी दुनिया और उस के भोगों को ही एक बड़ी न्यामत (दुर्लभ पदार्थ) समझ कर उन्हीं की क़दर करता है और उन्हीं में दिल लगाता है। पर ... मालिक का भजन और बन्दगी या अपने जीव के ...चे कल्याण के वास्ते यह शख़्स किसी क़िस्म की तलाश बड़ी मेहनत या ख़र्च करने में हमेशा कम-फ़ुरसती का ...श करके दिल चुराता है। और जो कोई इस काम के रह... उस पर दबाव डाले तो फ़ौरन अपनी बे-प्रतीती मालिक कि... तरफ़ से ज़ाहिर करता है, या यह कहने लगता है कि वह मालिक किसी की बंदगी और भजन का मोहताज और ख़्वास्तगार (चाहने वाला) नहीं है, या यह कि इन कामों की कोई ज़रूरत ख़ास मालूम नहीं होती है, या जीव के सच्चे मालिक की अंश और अमर होने की निस्बत अपना शक और शुबहा ज़ाहिर करने को तैयार होता है, या ऐसे सवाल पेश करता है कि जिनके जवाब हर एक आदमी न दे सके, और जिससे परमार्थ के काम करने की ज़रूरत ग़लत

साबित हो जावे, जसे कि यह दुख-सुख की रचना किस ने और क्यों करी ? और उसका क्या फ़ायदा है ? और जो संसार में भोग पैदा किये हैं, तो वे ज़रूर भोगने के वास्ते पैदा हुए हैं, फिर उन भोगों के हासिल करने और भोगने की इल्लत में जीवों को सज़ा या दंड क्यों दिया जाता है ? या ऊँची-नीची योनियों में क्यों भ्रमाया जाता है। और ऐसी रचना कि जस में कोई दुखी और कोई सुखी और कोई अमीर और कोई ग़रीब और मुफ़लिस (कंगाल) है, किस वास्ते और किस क़ायदे से की गई ? और सब एक से क्यों नहीं पैदा किए ? और मालिक जो वह रहीम और दयाल है, तो ऐसी सख़्ती और तकलीफ़ जैसे अकाल और मरी वग़ैरा जीवों पर क्यों रवा रखता है ? और जो वह सर्व समर्थ है तो आप ही हमारे मन को फेर कर हम से परमार्थ की करनी करा लेवे। और फिर इन सवालों के साफ़ और सही जवाब हासिल करने के वास्ते भी कोशिश और तलाश पूरे गुरु की नहीं करता है, क्योंकि ऐसे सवालों का जवाब सिर्फ़ संत या उनके प्रेमी अभ्यासी ही दे सकते हैं और भेष और पंडित की ताक़त नहीं कि वे जवाब माक़ूल देकर सवाल करने वाले की तसल्ली कर देवें ॥

८—यह हालत मन की इस सबब से हो गई कि यह मन और सुरत बहुत अर्से से, बल्कि अनगिनत काल से, अपने निज स्थान से जुदा होकर अनेक जन्मों में संसार और उसके भोग-बिलास में भ्रम रहे हैं और अपने निज घर

की ख़बर और भेद बिल्कुल भूल गये, और भ्रम कर, संसार को अपना देश, और इस देह को अपना रूप, और दुनिया के भोगों को अपना आहार और सुखदाई, और कुटुम्बियों को अपना सच्चा सुखचिंतक और मददगार समझा है, और उन्हीं के वास्ते अपना वक़्त और अपनी चैतन्यता ख़र्च कर रहे हैं। यह बड़ी भूल और ग़फ़लत और नादानी है ॥

६—और जो कोई अब इनको घर का पता बतावे और सच्चे माता-पिता कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का भेद सुनावे, तो उसकी पूरी प्रतीत या बिल्कुल प्रतीत नहीं आती है और सबब उसका यह है कि काल पुरुष ने अपनी कलायें इस दुनिया में भेज कर, यानी पैदा करके, अनेक मत और अनेक चालें जारी करीं, और अनेक इष्ट लोगों को बँधवाये, और इन सब बातों और कामों में मन को, किसी न किसी तरह का भोग और रस दिया, चाहे वह इन्द्रियों का रस है या मान-बड़ाई और पूजा-प्रतिष्ठा का भोग है। इतने पर भी लोग काल पुरुष के हुक्म के मुवाफ़िक़ जो उसने वेद, पुराण, क़ुरान और इंजील (बाइबिल) और अनेक मत की किताबों में जारी किया, नहीं मानते हैं, और न ग़ौर-ओ-फ़िक्र से उन उन किताबों के मतलब को समझते हैं। पर, बाहरी रस्म और रीति और चाल-ढाल में, जो अक्सर करके रोज़गारियों ने चलाई और जिन में मन और इन्द्रियों को सैर और तमाशा और भोगों का रस बराबर मिलता है और अहंकार बढ़ता है, बहुत ख़ुशी

से शामिल होते हैं और अंतर का अभ्यास, जिस में तन, मन और इन्द्रियों को थोड़ा-बहुत रोकना पड़ता है, पसंद नहीं आता। और जो कोई अपने मत के मुवाफ़िक़ उसको करते भी हैं, तो उस में मन नहीं लगाते और ऊपरी तौर पर काम करते हैं। इस सबब से काल मत की हद तक भी कोई बिरले पहुँचे या पहुँचते हैं ॥

१०—सिवाय इसके, काल पुरुष ने अपने मतों में जो रास्ता या तरकीब अभ्यास की जारी करी, वह ऐसी कठिन बतलाई कि वह अब न गृहस्थ से बन सकती है और न विरक्त से। और इस में उसका असली मतलब यही था कि कोई भी उसके स्थान तक न पहुँचे। और सच्चे मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के भेद से तो वह आपही वाक़िफ़ नहीं, तो फिर औरों को क्या समझाता ? और जो थोड़ा-सा हाल सत्तलोक तक का उस को मालूम है, उसको उसने पोशीदा (गुप्त) रक्खा और सिर्फ़ अपनी और अपनी अंश और कलाओं यानी औतार और देवताओं वग़ैरा की पूजा का उपदेश आम तौर पर जारी किया, या अपनी कलाओं, पैग़म्बर रूप में भेज कर अपनी और उनकी पूजा और मान्यता समझाई ॥

११—यह मन भोगों का लालची है और इन्द्रियों के वसीले से बारम्बार भोगों की तरफ़ दौड़ता है, और जिन ख़्यालों का ऊपर ज़िक्र हुआ है, उन्हीं के चक्करों में अंतर और बाहर भ्रमता रहता है, और सुरत-चैतन्य

की धार को अपनी तरफ़ खींच कर इन्द्रियों के द्वारे संसार में बहाता है, और अपने और सुरत के कल्याण और परमानंद की प्राप्ति के लिये कोई सच्चा यत्न करना नहीं चाहता है, और निहायत दर्जे की बे-परवाही, मौत और दुक्खों की तरफ़ से, जो इसके सिर पर खड़े हुए हैं, ज़ाहिर करता है। और जो परमार्थी काम भी करता है तो झूठे और ओछे परमार्थ की बातें सुन कर उनको जल्दी क़ुबूल कर लेता है, और फिर उनमें भी सच्चा होकर नहीं लगता। और जो संत इसको सच्चे परमार्थ का भेद सुनावें, उसमें यह मन अपने और सुरत के बदलने की तरकीब सुन कर और दुनिया और उसके भोगों की तरफ़ से किसी क़दर हटना मंज़ूर न करके प्रतीत नहीं लाता और मानना नहीं चाहता है॥

१२—ऐसी ग़फ़लत और बे-परवाही और नादानी का नतीजा जीवों के हक़ में निहायत नुक़सान-दह और सब दुक्खों का मूल समझ कर, संत सतगुरु दया करके बारम्बार उनको समझाते हैं कि अपने मालिक के चरणों में, जो तुम्हारे घट में हर दम मौजूद और तुम्हारे अंग-संग है, थोड़ी-बहुत प्रीति लाओ और उसके मिलने का यत्न, सुरत-शब्द से अभ्यास से, जिस क़दर बन सके, इस ज़िन्दगी में थोड़े-बहुत शौक़ या प्रेम के साथ करके, जिस रास्ते पर मरने के वक़्त जाना होगा, उसको जीते-जी थोड़ा-बहुत साफ़ करलो, और अपनी अंतर की आँख से देख लो और संतों के बचन के मुताबिक़ और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ संसार में

बर्ताव करो, और ज़्यादा विस्तार उसका, और बहुत फँसाव अपना उस में न करो, तो आहिस्ता आहिस्ता एक दिन अपने निज घर में पहुँच कर परम और अमर आनंद को प्राप्त होगे और जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से बचाव हो जावेगा ॥

१३—इस वास्ते, कुल जीवों को, चाहे मर्द होवें या औरत, मुनासिब और लाज़िम है कि अपनी इस ज़िन्दगी में संत-मत का भेद और उसके अभ्यास की जुगत समझ कर, जिस क़दर बने, कारवाई शुरू करें और अपने मन का घाट यानी मक़ाम बदलवावें। तब यह भूल और भ्रम और ग़फ़लत, जिस क़दर अभ्यास और सतसंग बनता जावेगा, दूर होती जावेगी, और जिन ख़्यालों में कि मन भ्रमता रहता है, उनकी आहिस्ता-आहिस्ता कमी और अभाव होता जावेगा, और भोगों की तरफ़ से चित्त हटता जावेगा और होशियारी बढ़ती जावेगी, और अंतर में रस और आनन्द सुरत और शब्द की धार का, ध्यान और भजन के अभ्यास में, मिलता जावेगा। और मन और सुरत उसके आसरे चढ़ते जावेंगे और भूल और भ्रम और दुख-सुख और कर्म के स्थान से हटते जावेंगे। और रफ़्ता-रफ़्ता त्रिकुटी में पहुँच कर मन अपने निज घर में रह जायेगा। और वहाँ से सुरत न्यारी होकर अकेली अपने निज देश में, जो कि सतलोक और राधास्वामी धाम है, पहुँच कर, अमर और परम आनंद को प्राप्त होगी, और तब जन्म-मरण

और देहियों के बंधनों से सच्चा छुटकारा और बचाव हो जावेगा ॥

बचन उन्तालीसवाँ

मन और इन्द्रियों की चाल और उनकी सम्हाल

१—मन और इन्द्रियाँ, अपने स्वभाव के मुवाफ़िक़ (जो जन्म-जन्म के संसारी बर्ताव से बहुत मज़बूत और पक्का हो गया है) बारम्बार भोगों की तरफ़ दौड़ते हैं यानी पहिले मन से धार उठ कर इन्द्रियों के स्थान पर, और फिर वहाँ से भोगों और पदार्थों की तरफ़ रात और दिन बहती रहती है। सो जब तक धार का रुख़ अन्दर में नीचे और बाहर की तरफ़ है, और उसी तरफ़ की धार रवाँ रहेगी, तब तक ऊँचे की तरफ़ उसका रुख़ यानी मुख नहीं बदल सकता, और न उस तरफ़ को चल सकती है। इस वास्ते राधास्वामी मत के अभ्यासियों को मुनासिब है कि इस धार की सम्हाल रक्खें, यानी चाह भोगों और पदार्थों की किसी क़दर कम उठावें, और जब अभ्यास में बैठें तो उस वक़्त दुनिया और उसके पदार्थों का ख़्याल ज़रूर बन्द करें, और चरणों की तरफ़ मुख रक्खें, तो कुछ ध्यान और भजन का रस आवेगा और नहीं तो, गुनावन यानी ख़्याल के वक़्त ख़र्च हो जावेगा और अभ्यास का फ़ायदा प्राप्त न होगा ॥

२—जब भजन के वक़्त कोई संसारी या भोगों की तरंग उठे, तो अभ्यासी को चाहिये कि उसी वक़्त उसको रोके और जो न रोकी जावे तो उसी वक़्त गुरु-स्वरूप या स्थानीय स्वरूप का ध्यान शुरू कर देवे। इसका असर थोड़ा-बहुत ज़रूर मन और इन्द्रियों पर पहुँचेगा और उनका मुख, स्वरूप या शब्द की तरफ़ आसानी से हो जावेगा, और जब गुनावन यानी ख़्याल हट जावे, तब थोड़ी देर बाद, फिर भजन यानी आवाज़ के सुनने में लग जावे॥

३—जो ध्यान के वक़्त भी गुनावन दूर न होवे यानी फिर-फिर वही ख़्याल पैदा होवे, तब मुनासिब है कि नाम का सुमिरन भी ध्यान के साथ करे और जो फिर भी ख्याल न हटे, तो जिस शब्द की कोई ख़ास कड़ी या प्रेम की कड़ियाँ, मन को बहुत प्यारी लगती होवें, उनका अंतर में, मन ही मन में, गा कर पाठ करे, और तब अपनी तवज्जह, स्वरूप के ख़्याल पर, पहले स्थान सहसदलकँवल पर जमाये रक्खे। जब मन इस काम में लग जावेगा, तब गुनावन और ख़्याल को छोड़ देगा और मन में थोड़ा-बहुत प्रेम ज़ाहिर होगा और शब्द की भी आवाज़ उस वक़्त साफ़ सुनाई देगी और अभ्यास का थोड़ा-बहुत रस आवेगा॥

४—मन से एक वक़्त में एक ही काम हो सकता

है। इस वास्ते अभ्यासी को मुनासिब है कि जब भजन में न लगे, तब उसको ध्यान में लगावे, और जो ध्यान में भी अच्छी तरह न लगे और प्रेम की कड़ियाँ गाकर भी ख़्याल को न छोड़े, तो सिर्फ़ सुमिरन करे, इस तरकीब से कि मक़ाम नाफ़ या हृदय से नाम की धुन अंदर ही अंदर या थोड़ी आवाज़ के साथ उठावे, और हृदय और कंठ चक्र के स्थान पर एक २ हिस्सा नाम का उच्चारण करता हुआ, सहसदलकँवल या त्रिकुटी के स्थान में ठहरावे, यानी धुन को ख़त्म करे। और फिर इसी तरह दूसरी दफ़ा नाम का उच्चारण नाफ़ से लेकर सहसदलकँवल तक करे, यानी चार हिस्से करके, एक २ हिस्सा नाम का उच्चारण एक एक चक्र के मक़ाम पर करके आख़िरी हिस्सा सहसदलकँवल में ख़त्म करे, जैसा कि नीचे लिखा है। नाफ़-हृदय-कंठ-सहसदलकँवल

नाफ़	हृदय	कंठ	सहसदलकँवल
रा	धा	स्वा	मी

और जो हृदय चक्र से उठावे, तो त्रिकुटी में ख़त्म करे—इस तरह हृदय, कंठ, सहसदलकँवल, त्रिकुटी

हृदय	कंठ	सहसदलकँवल	त्रिकुटी
रा	धा	स्वा	मी

५—सिवाय ध्यान और भजन के वक़्त के, और किसी वक़्त जो मन में हिलोर संसारी तरंग की उठे या तरंग पैदा होवे और वह तरंग मुनासिब नहीं है या ग़ैर-वाजिब और बे-फ़ायदा है, तो मुनासिब है कि उस वक़्त फ़ौरन गुरु स्वरूप या स्थानीय स्वरूप का ख़्याल करे, और अन्तर में

अपनी तवज्जह ऊपर की तरफ़, यानी सहसदलकँवल या त्रिकुटी की तरफ़ फेरे, तो उस वक़्त फ़ौरन वह हिलोर या तरंग बंद हो जावेगी- पर शर्त यह है कि अभ्यासी का प्रेम थोड़ा-बहुत गुरु स्वरूप में होवे, या शब्द में होवे या अंदर में ऊँचे की तरफ़ तवज्जह फेरने में (कोई दिन के अभ्यास की आदत से) रस आता होवे ॥

६—जिस किसी का गुरु स्वरूप में प्यार और भाव कम है या नहीं है और न शब्द में अभी रस आया है, तो उस को चाहिए कि जब कोई नाक़िस तरंग मन में उठे तो उसको अपने भजन और ध्यान की हानि और नर्कों और चौरासी के दुक्खों का डर दिखला कर रोके। जो इस बात की, संतों के बचन के मुवाफ़िक़, थोड़ा-बहुत प्रतीत है, तो भी मन और इन्द्रियाँ, डर के सबब से रुक जावेंगी और तरंग भी हट जावेगी ॥

७—अभ्यासी को मुनासिब है कि अपने मन और उसकी चाल की हर वक़्त निगरानी और चौकीदारी रक्खे कि फ़िज़ूल और ना-मुनासिब जगह न जावे, और न ऐसे कामों का ख़्याल उठावे। तब जो अभ्यास दफ़ा छः में लिखा है उससे बन पड़ेगा, और नहीं तो, उसको ख़बर भी न होगी कि उसके मन और इन्द्रियाँ किन बातों और किन कामों में भ्रम रहे हैं। बल्कि वह उन बातों और कामों का, ख़्याल के साथ, अपने, मन में रस लेवेगा और उस ख़्याल को, जब तक वह अन्दर में

जारी रहेगा और उसका पूरा रस नहीं लेवेगा, नहीं छोड़ेगा। यह हालत कुल संसारी जीवों की है, और जो ऐसी ही परमार्थी जीव की भी हुई, तो उसमें अभी संसारी स्वभाव विशेष है, उसकी परमार्थी कार्रवाई दुरुस्त नहीं कही जा सकती है ॥

८—परमार्थ की तरक़्क़ी के वास्ते और अभ्यास में रस मिलने के लिए ज़रूर है कि अभ्यासी अपने मन और इन्द्रियों की चाल पर नज़र रक्खे और जहाँ तक मुमकिन होवे, उनको बाहर की तरफ़, फ़िज़ूल और ना-मुनासिब धार बहाने से रोकता रहे, और जिस क़द्र बने, अंतर में ऊँचे की तरफ़ चलने और चढ़ने की आदत डाले, तो कोई दिन के अभ्यास से यह आदत पक्की और मज़बूत होती जावेगी, क्योंकि इन्द्रियों की तरफ़ और संसार में भी सुरत और मन, आदत और अभ्यास करके लगे हैं, और जब दूसरी आदत डाली जावेगी और उस का अभ्यास किया जावेगा, तब इनका मुख ऊपर की तरफ़ आहिस्ता आहिस्ता बदल जावेगा और परमार्थ की तरक़्क़ी मालूम होने लगेगी ॥

९—मन आप भोगों का रसिया है, और इस सबब से इन्द्रियों की तरफ़ धार को बहाता है। और जब समझ और विचार के साथ अपने परमार्थ के नफ़े और फ़ायदे की क़द्र जानेगा, तब होशियार हो जावेगा, और पुरानी आदत को आहिस्ता आहिस्ता छोड़ता जावेगा, और चंचलता और मलीनता को कम करता हुआ, स्वरूप के ध्यान में और

शब्द की आवाज़ में, उमंग और प्रेम के साथ लगता जावेगा। इसी तरह एक दिन पूरा काम बन जावेगा॥

बचन चालीसवाँ

स्वार्थ और परमार्थ, यानी दुनिया और दीन के कामों का बयान

१—स्वार्थ से लोगों ने यह मतलब रक्खा है कि दुनिया के कामों का करना या दुनिया के सुख और सामान की चाह उठाना और उसकी प्राप्ति के निमित संसारी और परमार्थी यत्न करना॥

२—और परमार्थ से यह ग़रज़ रक्खी है कि मरने के बाद, और लोकों में भारी सुख हासिल करने के वास्ते यत्न या काम करना या अपनी मुक्ति के लिए जो युक्ति और अभ्यास साध और महात्मा-जन बतावें, उसको दुरुस्ती से अंजाम देना, और तन, मन, धन उनकी या मालिक की सेवा में लगाना॥

३—संत-मत में स्वार्थ और परमार्थ के अर्थ बहुत खोल कर और साफ़ तौर पर किये गये हैं कि जिस में किसी तरह का शक नहीं रहे। फिर मुक्ति की निस्बत भी कहा है कि यह नाम हर एक ने अपने २ मत के बग़ैर मुक़र्रर करने ठेके और ठिकाने के रख लिया है, और उसका पूरा-पूरा हाल वर्णन नहीं किया है जिस से कि साफ़

मालूम पड़े कि सच्ची मुक्ति किसका नाम है। अब इन लफ़्ज़ों के अर्थ जुदा-जुदा कहे जाते हैं ॥

४—स्वार्थ उन कामों का नाम है कि जिनके करने से देही के संग, चाहे किसी क़िस्म की होवे, सूक्ष्म या स्थूल, और इस लोक में या दूसरे लोकों में, आराम मिले और रस और सुख का भोग करे। और इसी आराम और सुख और मज़े की प्राप्ति के लिए चाह उठाना और उस चाह के पूरा होने के वास्ते यत्न दरयाफ़्त करना, या उसमें अभ्यास और कोशिश करना और तन, मन, धन ख़र्च करना, स्वार्थी काम कहलाता है ॥

५—ऊपर की लिखी हुई दफ़ा में सब काम और सब क़िस्म की चाहें शामिल हैं, यानी स्वर्ग और बैकुण्ठ और देवताओं और औतारों के अनेक लोकों में बासा चाहना और वहाँ के या इस लोक के सुखों की आशा धर के यत्न करना। और जो मुक्ति कि सच्ची नहीं है यानी जिस में बहुत काल के पीछे जन्म लेना पड़ेगा, उसके लिए यत्न करना, या उसकी चाह उठाना, वह भी स्वार्थी कामों और चाहों में दाख़िल है ॥

६—इस लोक में कुल बाहरमुखी पूजा, जिसका घट के अन्तर के भेद से सिलसिला नहीं लगा हुआ है और जिससे सच्चा फल और पूर्ण आनन्द और सच्ची मुक्ति किसी सूरत में नहीं हो सकती है, स्वार्थी कामों में दाख़िल है, क्योंकि पहले तो अक्सर करके, यह पूजा दुनिया की चाहें पूरी होने के लिए, या उनके पूर्ण होने पर

करी जाती है, और जो मुक्ति की चाह लेकर यह काम कोई करता है तो वह भ्रम में दाखिल है, क्योंकि सब मत जो जारी हैं, उनके आचार्यों ने साफ़ लिख दिया है कि जब तक कोई योग-अभ्यास नहीं करेगा या अपने मन और इन्द्रियों का मर्दन नहीं करेगा या जीते-जी मुर्दा न हो जावेगा, तब तक उनको तत्व वस्तु का यानी जिसको उन्होंने मालिक क़रार दिया है, उसका दर्शन नहीं मिलेगा, और पाप-पुण्य और जन्म-मरण के चक्कर से उनका बचाव और छुटकारा नहीं होगा ॥

७—परमार्थ उसको कहते हैं कि जिसमें किसी क़िस्म के माया के मसाले की बनी हुई देही का रस और भोग मंज़ूर नहीं है, और सिर्फ़ निर्मल चैतन्य देश में पहुँच कर अपने सच्चे और परम पिता राधास्वामी दयाल के दर्शन का आनन्द लेने की अभिलाषा ज़बर और मज़बूत और अडिग है, यानी माया देश के, जिसको त्रलोकी कहते हैं, कोई पदार्थ या भोग या आनन्द अभ्यासी को लुभा कर रोक नहीं सकते। आत्मा और परमात्मा या ब्रह्म और पार-ब्रह्म के किसी और स्थान पर अभ्यासी ठहरना नहीं चाहता। उसका सच्चा और पूरा प्रेम राधास्वामी दयाल के चरणों में ऐसे शौक़ के साथ लगा रहता है कि किसी भी और जगह और किसी और के संग में और कैसे ही सामान के साथ उसके मन में पूरी शान्ति और निःचिंताई नहीं आती, और बेकली और तड़प, दर्शन की, कोई उपाय और यत्न करके नहीं

दूर होती, जब तक कि राधास्वामी दयाल के देश में पहुँच कर उनके चरणों में विश्राम न पावे ॥

८—ऐसी टेक और भक्ति जिस किसी की सच्ची और मज़बूत है, उसी को परम भक्त और प्रेमी कहना चाहिये, और उसी को काल और महाकाल के जाल से सच्ची मुक्ति और सच्चा निर्वार माया और महामाया के बंधनों से हासिल होगा, और वही निज देश में, जो कि प्रेम का महा भंडार है, पहुँच कर अमर और अजर हो जावेगा और महा आनंद को, जो कि सदा एक-रस रहता है, प्राप्त होकर, अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के दर्शनों का परम बिलास करेगा ॥

९—सच्चे परमार्थी और भक्तजन को मुनासिब है कि संतों के मत के मुवाफ़िक़ स्वार्थ और परमार्थ का भेद समझ कर, राधास्वामी दयाल के चरणों का इष्ट धारण करके, सच्चा और पक्का और मज़बूत इरादा उनके धाम में पहुँचने का करके अभ्यास शुरू करें, और संत सतगुरु और उनके सतसंग की शरण लेकर, जिस क़दर बने, कमाई करते जावें, और अपने मन को माया के पदार्थों से बचाये और हटाये हुए रास्ते तै करते जावें, तो एक दिन राधास्वामी दयाल की दया से निज घर में पहुँच कर अपना कार्य बना लेवेंगे। ऐसे भक्तों की करनी और अभ्यास शुरू से अख़ीर तक सब परमार्थी कामों में दाख़िल है ॥

१०—जितने मत कि संसार में जारी हैं, उनका

सिद्धान्त माया के घेर में है। और इस सबब से उनके बचन और उनकी युक्तियाँ, अभ्यास की, उस हद् में खत्म हो जाती हैं। इस वास्ते राधास्वामी द्याल के इष्ट वालों को चाहिये कि उन बचनों और युक्तियों को सुन कर धोखा न खावें और उन मत वालों की बातें सुन कर या उनकी किताबें पढ़ कर भ्रम न जावें और अपना इरादा राधास्वामी देश में पहुँचने का ढीला न करें, नहीं तो रास्ते में किसी न किसी स्थान पर अटक जावेंगे और जन्म-मरण से उनका सच्चा छुटकारा नहीं होगा ॥

११—राधास्वामी द्याल अपने सच्चे भक्तों का आप प्यार करते हैं और हर तरह से उनकी सम्हाल और रक्षा करते रहते हैं। और जो वे अपना इरादा मज़बूत रक्खेंगे और राधास्वामी द्याल की द्या का भरोसा और यक़ीन करेंगे तो वे हर हालत में उनको आप माया और काल के चक्करों से बचा कर सीधे रास्ते से अपने देश में ले जावेंगे, और अपने दर्शनों का परम आनंद बख़्शेंगे, और रास्ते में कहीं धोखा नहीं खाने देंगे। अभ्यासी भक्त को चाहिए कि प्रीति और प्रतीत उन के चरणों में बढ़ाता जावे और संशय और भ्रम अपने चित्त में न लावे। और जब कभी कोई संशय और भ्रम उठे, उसको सतसंग में फ़ौरन ज़ाहिर करके दूर करवे, और अपने तईं बलहीन और असमार्थ जान कर, जब-तब चरणों में, वास्ते प्राप्ति मेहर और द्या और अपनी सम्हाल के, प्रार्थना करता रहे ॥

बचन इकतालीसवाँ

मन और सुरत का खिलना और खुश होना और कभी भिचना और दुखी होना, अभ्यास की हालत में

१—जो लोग कि राधास्वामी मत में शामिल होकर सुमिरन और ध्यान और सुरत-शब्द का अभ्यास हर रोज़ नियम से करते हैं, उनको कभी ध्यान में स्वरूप का रस और भोजन में शब्द का आनन्द बराबर, अर्से तक, आता है, और तबीयत मगन और खुश रहती है। और कभी ऐसा होता है कि शब्द साफ़ नहीं मालूम होता है और न उस में मन लगता है, या ध्यान में रस नहीं आता या कम आता है, तो ऐसी हालत में लोग घबरा कर शिकायत करने लगते हैं और अपने चित्त में दुखी या निराश हो जाते हैं और फिर अभ्यास में भी बहुत ढीले और सुस्त हो जाते हैं ॥

२—अब मालूम होना चाहिये कि ये दोनों हालतें सच्चे अभ्यासी को, मौज और दया से, प्राप्त होती हैं। पहली हालत में यानी जब कि ध्यान और भजन में रस और आनन्द मिलता है, ऐन दया और मेहर राधास्वामी दयाल की प्रकट नज़र आती है। पर, दूसरी हालत में जबकि ध्यान और भजन में रस और आनन्द कम मिलता है या एक-दो रोज़ नहीं मिलता है, तब राधा-स्वामी दयाल की दया प्रकट नहीं मालूम होती, और इस सबब से मन घबरा जाता है, और ख़्याल करता है

कि दया खिंच गई या किसी सबब से नाराज़गी हो गई कि जो आनन्द मिलता था, वह जाता रहा या बंद हो गया ॥

३—अब समझना चाहिये कि दूसरी हालत में भी जिसका ज़िक्र ऊपर हुआ, दया संग है, यानी ध्यान और भजन में रस न मिलने या कम होने के तीन सबब हो सकते हैं, और वे ये हैं और उनका उपाय और यत्न भी सँग २ लिख जाता है ॥

सबब का बयान

४—पहला सबब यह है कि इत्तिफ़ाक़ से किसी निपट संसारी या निन्दकों का संग होना और उनके बचन, तान और हँसी और परमार्थ के, विरोध या राधास्वामी मत की निंदा के सुन कर मन में भ्रम या रूखा और फीका-पन आ गया और अभ्यास के वक़्त वे ही बचन याद आये और उनका असर ऐसा हुआ कि उस वक़्त विरह और प्रेम सूख गया, और जब ऐसा हुआ, तो उसी वक़्त मन और सुरत गिर पड़े और रस जाता रहा ॥

यत्न और इलाज अभ्यासी के हाथ से

५—सबब इसका यह है कि अभी भक्ति ज़रा कच्ची है और सतसंग के बचनों की याद और उनकी समझ भी कम है। नहीं तो, चाहिए था कि संसारी और निन्दकों के बचन का फ़ौरन काटने वाला जवाब देकर उनको चुप कर देता, और जो उन लोगों के सामने बोलने का

मौक़ा नहीं था या उनको जवाब देना मुनासिब न समझा गया, तो चाहिये था कि सतसंग के बचन और परमार्थ में भक्ति की रीति विचार कर, उन बातों के असर को अपने दिल से दूर कर देता और कहने वालों को नादान और विरोधी और अभागी समझता और अपने भागों को सराह कर ज़्यादा तवज्जह से अभ्यास में लगता ॥

इलाज दूसरे के हाथ से, या पोथी के पाठ से

६—जो इस क़द्र अपने में ताक़त नहीं पाई गई तो अभ्यासी को मुनासिब है कि इसी क़िस्म के बचन पोथी सार बचन नसर (वार्तिक) और नज़्म (छंद बंद) और प्रेमबानी और प्रेम-पत्र में से निकाल कर, ग़ौर के साथ पढ़े या अपना हाल किसी अपने से बड़े या बराबर के सतसँगी के सामने ज़ाहिर करके उससे अपनी तबियत का इलाज करावे, यानी भ्रम और अनसमझता को दूर करावे। पोथियों और सतसंगी के बचनों से ज़रूर मदद मिलेगी और राधास्वामी दयाल की दया से वह भ्रम और नादानी जल्दी दूर हो जावेगी ॥

प्रार्थना करे राधास्वामी दयाल के चरणों में

७—और जो यह न बने तो भजन या ध्यान में ज़ोर लगावे और वास्ते प्राप्ति दया के, प्रार्थना करे। राधास्वामी दयाल अन्तर में समझ और सहारा देवेंगे ॥

दया का वर्णन

८—अब समझो कि ऐसे चक्कर के आने में भी दिया है

कि जो मन में कच्चाई और कसर गुप्त धरी हुई थी, वह इस तौर पर प्रकट होकर उसका इलाज किया जाता है, और फिर आइन्दा को वह कचाई और कसर या तो बिलकुल दूर हो जावेगी या बहुत कम हो जावेगी और उसका इलाज भी मालूम हो जावेगा कि जब-जब वह कसर प्रकट होवे, तब-तब ब-दस्तूर सतसंगी और पोथियों से मदद लेकर उसको काटे और दूर करे ॥

९–**दूसरा** सबब यह है कि सैर और तमाशा या धनवालों और हाकिमों के संग से कोई २ तरंग मन में, संसार के भोगों या पदार्थों या बड़े ओहदों या नामवरी के कामों की पैदा होवे, और उन पदार्थों या भोगों के न मिलने, या मुश्किल से मिलने के ख़याल से मन सुस्त और उदास हो जावे, और ख़याल करे कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल छिन में जो चाहें सो बख़्श देवें, पर उसको क्यों नहीं देते ? या यह कि किसी रोज़ भोगों में मामूल और हद मुक़र्ररा से ज़्यादा, या ना-मुनासिब और बेजा बर्ताव हो जावे या ज़्यादा अभिलाषा और ख़्वाहिश किसी क़िस्म के भोगों की मन में, औरों का हाल सुन कर या पढ़ कर पैदा होवे तो उस वक़्त भी मन सुस्त और दुखी हो जाता है, और ख़्याल करता है कि राधास्वामी दयाल उसके मन और इन्द्रियों की पूरी सम्हाल क्यों नहीं करते, और क्यों उसमें तरंगें उठने देते हैं या भोगों में क्यों उसको बर्तने देते हैं ? और इस हालत में भजन और ध्यान का रस और आनन्द बिल्कुल नहीं आता है, और तबियत परेशान हो जाती है ॥

यत्न और इलाज अभ्यासी के हाथ से

१०–ऐसी हालत में अभ्यासी को चाहिए कि संतों के बचन, निस्बत मन और माया और संसार के भोग-बिलास के, यानी चितावनी और मन के स्वभाव और चाल के शब्दों या बचनों का, समझ-समझ कर पाठ करे, और सत-संग के बचन याद करके अपने मन को समझावे कि क्यों फ़िज़ूल और ना-मुनासिब चाहें उठा कर और उनके पूरे होने की ख़्वाहिश राधास्वामी दयाल से करके, नाहक़ उनकी तरफ़ से रूखा और फीका और दुखी और उदास होता है, और अपनी भक्ति और ध्यान और भजन के अभ्यास में विघ्न डालता है, क्योंकि संतों और महात्माओं ने पहले ही यह बात समझाई है कि सच्चे परमार्थी को मालिक से मालिक ही को माँगना चाहिए, यानी वह कुल दातार है, और सर्व-भोग और पदार्थ और हुकूमत और नामवरी उसकी दात हैं। सो दाता से दाता ही को माँगना चाहिए और दात नहीं माँगनी चाहिए, क्योंकि जब दाता दयाल प्रसन्न होगा, तब वह जो दात अपने सच्चे प्रेमी के वास्ते मुनासिब होगी, आप देगा, और जिसमें उसके दुनिया या परमार्थ का नुक़सान नज़र आवेगा, वह दात अपने प्यारे बच्चों को नहीं देगा। इस वास्ते ऐसी दात के न मिलने में कभी उदास या दुखी नहीं होना चाहिए।

यत्न या इलाज दूसरे के हाथ से

११–जो बानी और बचन पढ़ कर, और इस तरह सोच और विचार करके मन न माने, और बार-बार वही चाह

उठावे, या भोगों में या उनके ख़यालों में भ्रमता रहे, तो मुनासिब है कि सतगुरु या साधगुरु से, और जो उनसे मेला न हो सके तो प्रेमी सतसंगी से, जो अपने से अभ्यास और भक्ति में ज़बर होवें, अपना हाल खोल कर या इशारे में अर्ज़ करे, और फिर जो बचन वे कहें, चित देकर सुने और विचारे के तुच्छ और नाशमान भोगों और पदार्थों के वास्ते अपने भजन और ध्यान के रस और आनन्द को क़ुरबान करना और अपनी सच्ची भक्ति में विघ्न डालना और अपने प्यारे परम पिता राधास्वामी दयाल से विमुख होना, कैसे भारी नुक़सान की बात है, और सच्चे प्रेमियों और सतसंगियों की सभा में किस क़दर शर्म से सिर झुकाना पड़ेगा, और अपनी सुरत के कल्याण और फ़ायदे में आप ही विघ्न डालना किस क़दर पाप कमाना और अपने उद्धार में देरी करना है ॥

प्रार्थना चरणों में राधास्वामी दयाल के

१२—ऐसी समझ लेकर उन नाक़िस और ओछे भोगों की वासना को जल्द दूर करके और अपनी ग़लती और चूक पर शर्मा कर मुआफ़ी के वास्ते चरणों में प्रार्थना करे, और सर्व-अंग करके यानी पूरी तवज्जह के साथ अभ्यास में लगे तो राधास्वामी दयाल की दया से जल्द हालत बदल जावेगी और अन्तर में मामूली रस और आनन्द बल्कि मामूल से ज़्यादा मिलेगा ॥

प्राप्ति दया की

१३—और इस तरह राधास्वामी दयाल की दया की परख होगी कि अपने प्यारे बच्चों की किस तरह सम्हाल करते हैं और उनको, उनके मन की कसर और मलीनता दिखा कर उस विकार को आहिस्ता-आहिस्ता निकालते जाते हैं और समझ बढ़ा कर और सफ़ाई और भक्ति की रीति सिखा कर अंतर में रस और आनन्द बख़्शते हैं ॥

१४—**तीसरा** सबब यह है कि पिछले या इसी जन्म के कर्मों के सबब से कोई बीमारी या और किसी क़िस्म की तकलीफ़ या उपाधि अभ्यासी को पैदा होवे, या जो उसके कुटुम्ब और परिवार या ख़ास रिश्तेदारों में हैं, उनकी तबीयत अपने कर्मों के फल करके ख़राब होवे, या और कोई तकलीफ़ या उपाधि उनको आयद होवे, और ब-सबब उनकी प्रीति और संग रहने के, अभ्यासी के मन पर भी उसका असर पहुँचे, यानी उसको चिन्ता या फ़िक्र पैदा होवे, और उस बीमारी या तकलीफ़ अपनी या अपने कुटुम्बियों की चिन्ता के सबब से मन और सुरत ध्यान और भजन में अच्छी तरह न लगें, तब मन घबरा कर जल्दी पुकार चरणों में करता है। और जो वह मंज़ूर हो गई और बीमारी और तकलीफ़ या उपाधि हट गई तो ख़ुश होकर शुक्राना करता है, और नहीं तो चित दुखा और उदास होकर राधास्वामी दयाल की तरफ़ से रूखा और फीका हो जाता है, और कहता है कि क्यों नहीं जल्दी कर्म काट देते और इस क़दर सहायता क्यों नहीं करते कि जिसमें तबीयत ज़्यादा न घबरावे और अभ्यास

दुरुस्ती से बने जावे, और जो अभी दया नहीं करते तो आइन्दा कर्म कैसे काटे जावेंगे और दुक्खों से कैसे बचाव करेंगे ॥

यत्न और इलाज अभ्यासी के हाथ से

१५—ऐसी हालत में अभ्यासी को चाहिए कि जो तकलीफ़ होवे, उसको धीरज के साथ बर्दाश्त करे, और जो हो सके तो सतसंग की हाज़िरी देवे, और चित से बचन सुने, और जो सतसंग प्राप्त न होवे तो जिस क़दर बन सके, तवज्जह अपनी लेटे हुए, भजन या ध्यान या सुमिरन में लगावे। और जो इन कामों में मन न लगे, यानी तकलीफ़ के सबब से यह अभ्यास न बन सके, तो चित के साथ नाम की धुन, आहिस्ता २ या थोड़ी आवाज़ के साथ, बतौर कड़ी के उच्चारण करे, इस तरह पर :—

राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी

या इस तौर पर—

राधास्वामी सतगुरु दयाल।
हे राधास्वामी सतगुरु दयाल॥

और जो धुन के साथ नाम का उच्चारण भी न कर सके तो पोथी का पाठ करे, या दूसरे से पाठ करा कर तवज्जह के साथ अर्थों पर नज़र रख कर सुने। इन में से जो भी अभ्यास थोड़ा-बहुत बन आवेगा तो ज़रूर तकलीफ़ किसी क़दर कम हो जावेगी, क्योंकि वह तकलीफ़ पिछले नाक़िस कर्मों के सबब से पैदा हुई है। और अब जो पर-

मार्थी करतूत संतों के बचन के मुआफ़िक़ की जावेगी, तो उसका असर पिछले कर्मों के फल को काट देगा ॥

दया और दुआ लेना और दवा करना

१६—सिवाय इसके, अभ्यास को मुनासिब है कि संत सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया लेवे, और यह अभ्यास या सतसंग और प्रार्थना करके हासिल होगी ॥ और

१७—ग़रीब और मोहताज यानी भूखों की दुआ लेवे, इस तौर पर कि अपनी ताक़त के मुआफ़िक़ एक या दो या ज़्यादा सच्चे भूखे मर्द या औरत या बच्चों को तलाश करके उनको अपने सामने अच्छा खाना खिलवावे। जैसे वे खाते जावेंगे, उसी क़दर ख़ुश होकर दुआ देते जावेंगे। उनकी दुआ के असर से भी तकलीफ़ किसी क़दर दूर होवेगी और ख़ुशी और ताक़त प्राप्त होगी ॥

१८—डाक्टर या हकीम या वैद की दवा भी राधास्वामी दयाल की मेहर और दया के आसरे करे। इससे भी बीमारी की तकलीफ़ दूर होगी या कम होती जावेगी ॥

राधास्वामी दयाल की दया का वर्णन

१६—जो जीव सच्चे मन से परम पुरुष राधास्वामी दयाल की शरण में आये हैं, उनको जब कभी ऐसी तकलीफ़ या सोच और फ़िक्र पैदा होता है, उस में भी राधास्वामी दयाल की दया संग होती है, यानी जो तकलीफ

पिछले कर्मों के सबब से आती है, उसको वे अपनी दया से सूली का काँटा और मन भर को सेर भर कर देते हैं, और फिर उस हालत में भी रक्षा और सम्हाल अपने जीवों की करते हैं, और उनके परमार्थ की तरक़्क़ी मंज़ूर है यानी मेहर से ऐसे वक़्त पर भजन और ध्यान में ज़्यादा रस देते हैं कि जिसकी मदद से वह तकलीफ़ बहुत कम मालूम होती है या बिल्कुल नहीं मालूम होती है। बल्कि बाज़ वक़्त ऐसी तकलीफ़ या बीमारी की हालत में इस क़दर रस और आनन्द अभ्यास में बख़्शते हैं कि बीमार अपनी बीमारी का जल्दी दूर होना पसंद नहीं करता है। इस वास्ते इस बात का ख़्याल राधास्वामी दयाल की शरण वाले जीवों को हमेशा रखना चाहिए कि उनके कर्म तो राधास्वामी दयाल सहज में काटते जाते हैं, और जो उनके रिश्तेदारों के कर्म-भोग से उनको फ़िक्र और सोच पैदा होता है, उसमें भी मदद फ़रमाते हैं, और जो किसी परमार्थी के रिश्तेदारों को उससे, या उसको उनसे, सच्ची प्रीति है, तो उनके भी कर्मों के कटने में दया के साथ मदद होती है, यानी उनको भी दुख कम होता है और उस दुख में भी अपने परमार्थी रिश्तेदार के दर्शन और बचन से किसी क़दर तकलीफ़ का घटाव और बचाव होता है, और अन्तर में ताक़त और शीतलता प्राप्त होती है ॥

२०—सिवाय उन तीन सबब के जिनका हाल ऊपर लिखा गया, एक और ख़ास सबब है कि जिसमें अभ्यासी

को थोड़ी-बहुत बीमारी या रंज ख़ौफ़ या फ़िक्र की वजह से तकलीफ़ होती है ॥ और

२१—वह यह है कि राधास्वामी दयाल, वास्ते घटाने या दूर करने किसी ख़ास विकार, मन और इन्द्रियों के, या ढीला करने कोई बंधन अंतरी या बाहरी के, या निर्मल करने और चढ़ाने मन और सुरत के, या कम करने या ख़ारिज करने किसी माद्दे या मवाद नाक़िस के, कोई ख़ास बीमारी या तकलीफ़ देह में, या रंज, या अपने मन पर ग़ुस्सा, या सोच और फ़िक्र, या ख़ौफ़ दिल में, अपनी मौज से पैदा करके, अपने निज सेवक और सच्चे प्रेमी अभ्यासी की गढ़त फ़रमाते हैं । ऐसी हालत कोई बड़भागी प्रेमियों को नसीब होती है और उस में उनको ऐसी घबराहट या तकलीफ़ नहीं होती कि निराशा पैदा होवे या अपने भजन और ध्यान की, बैठे बैठे या लेटे-लेटे कार्रवाई न कर सकें और उसमें थोड़ा या बहुत रस न पावें । और जो कभी इस क़दर तकलीफ़ होवे कि ध्यान और भजन न बन सके, तो राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से ऐसे निज प्रेमियों के मन और सुरत को अंतर में आप ताने हुए और खींचे हुए रखते हैं कि वह हालत भजन और ध्यान से ज़्यादा है, क्योंकि उस में मन सिमटा हुआ रहता है और सुरत ऊपर की तरफ़ को खिंची हुई और तनी हुई रहती है कि जिसके सबब से देह को तकलीफ़ बहुत कम मालूम होता है और अंतर में एक तरह का आराम और आनंद बराबर मिलता रहता है ॥

२२–ऐसी मौज की पहिचान हर एक प्रेमी को, वक़्त पैदा होने बीमारी या तकलीफ़ के नहीं हो सकती, लेकिन जो वह अपने हाल और राधास्वामी दयाल की दया की निरख और परख करता रहता है, तो उसको, बाद गुज़र जाने ऐसी हालत के, किसी क़दर पहिचान और समझ इस बात की कि वह हालत मौज और दया से पैदा हुई थी, आ सकती है, और फिर वह इस दया और उसके फ़ायदे को देख कर, राधास्वामी दयाल के चरणों में शुक्र अदा करेगा और उनकी महिमा को, कि किस-किस युक्ति से अपने निज प्रेमियों को गढ़त और सम्हाल फ़रमाते हैं, थोड़ा-बहुत जान कर, अपनी बड़भाग्यता पर ख़ुश होगा कि राधास्वामी दयाल ने उसको अपना दया-पाल बनाया या बनाते जाते हैं ॥

२३—बानी का पाठ, वास्ते मज़बूती शरण और हासिल होने अन्तरी दया और मदद के, हर हालत में ज़रूर है, और जो ज़रूरत होवे तो अपने से ज़्यादा दर्जे के सतसंगी से, जो क़रीब होवे और उससे आसानी के साथ मेला हो सके, ऐसी हालत का ज़िक्र करके मदद लेना भी मुनासिब है ॥

२४—जिस किसी को सतगुरु का संग प्राप्त है, उसको किसी दूसरे से अपने हाल का कहना ज़रूर न होगा। वह ख़ुद सतगुरु से अपना हाल अर्ज़ करे, तो उनकी मेहर और दया के भरे हुए बचन और नज़र से उसको जल्दी फ़ायदा होवेगा ॥

२५–यहाँ तक उन जीवों की हालत का ज़िक्र हुआ कि जो सच्चे होकर परमार्थ में लगे हैं, और राधास्वामी दयाल की जैसे-तैसे शरण में आकर थोड़ी-बहुत तवज्जह और होशियारी के साथ हर रोज़ नियम से अभ्यास करते हैं, और दुनिया के दुक्ख और चौरासी का डर उनके दिल में थोड़ा-बहुत क़ायम हो गया है। पर जो जीव कि नियम से रोज़मर्रा अभ्यास नहीं करते, यानी जब चाहा तब अभ्यास किया और जब चाहा तब कुछ अर्से के लिए छोड़ दिया, या जिनकी प्रीति और प्रतीत सतगुरु राधास्वामी दयाल के चरणों में अभी साधारण है और दुनिया के भोग और विलास और औज-मौज की चाह मन में ज़बर बसी हुई है, उनको अपने अभ्यास की हालत और दर्जे की ख़बर भी नहीं होती, और वे, भजन और ध्यान के वक़्त अक्सर गुनावन यानी ख़्यालों में बहते रहते हैं और फिर उनको उसकी ख़बर भी नहीं होती, या मालूम होने पर इस क़दर ताक़त नहीं रखते या कोशिश नहीं करते कि गुनावन को दूर करें या थोड़ा-बहुत हटावें, तो ऐसे जीव अभी अपने संसारी कर्मों के चक्कर में पड़े हुए हैं, और अपने वास्ते आप विघ्न और बखेड़े पैदा कर लेते हैं कि जिससे अभ्यास का रस उनको जैसा कि चाहिए, नहीं मिलता। ये निपट कर्म और काल और मन और माया के वश में हैं, और इनकी तरफ़ सतगुरु राधास्वामी दयाल की तवज्जह भी अभी कम है। जो वे कुछ अर्से में समझ-बूझ कर और होशियार होकर अभ्यास और सतसंग करने लगें, तो बेहतर है, नहीं तो जब

मौक़ा होगा और जिस क़दर मुनासिब समझा जावेगा, राधास्वामी दयाल उनकी भी सम्हाल फ़रमावेंगे। पर उनको थोड़ी-बहुत तकलीफ़ होगी, क्योंकि ऐसे जीव बिना थोड़ा-बहुत दुख पाये, और दुनिया के पदार्थों का, अपनी नादानी और बे-परवाही के सबब से, थोड़ा-बहुत नुक़सान कराये होशियार नहीं होते। वे, सतगुरु राधास्वामी दयाल के हुक्म को चित्त से चेत कर नहीं सुनते और नहीं मानते हैं। इस वास्ते, जब उनके सम्हाल की मौज होती है, तब उनके साथ इसी क़िस्म का बर्ताव किया जाता है और तब ही इनको सच्चा होश आता है और आइन्दा को दुरुस्ती के साथ बर्ताव करते हैं यानी दुनिया के कारोबार के साथ सच्चे परमार्थ की कार्रवाई भी थोड़ी-बहुत सचौटी और दुरुस्ती के साथ करने लगते हैं। और फिर उनकी भी हालत बदलती जावेगी और आहिस्ता-आहिस्ता कोई दिन में, वे भी दया-पात्र हो जावेंगे यानी उन पर भी राधास्वामी दयाल की मेहर होती जावेगी और फिर सच्चे प्रेमियों के मुआफ़िक़ उनकी भी रक्षा और सम्हाल शुरू हो जावेगी॥

२६—अब समझना चाहिए कि यह हालत मन के खिलने और भिंचने की, सब अभ्यासियों पर, दौरे के तौर पर आती रहती है। और यह भी दया का निशान है कि जब २ भजन और ध्यान में बराबर रस मिलता जाता है, तब २ मन मगन रहता है, और जब रस में कुछ कमी हो जाती है या दुरुस्ती के साथ अभ्यास नहीं बन पड़ता है या किसी क़िस्म की तरंगें मन में पैदा होती हैं, जो ज़ाहिरा

विघ्नकारक हैं, तब मन में एक क़िस्म की बेकली और तड़प पैदा होती है, और वास्ते प्राप्ति दया के, वह अभ्यासी बिनती और प्रार्थना करता है, तब फिर थोड़ा-बहुत रस मिलना शुरू हो जाता है। इस में यह फ़ायदा है कि अभ्यासी के चित में हमेशा दीनता बनी रहती है और अपने हाल और मन की चाल को देख कर, अपने अंतर में शर्माता और झुरता रहता है, और अहंकार अपनी बड़ाई और अभ्यास की तरक़्क़ी का, मन में नहीं आता, और बिरह वास्ते प्राप्ति ज़्यादा रस और आनंद के जागती रहती है। इसी से तरक़्क़ी अभ्यास की होती रहती है। और जो एक सी हालत रही आवे तो मन अंतर में मगन होकर जिस दर्जे तक कि पहुँचा है, वहीं रहा आवेगा और आगे को चाल नहीं चलेगी यानी तरक़्क़ी नहीं होगी ॥

२७—बेकली और तड़प जिस क़द्र कि रस मिला है, है, उसको हज़्म कराने वाली और आइन्दा को ज़्यादा दया हासिल कराने वाली और आगे को रास्ता चलाने वाली है। जो यह हालत न आवे तो उतने ही रस और आनन्द में मन को शान्ति आ जावे और आगे की तरक़्की बन्द हो जावे। इस वास्ते ऐसी हालत में, अभ्यासी को ज़्यादा घबराना या निराश नहीं होना चाहिए, बल्कि ज़्यादा दया का उमीदवार होकर, ऐसे वक़्त में, जिस क़द्र बने, कोशिश और मेहनत वास्ते दुरुस्ती से करने भजन और ध्यान के, करना चाहिए, और मन की बे-फ़ायदा और ना-मुनासिब तरंगों को रोकना और हटाना मुनासिब है ॥

२८—ये तरंगें भी थोड़ी-बहुत ज़रूर उठेंगी, क्योंकि अभ्यासी जिस क़दर रास्ता तै करता है, उसी क़दर काल और माया से उसकी लड़ाई होती जाती है। और यह दोनों, नई २ तरंगें काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार की, जिनकी जड़ असल में त्रिकुटी के मक़ाम पर है, उठा कर, अभ्यासी को गिराना और उसका रास्ता रोकना चाहते हैं। इस वास्ते अभ्यासी को मुनासिब है कि सत-गुरु राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर, उन तरंगों को काटता और हटाता जावे और जो भूल-चूक हो जावे या उन तरंगों के साथ लिपट कर गिर जावे या फिसल जावे, तो उसका कुछ अन्देशा नहीं है। चाहिए कि फिर होशियार होकर अपना काम मज़बूती और दुरुस्ती से करे जावे तो राधास्वामी दयाल की दया से आहिस्ता २ इन दोनों के बल को तोड़ता जावेगा, और एक दिन उन पर फ़तह पावेगा ॥

२९—ऐसी हालत के पैदा करने और काल अंग की ताक़त दिखाने में यह मौज है कि अभ्यासी को मालूम हो जावे कि काल और उसके दूत किस क़दर बली हैं, और राधास्वामी दयाल अपनी दया से, किस २ युक्ति से, उनके बल और ताक़त को तुड़वा कर या ढीला करके, अपने सच्चे प्रेमियों की चाल बढ़ाते जाते हैं, और सफ़ाई मन और सुरत की करा कर, ऊँचे देश में बास के लायक़, उनकी गढ़त करा कर, बनाते जाते हैं ॥

३०—जो कोई सतगुरु स्वरूप को अगुवा करके

चलेगा, उसको इस क़िस्म के विघ्न बहुत कम पेश आवेंगे, फिर भी काल और माया थोड़ा-बहुत अपना बल और ज़ोर दिखावेंगे और उस अभ्यासी से आप डरते रहेंगे। फिर राधास्वामी दयाल की दया से सब विघ्न आसानी से कटते और दूर होते जावेंगे और एक दिन रफ़्ता २ वह अभ्यासी इनको जीत कर अपने निज देश में पहुँच जावेगा।

३१—कुल्ल अभ्यासी सतसंगियों को चाहिये कि नीचे के लिखे हुए शब्द के मतलब को समझ कर, जहाँ तक बन सके, उसके साथ, मन से, मुवाफ़िक़त करें, और सतगुरु राधास्वामी दयाल की मौज के अनुसार जिस क़दर हो सके, बर्ताव करें॥

शब्द

गुरू की मौज रहो तुम धार।
गुरू की रज़ा सम्हालो यार॥ १॥
गुरू जो करें सो हित कर जान।
गुरू जो कहें सो चित्त धर मान॥ २॥
शुक्र ही करना समझ विचार।
सुक्ख दुक्ख देंगे हिकमत धार॥ ३॥
ताड़ और मार करें सोइ प्यार।
भोग सब इन्द्री रोग निहार॥ ४॥
कहूँ क्या दम २ शुक्र गुज़ार।
बिना उन और न करने हार॥ ५॥

दुखी चित से न हो दुख लार ।
सुखी होना नहीं सुख जार ॥ ६ ॥

बिसारो मत उन्हें हर बार ।
दुक्ख और सुक्ख रहो उन धार ॥ ७ ॥

गुरू और शब्द यह दोउ मीत ।
नहीं कोई और, इन धर चीत ॥ ८ ॥

यही सत पुर्ष यही कर्तार ।
लगावें तोहि इक दिन पार ॥ ६ ॥

बिना उन कोई नहीं संसार ।
देव मन सूरत उन पर वार ॥ १० ॥

करें वे नित्त तेरी सार ।
तेरे तन मन के हैं रखवार ॥ ११ ॥

शुक्र कर राख हिरदे धार ।
मिटावें दुक्ख सब ही झार ॥ १२ ॥

करें क्या मन तेरा नाकार ।
नहीं तू छोड़ता विष धार ॥ १३ ॥

भोग में गिरे बारम्बार ।
न माने कहन उनकी सार ॥ १४ ॥
इसी से मिले तुझ को दण्ड ।
नहीं तू मानता मतिमन्द ॥ १५ ॥
सहो अब पड़े जैसी आय ।
करो फ़रयाद गुरु से जाय ॥ १६ ॥

पकड़ फिर उनहीं को तू धाय।
करेंगे वोही तेरी सहाय ॥ १७ ॥
बिना उन और नहीं दरबार।
रहो उन चरणों में हुशियार ॥ १८ ॥
गुनह तुम किये दिन और रात।
गुरू की कुछ न मानी बात ॥ १९ ॥
इसी से भोगते दुख घात।
बचावेंगे वही फिर तात ॥ २० ॥
रहो राधास्वामी के तुम साथ।
लगे फिर शब्द अगम तुम हाथ ॥ २१ ॥

बचन बयालीसवाँ

करनी और शरण का वर्णन

१—जो जीव कि सतसँग में आये हैं, यानी जिन्होंने कि राधास्वामी मत को क़ुबूल किया है, उनकी दो क़िस्में हैं ॥

२—एक, करनी वाले, यानी वे कि जिनके मन में शौक़, दर्शन राधास्वामी दयाल के चरण का, तेज़ है, और जीते-जी अंतर में शब्द और स्वरूप का रस और आनन्द लेना चाहते हैं। ऐसे जीव जो कुछ अभ्यास यानी सुमिरन, ध्यान और भजन उनको बताया जावे, उनको नियम से, होशियारी और दुरुस्ती के साथ, रोज़मर्रा दो, तीन या चार

बार करते हैं और अपने मन और इन्द्रियों की रोक और सम्हाल, जिस से कि अभ्यास के वक़्त तरंगों और भोगों के किसी ख़्याल में न भ्रमें, करते रहते हैं, और दुनिया और उसके कारोबार और भोग-बिलास में, ज़रूरत के मुवाफ़िक़, और जहाँ तक बन सके, मुनासिब तौर पर बर्ताव रखते हैं, और धन और पुत्र और नामवरी और तन और मन को सुख और आराम देने की फ़िज़ूल चाहें कम उठाते हैं, और जहाँ तक मुमकिन होवे, सतगुरु राधास्वामी दयाल के बचनों के मुवाफ़िक़, अंतर और बाहर, कार्रवाई करते हैं ॥

२—दूसरे, शरण वाले, यानी वे जीव जो कि सतगुरु राधास्वामी दयाल के चरण और उनके सतसंग में प्रीति और प्रतीत रखते हैं, और राधास्वामी मत के क़ायदे और उसके अभ्यास को, अपनी समझ के मुवाफ़िक़, निर्णय करके, जिस क़दर मामूली तौर पर बन सकता है, अभ्यास भी करते हैं, और राधास्वामी दयाल को सर्व समर्थ और दयाल और दाता जान कर, उनके चरणों की शरण, अपनी प्रीति और प्रतीत के दर्जे के मुवाफ़िक़ लेकर, उनकी दया से अपना उद्धार और काल और कर्म और माया के घेर से निर्वार, दर्जे-ब-दर्जे, जैसे उनकी मौज होवे, चाहते हैं और उनकी दया के भरे हुए बचनों का सहारा और भरोसा रखकर, अपने मन में निश्चिन्त रहते हैं, और इस बात का यक़ीन रखते हैं कि जो राधास्वामी दयाल और उनके सतसंग की शरण आया, उसका उद्धार, वे अपनी दया से आहिस्ता २ ज़रूर फ़रमावेंगे । इन जीवों के मन में ज़्यादा

घबराहट और तड़प, वास्ते अन्तरी दर्शन या विशेष रस और आनन्द भजन और ध्यान के, नहीं है, और इस सबब से वे ज़्यादा कोशिश और मेहनत अभ्यास में नहीं करते हैं ॥

४—पहली क़िस्म के जीवों यानी करनी वालों की हालत हमेशा बदलती रहती है, यानी वे दिन २ अभ्यास में तरक़्क़ी करते रहते हैं। और इसमें कभी उनका मन अंतर में रस और आनन्द पाकर खिलता है, यानी मगन होता है, और कभी जब कुछ रस कम मिलता है, तो भिच जाता है, यानी उदास रहता है। और जो कि वे निरख-परख अपने मन और इन्द्रियों की चाल और राधास्वामी दयाल की दया की, हमेशा करते रहते हैं, इस सबब से भी कभी उनका मन थोड़ा-बहुत सुखी और कभी दुखी होता रहता है और चिंता और फ़िक्र यानी खटक अपने जीव के कल्याण की, हमेशा थोड़ी-बहुत उनको लगी रहती है ॥

५—पर, दूसरी क़िस्म के जीव, यानी शरण वाले, अपने उद्धार का फ़िक्र और बोझ राधास्वामी दयाल के चरणों में डाल कर और उनकी दया का आसरा और भरोसा लेकर, थोड़े-बहुत सदा निश्चिंत रहते हैं। उनके मन में इस तौर के चक्कर और हालतें, जैसा कि करनी वालों को पेश आती हैं, नहीं पैदा होती हैं। और जो कभी ऐसी कैफ़ियत उनके दिल पर गुज़रती है, तो उनका वे बहुत ख़्याल और सोच भी नहीं करते, और दया की मुख्यता करके, ऐसी हालत में बहुत घबराहट या चिंता उनको नहीं सताती है ॥

६—इस क़िस्म के जीव कसरत से हैं, और करनी वाले ब-निस्बत इनके, थोड़े हैं ॥

७—शरण वाले जीव अपने मन और इन्द्रियों की रोक-टोक भी बहुत नहीं करते और दुनिया और उसके कारोबार और भोग-बिलास के बर्ताव में सिर्फ़ मामूली तौर पर एहतियात करते हैं। पर वे अपनी प्रीति और प्रतीत को राधास्वामी दयाल के चरणों में, और भी उनके सतसंग में, जिस क़दर बने, बढ़ाते रहते हैं, और राधास्वामी दयाल की दया का हाल सुनकर और थोड़ी-बहुत अपने अंतर और बाहर की कार्रवाई में उस की परख करके, शरण को मज़-बूत और पक्का करते रहते हैं ॥

८—हुज़ूर राधास्वामी दयाल को सब जीवों की सम्हाल हर तरह मंज़ूर है। जो करनी वाले जीव हैं, वे उनके होशियार बालक हैं, और शरण वाले, उनके छोटे बच्चे हैं। वे इन दोनों की मदद करते हैं, बल्कि छोटे बच्चों की, जो अपनी करनी का बल छोड़ कर निरानिरी उनकी दया के आसरे हैं, ज़्यादा सम्हाल फ़रमाते हैं ॥

९—करनी वाले जीवों की प्रीति और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में बहुत गहरी और मज़बूत होती है जिस से कि वे किसी झकोले की हालत में नहीं डिगते हैं, यानी झोका नहीं खाते, और उनकी शरण भी गहरी और ऊँचे दर्जे की है जिससे कि कैसा ही चक्कर आवे, वह ब-दस्तूर क़ायम और मज़बूत रहती है, और वे, सिर्फ़ अपने ही जीव का

कारज नहीं बनाते, बल्कि बहुत से जीवों को और ख़ास कर शरण वालों को उनके जीव के उद्धार में बहुत मदद देते हैं ॥

१०—जब कोई भारी चक्कर या झकोला आवे, तो शरण वाले जीव अपनी कमजोरी के सबब से झोका खा जाते हैं, पर राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से ऐसी हालत में उनको, चाहे सीधे और चाहे करनी वालों की मारफ़त मदद देकर, उनकी रक्षा और सम्हाल करते हैं और दुनिया के भोग-विलास के फन्दों से भी उनको आहिस्ता-आहिस्ता बचा कर निर्मल करते जाते हैं, और हर झकोले के पीछे अनकी प्रीति और प्रतीत और शरण को ज़्यादा मज़बूती देते जाते हैं ॥

११–जीवों को चाहिए कि जैसे बने, तैसे, राधास्वामी दयाल के सतसंग में शामिल हो कर उनके चरणों की शरण लेवें, तो चाहे वह करनी के लायक़ होवें या शरण के अधिकारी होवें, राधास्वामी दयाल सब की, हर तरह से रक्षा और सम्हाल करके और दिन-दिन प्रीति और प्रतीत अपने चरणों में बढ़ाकर, अबेर-सबेर एक दिन निज घर में पहुँचाकर परमानंद को प्राप्त करावेंगे, और जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से बचा कर अमर-अजर कर देंगे, और अपने निज धाम में अपने दर्शन का परम बिलास बख़्शेंगे ।

१२—करनी वाले जीवों को इस क़दर ख़्याल रखना

चाहिए कि अभ्यास करके उनकी सुरत अन्तर में, दिन-दिन ऊँचे की तरफ़ चढ़ती जावे, और शरण वालों को इतनी होशियारी रखनी चाहिए कि उनके, इस बात के यक़ीन में, कि राधास्वामी दयाल अपनी दया से ज़रूर उनका बेड़ा पार लगावेंगे, ख़लल न पड़ने पावे। और दोनों क़िस्म के जीवों को बराबर कोशिश और एहतियात करना चाहिए कि उनकी प्रीति और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में दिन-दिन बढ़ती और मज़बूत होती जावे, और दुनिया और उसके भोग और पदार्थों से उनके मन और चित्त, जिस क़दर बन सके, दिन-दिन उपराम होते जावें ॥

१३—जो इस क़दर होशियारी दोनों क़िस्म के जीवों से बन आवेगी, तो कोई शक नहीं है कि राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से उन जीवों का कारज सहज में, उनके अधिकार के मुवाफ़िक़ बना कर, दर्जे-ब-दर्जे एक दिन परम पद में पहुँचावेंगे ॥

बचन तेतालीसवाँ

अभ्यास के ख़ास विघ्नों का वर्णन और उनके दूर करने और अभ्यास की तरक़्क़ी की युक्ति

१–जो लोग कि राधास्वामी मत में शामिल होकर अभ्यास कर रहे हैं, उनके लिए यह बचन कहा जाता है कि जब-जब भजन और ध्यान में रस कम मिले या मन बिल्कुल न लगे, तब उनको क्या यत्न करना चाहिये ॥

२—जब भजन में शब्द की आवाज़ साफ़ न मालूम होवे या बिल्कुल न सुनाई देवे, तब मुनासिब है कि उस वक़्त उसी आसानी से बैठे हुए ध्यान करे और जो थोड़े अरसे से इस तौर से शब्द न सुनाई देवे या आवाज़ साफ़ न आवे, तो ध्यान करके उठ खड़ा होवे, और फिर दूसरे वक़्त भजन करे, और जो फिर भी शब्द न मालूम होवे, तो ब-दस्तूर ध्यान करे और इसी तौर से हर रोज़ अभ्यास करे जावे, जब तक कि शब्द सुनाई न देवे। दो-चार रोज़ या एक हफ़्ते या दो हफ़्ते में राधास्वामी दयाल की दया से ज़रूर थोड़ी या बहुत आवाज़ मालूम पड़ेगी॥

३—जब भजन में बैठे और गुनावन यानी ख़्यालात दुनिया के पैदा होवें तो चाहिए कि उनको हटावे और दूर करे। और जो ऐसा न कर सके तो मुनासिब है कि उस वक़्त सुमिरन और ध्यान उसी आसन से बैठे हुए करे। जो ध्यान में मन लग जावेगा तो ख़्यालात दूर हो जावेंगे, और जो फिर भी मन ख़्यालात उठाता रहे, तो भजन और ध्यान छोड़ कर नाम का सुमिरन, धुन के साथ, या उस क़ायदे से जैसा कि बचन ३० में लिखा है, मन ही मन में, या थोड़ी आवाज़ के साथ, एक या पौन घंटे, सुरत और मन और दृष्टि को सहसदलकँवल के मक़ाम पर जमा कर, और आँखें बन्द करके करे। इस तौर से ज़रूर सुमिरन का रस आवेगा और मन निश्चल हो जावेगा। फिर इख़्तियार है कि चाहे ध्यान करे या भजन करे, और

जो शान्ति आ गई होवे, और तबियत ज़्यादा अभ्यास को न चाहे या फ़ुरसत न होवे तो उठ खड़ा होवे ॥

४—जब ध्यान और सुमिरन में बैठे और उस वक़्त मन न लगे या बे-फ़ायदा दुनिया के ख़्याल उठावे या काम, क्रोध, लोभ और मोह की तरंगें उठावे, तो भी मुनासिब है कि नाम का सुमिरन धुन के साथ या उस क़ायदे से, जैसा कि बचन ३६ में लिखा है, बाहर या अंतर आवाज़ के साथ, पौन घंटे या एक घंटे तक, करे। इस में ज़रूर थोड़ा-बहुत रस आवेगा और मन निश्चल हो जावेगा और कुछ प्रेम की हालत भी मालूम होवेगी। उस वक़्त फिर चाहे ध्यान करे या इस क़दर काम करके उठ खड़ा होवे।

५—जो मन अकसर भजन और ध्यान में नहीं लगता है और गुनावन ज़्यादा उठाया करता है, तो भी यही इलाज करना चाहिये, यानी हफ़्ते, दो हफ़्ते एक-एक घंटे नाम की धुन का उच्चारण करे। इस में सफ़ाई हासिल होगी और थोड़ा-बहुत रस आवेगा और फिर ध्यान और भजन थोड़ी-बहुत दुरुस्ती के साथ बन पड़ेगा, और जब इन दोनों में रस आने लगे, या मन थोड़ा-बहुत ठहरने लगे, तब नाम का सुमिरन धुन के साथ मौक़ूफ़ कर दे या दो बार, घंटे-घंटे भर करता रहे ॥

६—नाम की महिमा बहुत बड़ी है, पर बिना भेद और जुगत के, यह अभ्यास कुछ फ़ायदा नहीं दे सकता

है या यह कि जो फ़ायदा हासिल होगा, वह ऊपरी होगा और क़ायम नहीं रहेगा ॥

७—जबकि नाम के सुमिरन में मन लग जावे, और उस वक़्त जो शब्द सुनाई देवे या रोशनी नज़र आवे या आनंद प्राप्त होवे, उसको सच्चा संग शब्द या सतगुरु का समझना चाहिये, क्योंकि यह सब रूप यानी आनन्द रूप और शब्द स्वरूप और प्रकाश रूप सतगुरु के हैं, और जानना चाहिये कि इन में से कोई भी हासिल हुआ तो ज़रूर सतगुरु और शब्द के साथ मेला हो गया और अभ्यास दुरुस्त बना ॥

८—जब भजन के वक़्त आवाज़ बाईं तरफ से आवे, तो चाहिये कि तवज्जह अपनी ऊपर की तरफ़ को लगावे और बायें कान का दबाओ हल्का करे या बिल्कुल न दबावे या अँगूठा कान में से निकाल लेवे, तो आहिस्ता-आहिस्ता आवाज़ दोनों आँखों के मध्य में, ऊपर की तरफ़ से आती मालूम होगी और फिर उसी में चित्त लगावे ॥

९—जो फिर भी आवाज़ बाईं तरफ़ से ब-दस्तूर जारी रहे तो मुनासिब है कि उसी आसन में बैठे हुए सुमिरन और ध्यान करे और ऊपर की तरफ़ दूसरे या तीसरे स्थान पर मन और सुरत को जमावे, तो उम्मीद होती है कि थोड़े अर्से में, जो कोई ख़्याल दुनिया के नहीं उठेंगे तो आवाज़ का घाट बदल जावेगा, यानी ऊपर की तरफ़ से या दायें कान की तरफ़ से आवाज़ सुनाई देने

लगेगी, और चाहिए कि बायें कान की तरफ़ से तवज्जह बिल्कुल हटा लेवे ।।

१०—और जो इस तौर से अभ्यास करने पर भी आवाज़ का घाट या मक़ाम न बदले तो ब-दस्तूर सुमिरन और ध्यान करके उठ खड़ा होवे, और जब तक बाईं तरफ़ से आवाज़ आती रहे, तब तक हर रोज़ यही अभ्यास, सुमिरन और ध्यान का, भजन के आसन से बैठ कर जारी रक्खे । यक़ीन है कि राधास्वामी दयाल की दया से चन्द रोज़ में हालत बदल जावेगी यानी ऊपर की तरफ़ या दाईं तरफ़ से आवाज जारी हो जावेगी ।।

११—जब कभी भजन के वक़्त पिंडलियों में और पैरों में पटकन यानी दर्द इस क़दर पैदा होवे कि अभ्यासी बैठ न सके, तो चाहिये कि अपनी दोनों कुहनियाँ बैरागिन लकड़ी पर या चारपाई पर जमा कर दो-ज़ानू यानी ऊँट की तरह पिंडलियों को दबा कर बैठे, तो यक़ीन है कि पकटन यानी दर्द का असर कम हो जायेगा, और भजन और ध्यान में थोड़ा-बहुत लग कर, मन, रस पावेगा और जो इस तरह बैठने से भी आराम न मिले, तो चाहिए कि उठ कर पाँच-सात मिनट टहले, यानी चहलक़दमी करे और जब दर्द दूर हो जावे तो फिर, ब-दस्तूर, अभ्यास करे और जो इस पर भी आराम से न बैठा जावे, तो उस वक़्त भजन और ध्यान मौक़ूफ़ करके, सिर्फ़ नाम का सुमिरन धुन के साथ थोड़ी देर करके उठ खड़ा होवे और दूसरे वक़्त भजन और ध्यान करे ।

१२—मालूम होवे कि यह दर्द पिंडलियों में इस सबब से पैदा होता है कि सुरत की धार का सिमटाओ और खिंचाओ ऊपर की तरफ़ होता है और जब इस तरह सुरत पिंडलियों में से खिंचती है, तब रगें उसके वास्ते तड़पती हैं, सो आहिस्ता-आहिस्ता उनको, सुरत की धार के थोड़े-बहुत खिंचाव की बर्दाश्त होती जावेगी, और तब दर्द भी कम होता जावेगा और कोई तकलीफ़ अभ्यास में नहीं मालूम होगी ॥

१३—कभी-कभी ऐसा होता है कि भजन का अभ्यास करते-करते हाथ और बाहें और पिंडलियाँ और पैर सुन्न हो जाते हैं, यानी किसी क़दर बेकार हो जाते हैं और कभी उंगलियाँ सुन्न होकर छूट जाती हैं, तो इस बात का कुछ अंदेशा नहीं है। उंगलियाँ छोड़ कर जो भजन बन जाय तो जिस क़दर हो सके, भजन करता रहे या जो आवाज़ न सुनाई देवे तो उस वक़्त ध्यान करता रहे और जब भजन कर चुके, तब थोड़ी देर हाथ और पैर फैला के ख़ाली बैठे और फिर उठ कर थोड़ी देर टहले, तो सब अंग ब-दस्तूर हो जावेंगे ॥

१४—हाथ-पैर सुन्न हो जाने का सबब भी वही सुरत का खिंचाव है और यह निशान है कि भजन दुरुस्ती के साथ बन रहा है, क्योंकि सच्चे भजन की महिमा यही है कि मन और सुरत का सिमटाओ और खिंचाओ नीचे की तरफ़ से ऊपर को होता जावे।

१५—कभी भजन या ध्यान की हालत में नींद का

सा ग़लबा मालूम होकर अभ्यासी बे-ख़बर हो जाता है। इस विघ्न का नाम लय है। यह नींद की हालत जो पैदा होती है, इसका नाम तुन्द्रा है जो कि जाग्रत और सोने के बीच की हालत हैं। शुरू अभ्यास में ऐसी हालत कभी किसी की होती है, सो उसको मुनासिब है कि जब नींद यानी बेहोशी आती हुई मालूम होवे, तो उसी वक़्त उठ कर दस-बीस कदम टहले, और जब सुस्ती दूर हो जावे, तब फिर अभ्यास में बैठ जावे, और जब कभी ज़्यादा सुस्ती मालूम होवे तब उठ कर मुँह धोवे और फिर अभ्यास शुरू करे, और ज़रूरत होवे तो भजन के वक़्त नाम का अंतरी सुमिरन भी करता जावे। इस तरह थोड़े अरसे में यह विघ्न दूर हो जावेगा ॥

१६—सिवाय लय के, तीन विघ्न और भी हैं जो अभ्यासी को दर्जे-ब-दर्जे सताते हैं और उनके नाम ये हैं–विक्षेप, कषाय, रसास्वाद। इनके अर्थ और दूर करने की तरकीब नीचे लिखी जाती है ॥

१७—विक्षेप, भजन या ध्यान में एक दम चित्त के हट जाने या झटका लगने का नाम है, जैसे किसी ने आकर आवाज़ देकर जगा दिया या बदन को हिला दिया या कोई मन की ज़बर तरंग ने एकाएक उठ कर भजन या ध्यान से अलेहदा कर दिया या किसी क़िस्म का असर, जैसे कीड़ा रेंगता है, या कोई जानवर, चींटी वग़ैरा काटती है, बदन पर मालूम होवे और अभ्यासी उसके दूर करने को भजन और ध्यान को एक दम छोड़

देवे। इसका जतन यह है कि आप लोगों को समझा देवे कि वक़्त भजन और ध्यान के, उसको कोई ज़ोर से न पुकारे। जो ख़ास ज़रूरत होवे तो आहिस्ता आवाज़ देवे या नरमी के साथ उसके पैरों को छू देवे तो अभ्यासी जान पड़ेगा॥

१८—और मन की तरंग के साथ जहाँ तक मुमकिन होवे, शामिल होकर भजन से जुदा न होवे यानी ग़ाफ़िल न हो जावे। इस क़िस्म के विघ्न कोई दिन अभ्यासी को पेश आते हैं। फिर जिस क़द्र उसका अभ्यास पकता और बढ़ता जावेगा, उसी क़द्र ये विघ्न दूर होते जावेंगे, यानी उसका असर अभ्यासी पर बहुत कम होवेगा॥

१६-कषाय, इस से यह मतलब है कि पिछले जन्मों के ख़्याल भजन के वक़्त उठें कि जिनको अभ्यासी ने इस जन्म में न देखा है और न सुना है॥

२०—यह ख़्याल गुनावन के तौर पर पैदा होते हैं और बग़ैर थोड़ी देर अपना भोग दिये, दूर नहीं होते, पर जो अभ्यासी विरह और प्रेम अंग लेकर भजन करता है या गुरु स्वरूप को अगुवा करके अभ्यास करता है, उसको यह विघ्न कम सतावेंगे। इस वास्ते मुनासिब है कि जब ऐसे ख़्याल सन्मुख आवें, तो उस वक़्त, भजन के साथ ध्यान शामिल करे, तब कुछ अरसे में वे ख़्याल दूर हो जावेंगे॥

२१-रसास्वाद, इससे यह मतलब है कि अभ्यासी भजन के वक़्त थोड़ा रस पाकर मगन और तृप्त हो जावे

और फिर ज़्यादा अभ्यास में उससे न बैठा जावे या किसी क़दर ग़फ़लत आजावे ॥

२२—इसके दूर करने का जतन यह है कि जब ऐसी हालत होवे तो पाँच-चार मिनट के वास्ते भजन छोड़ कर और हाथ पैर फैला कर बैठ जावे या उठ कर दस-बीस क़दम टहले, तो आहिस्ता २ यह विघ्न दूर हो जावेगा ॥

२३—कभी ऐसा होता है कि भजन के वक़्त अभ्यासी की आँखों में या माथे में दर्द होने लगता है, तो ऐसे वक़्त चाहिए कि भजन और ध्यान छोड़ देवे। फिर दूसरे वक़्त तीन-चार घंटे बाद करे और जो मौक़ा होवे तो घन्टे-दो घन्टे आराम कर लेवे, इस से वह दर्द दूर हो जावेगा ॥

२४—यह दर्द इस सबब से पैदा होता है कि अभ्यासी ज़ोर देकर अपने मन और सुरत को ऊपर की तरफ़ खींचे या अपनी आँखों की पुतलियों को जोर से ऊपर की तरफ़ को ताने और चढ़ावे, सो यह बात मुनासिब नहीं है। अभ्यासी को चाहिये कि यह काम आहिस्तगी के साथ, जिस क़दर कि बर्दाश्त होती जावे, करे, और ज़्यादा ज़ोर न लगावे, क्योंकि ज़्यादा ज़ोर लगाने में ख़ून ऊपर की तरफ़ चढ़ता है और रगों में मामूल से ज़्यादा भर कर, दर्द पैदा करता है ॥

२५—जिस अभ्यासी को कि भजन और ध्यान में रस और आनन्द उसकी चाह के मुवाफ़िक़ मिलता है और दिन-दिन बढ़ता जाता है, उसको चाहिए कि जब

अभ्यास में बैठे, तब पहिले इरादा कर ले कि मैं इस वक़्त एक घन्टे या दो घन्टे या तीन घन्टे अभ्यास करूँगा, और उसके पीछे उठ कर फ़लाँ काम करूँगा। इस तरह उसके मन और सुर्त मुक़र्रर किये हुए वक़्त पर उतर आवेंगे और उस वक़्त अभ्यास पूरा हो जावेगा ॥

२६—जिस अभ्यासी की ऐसी हालत होती है कि कभी शब्द प्रकट होता है और कोई दिन पीछे गुप्त हो जाता है, और फिर थोड़े दिन पीछे सुनाई देने लगता है, तो यह कसर उसके पिछले या हाल के कर्मों और ख़्यालों की है, या यह कि अभ्यासी दस्तूर के मुवाफ़िक़ रोजमर्रा अभ्यास नहीं करता है, यानी कभी-कभी छोड़ देता है ॥

२७—इसका इलाज यह है कि अभ्यासी अपने (१) व्यवहार, (२) खान-पान, (३) और अपने मन और इन्द्रियों की चाल-ढाल, (४) अपनी समझ और ख़्याल, और (५) अपनी प्रीति और प्रतीत को ग़ौर करके देखे और जाँच करे कि उसमें किस क़दर कसर है, और (६) अपने संग-कुसंग की भी एहतियात करे, क्योंकि संसारी और निन्दकों के संग से अभ्यास में विघ्न पड़ता है, और और इन बातों में कसर और नुक़्स नजर आवे तो उसको, प्रेमी अभ्यासियों का सतसंग या बानी का ग़ौर से पाठ करके दूर करे, और आइन्दा को अपने व्यवहार और बर्ताव और खान-पान और चाल-ढाल और ख़्यालों को सम्हाले, और राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत को बढ़ावे, और संशय और भ्रम को, जिस क़दर

जल्दी बने, अपने मन से निकाल देवे, और कुछ वक़्त अभ्यास का भी बढ़ावे। और जो भजन में रस न आवे तो ध्यान ज़्यादा करे और ध्यान में भी रस न आवे तो नाम का सुमिरन, धुन के साथ, करे। तब आहिस्ता-आहिस्ता यह विघ्न हट जावेगा और फिर बराबर भजन में शब्द सुनाई देने लगेगा, और ध्यान में भी थोड़ा-बहुत रस आवेगा ॥

२८—मालूम होवे कि हर एक अभ्यासी की हालत, चाहे मर्द होवे या औरत, मुआफ़िक़ उसके (१) पिछले और हाल ने कर्मों के, और भी मुआफ़िक़ उसके (२) शौक़ यानी विरह और प्रेम के, और भी मुआफ़िक़ उसकी (३) प्रीति और प्रतीत के दर्जे के, जुदा-जुदा है और उसी मुआफ़िक़ उसको अभ्यास में रस मिलता है और मन भजन, ध्यान और सुमिरन में लगता है। इस वास्ते हर एक को चाहिए कि अपनी हालत की निरख-परख करता रहे, और जिस बात में कसर देखे, उसको दूर करने के लिए सचौटी के साथ यत्न करता रहे, और दया और मेहर की प्राप्ति के वास्ते, और क़ुसूरों की मुआफ़ी के लिए जब-तब प्रार्थना भी करता रहे, और आइन्दा को जिस क़दर बने, एतिहयात और होशियारी भी करता रहे, तो राधास्वामी दयाल की दया से वे कसरें आहिस्ता-आहिस्ता दूर होती जावेंगी और क़ुसूर भी कम बन पड़ेंगे, और उसी क़दर अभ्यास में ठहराओ और रस बढ़ता जावेगा और एक दिन सफ़ाई होकर, निर्मल आनन्द प्राप्त होगा,

और अपनी तरक़्क़ी दिन-दिन आप मालूम होती जावेगी ॥

२६—जो किसी को ध्यान में स्वरूप का दर्शन न होवे, या कभी-कभी होवे, तो इस से अपने मन में निराश न होवे या यह ख़्याल न करे कि मेरे अभ्यास में भारी कसर है। उसको चाहिए कि स्थान पर सुरत और मन को जमा कर स्वरूप का ख़्याल करता रहे, तो आहिस्ता-आहिस्ता मन और सुरत उस स्थान पर ठहरने लगेंगे और रस भी आवेगा। जो ठहराओ नहीं होता या थोड़ा-बहुत रस नहीं मिलता तो जानना चाहिये कि शौक़ और प्रेम की कसर है, क्योंकि जो स्वरूप में प्यार होगा तो ज़रूर मन और सुरत की धार, उसका ख़्याल करते ही, स्थान की तरफ़ चढ़ेगी और ऊँचे चढ़ने में ज़रूर किसी क़दर आनन्द मिलेगा। इस वास्ते अभ्यासी को मुनासिब है कि प्रेम और शौक़ के साथ ध्यान करे, और जो प्रेम की कसर है तो सतगुरु राधास्वामी दयाल की महिमा और उनकी दया को दिल में याद करके थोड़ा-बहुत प्रेम पैदा करे। इसी तरह करते २, ध्यान में रस मिलने लगेगा और स्वरूप का दर्शन भी कभी २ अभ्यास के समय होता रहेगा। और नहीं तो कभी २ सुपने में ज़रूर दर्शन मिलेगा और उस दर्शन को सच्चा और असली दया और मेहर का निशान समझना चाहिए। ऐसे दर्शन के मिलने से अभ्यासी की प्रीति और प्रतीत बढ़नी चाहिये।

३०—अभ्यासी को चाहिए कि इसी तरह, जैसा कि ऊपर लिखा है, आहिस्ता २ अपना ध्यान बढ़ाता जावे, यानी एक स्थान पर वर्ष-दो-वर्ष या कम या ज़्यादा अभ्यास करके, और इसी तरह पर, दूसरे स्थान पर ध्यान लगावे और फिर इसी तरह स्थान २ पर ध्यान का अभ्यास करता हुआ दसवें द्वार या सत्तलोक तक अपनी सुरत को पहुँचा कर ठहरावे। तो इस तरह इतने मक़ाम तक, जीते-जी, उसका रास्ता साफ़ हो जावेगा और सुरत, सूक्ष्म अंग से, वहाँ पहुँच कर ऊँचे देश का रस और आनन्द पावेगी॥

३१—प्रेमी अभ्यासी, जो चाहे तो शुरू ही से एक एक स्थान पर थोड़ी २ देर अपने मन और सुरत को ठहरा कर सत्तलोक तक बराबर हर रोज़ ध्यान कर सकता है, और जब पोथी में से भेद के शब्दों का पाठ करे या सुने तो उस वक़्त जैसे-जैसे उन शब्दों के स्थानों का ज़िक्र आता जावे, उसी मुआफ़िक़ स्थान २ पर अपने मन और सुरत से, स्वरूप का ध्यान करे, तो उसको पाठ का रस भी बहुत आवेगा और उसके ध्यान का अभ्यास भी हर एक स्थान पर जल्दी पकता और बढ़ता जावेगा, यानी एक-दम सत्तलोक तक के ध्यान का रास्ता जारी हो जावेगा। और जो ध्यान के साथ (अभ्यास के समय) नाम का सुमिरन भी करता जावेगा तो और कोई ख़्याल नहीं उठेंगे और अभ्यास में विघ्न नहीं डालेंगे। पर इस तरह का अभ्यास, बग़ैर गहरे शौक और प्रेम के, दुरुस्ती और आसानी से नहीं बन पड़ेगा॥

बचन चवालीसवाँ

राधास्वामी मत की सहज जुगत का सहज अभ्यास

१—राधास्वामी मत में जो जुगत (जैसे सुमिरन, ध्यान और भजन) बताई गई है, वह जुगत भी सहज है और उसका अभ्यास भी सहज है, यानी सिर्फ़ तवज्जह का शौक़ के साथ बदलना, यही अभ्यास है ॥

२—जैसे सब जीवों की तवज्जह संसार और उसके पदार्थों की तरफ़, इन्द्रियों के द्वारे, बाहर की तरफ़ को हो रही है, इसी तरह निज घर यानी कुल मालिक राधास्वामी दयाल के धाम का भेद लेकर अपके घट में, ऊपर की तरफ़, शौक़ के साथ तवज्जह करना, यही अभ्यास है ॥

३—पहले प्रेम पत्रों में बयान हो चुका है कि कुल रचना धारों की है, और ये धारें बहुत सी तो निहायत सूक्ष्म हैं कि देखने और छूने में नहीं आती हैं, जैसे दृष्टि की धार, आवाज़ की धार और ख़ुशबू की धार वग़ैरा। और निहायत स्थूल रचना में धारें अर्क़ रूप और ख़ून रूप और तार २ और रग २ हो गई हैं। और यह हाल देह में अंग २ और उनके मांस में, और दरख़्तों में डाल-डाल और उनकी चमड़ी या छाल में साफ़ दिखलाई देता है। हर एक डाली और उसके तारों और बदन में हर एक रग और नली बतौर नल के है, यानी अन्दर में पोले हैं कि जिनमें होकर सूक्ष्म धारें जारी रहती हैं ॥

४—जब मन में कोई तरंग उठती है यानी चाह पैदा होती है तो पहिले, अन्तर में हिलोर होती है, और फिर वह तरंग रूप खड़ी हो कर, जिस इन्द्रिय द्वारे उस चाह की कार्रवाई होनी चाहिए, उसी इन्द्रिय की तरफ़, धार रूप हो कर चलती है, और इन्द्रिय के स्थान से जिस काम या पदार्थ की चाह है, वह धार बाहर निकल कर उसी काम या पदार्थ में लग जाती है। इसी तरह से कुल कार्रवाई देह और दुनिया के कामों की, धारों के वसीले से, जारी है। देह में अन्तरी कामों के वास्ते वह काम करने वाली धारें, देह के अंग-अंग में फैलती हैं। और बाहर के कामों में वे धारें इन्द्रिय द्वारों से बाहर फैलती हैं। ये सब धारें खर्च में लिखी जाती हैं, क्योंकि इनमें से कोई भी उलट कर अपने भंडार में नहीं आती हैं ॥

५—जो कोई कहे कि जो धारें इन्द्रियों के द्वारे खर्च होती हैं, वे तो वापस नहीं आती हैं, पर अनेक धारें बाहर से इन्द्रियों के द्वारे अन्दर में दाखिल होती हैं, तो यह बात सच है। पर मालूम होवे कि जिस क़दर धारें बाहर से अन्दर में आती हैं, वे, ब-निस्बत उन धारों के, जो बाहर निकलती रहती हैं, बहुत ओछी और स्थूल और चैतन्यता में बहुत कम-ताक़त वाली होती हैं, और जो कुछ कि खर्च हो रहा है, वह उसका पूरा-पूरा एवज़ नहीं दे सकती हैं, क्योंकि वे सब धारें, बहुत करके, जड़ पदार्थों या कम दर्जे के चैतन्य से आती हैं। और जो धारें कि बाहर के तत्वों से आती हैं, वे अलबत्ता स्थूल देह के मसाले की किसी क़दर मददगार हैं। पर सुरत-चैतन्य को इन में से किसी धार का भी फ़ायदा नहीं पहुँचता है ॥

६—और तन, मन और इन्द्रियों को भी इन धारों से बहुत कम मदद मिलती है। अलबत्ता, प्राण को बाहर की ताज़ा हवा बहुत मदद देती है यानी उसको कसाफ़त को दूर करके ताज़गी देती है और उसका असर, किसी क़दर, मन तक भी पहुँचता है। यहाँ खान-पान का कुछ जिक्र नहीं है ॥

७—यहाँ पर इस क़दर बयान करना ज़रूर है कि बहुत से बारीक और सोच-विचार और अक़्ल के कामों में, सुरत की धार की ज़्यादा मदद इन्द्रिय द्वारों पर आती है, क्योंकि बग़ैर सुरत की धार के, कोई आदमी कोई काम, और ख़ास करके अक़्ल और सोच-विचार के काम नहीं कर सकता है, और बाहर से जो धारें अन्दर आती हैं, उन में कोई कोई सुरत की धार और बाक़ी सब सामान्य चैतन्य की धारें हैं ॥

८—सुरत की धार से मतलब यह है कि जब यह आदमी अपने से विशेष चैतन्य यानी ज़्यादा समझदार से मदद लेवे ॥

६—और परमार्थ में संत सतगुरु और साध महा चैतन्य पुरुष हैं। उनसे जो मन और सुरत को ताक़त मिलती है, उसका तो कुछ बयान नहीं हो सकता। उसका हाल परमार्थ के सच्चे शौक़ वाले, जिनको प्रेमी और भक्त जन कहते हैं, ख़ूब जानते हैं कि सतसंग में बैठ

कर दर्शन और बचन में किस क़द्र रस और आनन्द प्राप्त होता है ॥

१०—अब समझना चाहिए कि जिस तरफ़ जिस आदमी की तवज्जह होती है, उसी तरफ़ से उसके मन से धार प्रकट होकर रवाँ होती है, और जिस क़द्र उसका शौक़ तेज़ होता है, असी क़द्र ताक़तवर और मज़बूत धार जारी होकर उसकी चाह के पूरा करने के लिये जो यत्न मुनासिब और ज़रूरी है, करती है ॥

११—इसी तरह जब किसी के मन में परमार्थ की चाह शौक़ के साथ पदा होगी, तो जो उसको राधास्वामी मत के मुआफ़िक भेद अपने निज घर का और महिमा सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल की, और हाल रास्ते और मंज़िलों का और जुगत चलने की, संत सतगुरु या साधगुरु या उनके सच्चे प्रेमी सतसंगी से मालूम हुई है, तो उसकी चाह के साथ ब-दस्तूर धार प्रकट होकर निज घट में ऊपर की तरफ़ ज़रूर रवाँ होगी। और जिस मंज़िल का उसने, शुरू में, ठेका मुक़र्रर किया है, वहाँ तक थोड़ा-बहुत ज़रूर पहुँचेगी और ऊँचे देश की चढ़ाई का थोड़ा-बहुत रस ज़रूर आवेगा यानी हल्कापन और शीतलता थोड़ी-बहुत मालूम पड़ेगी। पर शर्त यह है कि उस वक़्त दूसरी धार न उठे यानी देह या दुनिया की तरफ़ का का कोई ख़्याल मन में न आवे, नहीं तो जो धार ऊपर की तरफ़ को जारी हुई है, वह गिर पड़ेगा, और नई धार

उस ख़्याल के मुवाफ़िक़ नीचे या बाहर की तरफ़ को जारी हो जावेगी और वह परमार्थी रस और आनन्द फ़ौरन जाता रहेगा ॥

१२—अब मालूम होना चाहिये कि राधास्वामी मत का अभ्यास किस क़दर सहज है, यानी सिर्फ़ तवज्जह और उसकी तरफ़ का बदलना है ॥

१३—सब आदमी अपनी २ चाह के मुआफ़िक़ जो काम करना चाहते हैं, उसको तवज्जह के साथ करते हैं। पर दुनिया के कामों में उनके मन और सुरत की धार बाहर की तरफ़ बहती है और ख़र्च में दाख़िल होती है। जो वही आदमी परमार्थ की महिमा, और उसके हासिल करने की ज़रूरत समझ कर और उसका थोड़ा-बहुत यक़ीन लाकर शौक़ के साथ उसकी चाह उठावे, तो तवज्जह उनकी, राधास्वामी मत के भेद के मुआफ़िक़, घट में ऊपर की तरफ़ बदलेगी, और ब-दस्तूर मन और सुरत की धार, उस तरफ़ को उठ कर रवाँ होगी। उस धार के उठने और चढ़ने में ज़रूर शीतलता और आराम मिलेगा और दिन २ जिस क़दर ऊँचे चढ़ाई होती जावेगी, रस और आनन्द बढ़ता जावेगा और एक दिन ऐसा अभ्यासी अपने निज घर में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होकर अमर-अजर हो जावेगा और अपने जीते जी, अपना सच्चा उद्धार आहिस्ता २ होता हुआ आप देखता जावेगा।

१४—दुनिया के कामों और उनकी चाहों और ख़्यालों में तवज्जह करना स्वार्थ कहलाता है और इसका फल, देह के सँग दुख-सुख भोगना और बारम्बार जन्म-मरण की तकलीफ़ उठाना है। और परमार्थ की चाह पैदा करके, घट में, अपने घर की तरफ़, तवज्जह के साथ धार का जारी करना, परमार्थ कहलाता है। और इसका फल देह और दुनिया के दुख-सुख से दिन २ बचाओ होता जाना और जन्म-मरण के चक्कर से बिलकुल छूट जाना, और दिन २ ऊँचे देश का रस और आनन्द ज़्यादा से ज़्यादा पाते हुए, अपने सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर अमर आनन्द को प्राप्त होना है ॥

१५—परमार्थ का काम कोई नई बात नहीं है। जैसे दुनिया के कामों में बाहर की तरफ़ तवज्जह की जाती है, ऐसे ही अपने जीव के कल्याण के वास्ते अन्तर की तवज्जह करना है ॥

१६—तवज्जह के साथ काम करना हर कोई जानता हैं, कुछ सिखलाने की ज़रूरत नहीं है। सिर्फ़ भेद लेकर शौक़ के साथ अन्तर में तवज्जह करना, इसी क़द्र काम है कि जिस से हमेशा का आनन्द मिलना और, हमेशा को दुक्खों से बचना, मुमकिन है ॥

१७—जो कठिनता और मुशकिल इस काम में, यानी परमार्थी अभ्यास में मालूम होती है, वह कमी

यक़ीन और कमी शौक़ और कमज़ोरी चाह और कमी तवज्जह के सबब से पेश आती है, या यह कि पुरानी आदत के मुआफ़िक़ परमार्थी काम के वक़्त दुनिया के ख़्याल ले बैठे तो अलबत्ता पूरा २ रस नहीं मिलेगा और शौक़ और चाह भी और उसके साथ तवज्जह भी हलकी रहेगी। जैसे कि दुनिया के जिन कामों में लाग नहीं होती या कम होती है, तो वे, जैसे चाहिए, दुरुस्त नहीं बनते, ऐसे ही जो परमार्थ में भी चाह और तवज्जह कम होगी तो धार कमज़ोर और दुबली उठेगी, और बीच में दुनिया के ख़्यालों के सबब से गिर-गिर पड़ेगी, तो परमार्थी काम भी जैसा चाहिए दुरुस्त नहीं बन पड़ेगा यानी पूरा-पूरा रस नहीं आवेगा और शौक़ नहीं बढ़ेगा ॥

१८—इस वास्ते, परमार्थी जीवों को चाहिए कि अपनी तवज्जह के बदलने में होशियारी और अहतियात, जिस क़दर बने, वक़्त अभ्यास के, करते रहें यानी परमार्थी काम के साथ, जहाँ तक बने, संसारी काम न मिलावें, और संत सतगुरु के सतसंग और बानी-बचन से मदद लेकर, अपना अभ्यास, जिस क़दर हो सके, दुरुस्ती के साथ करते रहें, और सच्चे माता-पिता कुल-मालिक राधास्वामी दयाल की शरण दृढ़ करें, तो उनकी मेहर और दया से, और इनकी मेहनत और कोशिश से, दिन-दिन काम बनता जावेगा और प्रीति और प्रतीत चरणों में बढ़ती जावेगी, और फिर काम भी बहुत आसान हो जावेगा, क्योंकि जब तक प्रीति और प्रतीत मामूली दर्जे

की है, तब ही तक दिक़्क़त और कठिनता अभ्यास में मालूम होती है, और जब ये दोनों बढ़ने लगीं, तब, दिन-दिन अभ्यास में आसानी होती जावेगी और रस और आनन्द भी बढ़ता जावेगा और एक दिन काम पूरा हो जावेगा ॥

बचन पैंतालीसवाँ

सवालात एक सतसंगी की तरफ़ से, और उनके जवाबात

१—सवाल—बालक, गर्भ के अन्दर स्वाँस लेता है या नहीं ? जो लेता है तो कैसे उसकी गुज़रान होती है ? और जो नहीं लेता है तो कहाँ और किस हालत में रहता है ?

जवाब—बालक, गर्भ में स्वाँस नहीं लेता है, और सहसदल कँवल के स्थान पर उसका जीव-चैतन्य समाधि में रहता है, यानी जोत का दर्शन करता है और उस मक़ाम का शब्द सुनता है ॥

२—सवाल—बाज़े कहते हैं कि आठवें महीने में बालक को गर्भ में भूख और प्यास लगती है और उसे ग़ल्ले का अर्क़ खाने को मिलता है। जो ऐसा होता है तो मल भी पैदा होता होगा, यह बात सही है या क्या ?

जवाब—जब बालक का शरीर गर्भ में बनता जाता है तो उसका मसाला माता का ख़ून है, और जब उसकी देह

पूरी बन जाती है, तब उसको माता की ग़िज़ा या अहार का ख़ुलासा, जो अर्क़ रूप होता है, उसकी देह के बढ़ाओ और पुष्ट करने के वास्ते, उस नल के रास्ते से, जो कि नाफ़ से लगा होता है, मेदे में पहुंचता है। इस अर्क़ के हज़्म करने में मल बहुत खफ़ीफ़ पैदा होता है और वह उस नाल में, जो मेदे से गुदा-चक्र तक आई है, जाम होता जाता है, बल्कि वक़्त पैदा होने बालक के, दाई थोड़ा मल उंगली से निकाल देती है ॥

३—सवाल—कोई २ कहते हैं कि बालक को गर्भ में पिछले जन्मों की याद रहती है, लेकिन पैदा होते वक़्त वह याद भूल जाती है, यह बात किस क़दर सही है और भूल क्यों कर होती है?

जबाव—जो कि गर्भ में बालक के जीव की बैठक सहस दल कँवल के मक़ाम पर होती है, वहाँ उसको सब जन्मों का हाल आईने के मुआफ़िक़ रोशन नज़र आता है और उस वक़्त वह पक्का इरादा करता है कि सिवाय मालिक के चरणों की भक्ति के, दूसरे काम नहीं करूँगा। पर जब जीव, यानी सुरत उसकी, वक़्त पैदाइश के, देह में नीचे के मक़ाम पर उतर आती है, वहाँ तमोगुण के सबब से अंधकार छाया रहता है और बालक को वह सब याद भूल जाती है। और दुनिया में आकर, जैसा कि उसके पिछले कर्मों के मुआफ़िक़ संग मिलता है और जैसा कि मन का मसाला वह संग लाता है, उसी मुआफ़िक़, उसका स्वभाव

और आदत होता जाती है, और वैसी ही कार्रवाई करता है ॥

बचन छियालीसवाँ

जो सवाल कि सफ़ा २८० पर लिखे हैं उनके जवाब, ख़ुलासा तौर पर, वास्ते समझाने सतसंगियों के, लिखे जाते हैं

१——सवाल—यह दुख की रचना किसने करी और क्यों करी और उसका क्या फ़ायदा है ?

जवाब—(क) यह रचना काल-पुरुष ने करी । उसके ऐसी चाह थी कि मैं भी सत्तलोक के मुवाफ़िक़ दूसरी रचना करूँ और उसका राज भोगूँ । सो, सत्तपुरुष से आज्ञा माँग कर, नीचे के देश में, जहाँ कि चैतन्य, निर्मल और मलीन माया के साथ मिला हुआ था, आन कर, उसने तीन लोकों की रचना करी । और यहाँ, माया यानी तमोगुण की मिलौनी के सबब से (जिसके मसाले से जीवों को देह तैयार हुई है) जीवों को दुख-सुख अवश्य भोगना पड़ता है । और सुकर्म और कुकर्म जीवों से बनते हैं, और उसी के मुआफ़िक़ फल मिलता है, क्योंकि पिंड में बैठ कर जीव कर्म करने से बाज नहीं रह सकता और अपनी-अपनी चाह और ज़रूरत के मुआफ़िक़, रजोगुण और तमोगुण के चक्र में, कर्मों के करने में, संग और सोहबत के असर से भलाई और बुराई का फ़र्क़ कम रहता है ॥

(ख)—जो कोई कहे कि तीन गुण कैसे पैदा हुए, तो जवाब यह है कि ऊपर से जो चैतन्य की धार आई और वह त्रिकुटी के स्थान पर माया से मिली, तब तीन धारें हो गईं—यानी चैतन्य की धार सतोगुण, चैतन्य और माया की मिलौनी की धार रजोगुण, और माया की धार तमोगुण। और मालूम होवे कि तीनों धारों में, इस मक़ाम पर और उसके नीचे, थोड़ी-बहुत माया की मिलौनी है, लेकिन सतोगुण में चैतन्य प्रधान और रजोगुण में दोनों का बल बराबर है, और तमोगुण में माया प्रधान है। जो जीव सतोगुणी चक्र में पैदा हुए, वे संतोषी और शील-वान और परमार्थी हुए। और जो रजोगुणी चक्र में पैदा हुए, वे भोग-बिलास और ज़ाहिरी नुमाइश और मान-बड़ाई के चाहने वाले और समझ-बूझ और सफ़ाई के साथ कार्रवाई करने वाले, और ताक़त वाले, और थोड़ा परमार्थी अंग लिये हुए थे। और जो तमोगुणी चक्र में पैदा हुए, वे किसी क़दर कम-समझ और सुस्त और आलसी और हिर्सी और परमार्थ की तरफ़ से बे-ख़बर थे। और इनमें यह भी स्वभाव जबर रहा कि आप तो मेहनत और तवज्जह और कार्रवाई कम करें और दूसरों की मेहनत और कोशिश से जो फ़ायदा हासिल होवे, उसमें शरीक होने को तैयार रहें। इस सबब से इनकी तरफ़ से, ज़्यादती के काम ज़ाहिर हुए। और इनकी ऐसी हालत देख कर, दूसरी तरफ़ से भी बदले की कार्रवाई होने लगी। इस तरह, रफ़्ता-रफ़्ता, दुनिया में, सुकर्म और कुकर्म दोनों प्रकट हुए, और

उन्हीं के मुआफ़िक़, जीवों को फल मिलने लगा और फिर ऐसे कर्मों का सिलसिला आइन्दा के जन्मों में भी जारी हो गया ॥

(ग)—इस रचना के होने से यह फ़ायदा हुआ कि जो चैतन्य इस देश में माया से ढका हुआ, अचेत पड़ा था, उसको, सत्तलोक से जो धारें आईं, उन्होंने तहों से जुदा करके, और उसी तह, यानी माया के मसाले का ग़िलाफ़ जिसको देह कहना चाहिये, तैयार करके, उसमें बिठाया और उसकी चैतन्य शक्ति को, जो सोई पड़ी थी, जगा कर, उससे काम लेना शुरू किया। इस तरह जीवों को अपने निज भंडार यानी कुल्ल मालिक की क़ुदरत का तमाशा देखने और जो जो सामान उसने पैदा किये, उसके भोगने और रस लेने, और फिर अपने मालिक की पहिचान करने और उसका दर्शन हासिल करने का मौक़ा मिला। यानी सतगुरु के वसीले से, नीचे देश से ऊँचे देश में जाकर, वहाँ के महा आनन्द को प्राप्त होने का मौक़ा और सामान हासिल हुआ। अगर काल-पुरुष और माया प्रकट न होते, तो सत्तलोक के नीचे, त्रिलोकी की रचना भी कभी नहीं होती, और यहाँ का चैतन्य सदा अचेत रहता ॥

२—सवाल—जो संसार में भोग पैदा किये गए हैं, तो वे ज़रूर भोगने के वास्ते पैदा हुए हैं, फिर उन भोगों के हासिल करने और भोगने की इल्लत में, जीवों को क्यों

सज़ा या दंड दिया जाता है यानी नीची-ऊँची योनियों में क्यों भ्रमाया है ?

जवाब–जो भोग इस रचना में पैदा हुए हैं, वे सच्चे मालिक ने प्रसन्न होकर प्यारे भक्तों और प्रेमी जनों के लिए, काल पुरुष और माया के हाथ से पैदा कराये। वे उन भोगों को प्रथम अपने सच्चे मालिक के सन्मुख (जब संत सतगुरु रूप धार कर जगत में प्रकट होवें) पेश करते हैं, या उसके प्रेमी और भक्त जन के निमित्त तैयार करते हैं, और फिर आप भी उन्हीं भोगों को प्रशादी करा कर भोगते हैं और उनमें रस लेते हैं। अगर उनको इस भक्ति और भाव के एवज़ में दया मिलती है, और प्रेम, दिन-दिन बढ़ता है और दिन-दिन सच्चे मालिक के ज़्यादा प्यारे होते जाते हैं ॥

५—ऐसे प्रेमियों की ब-दौलत संसारी जीव भी उन भोगों का भोग करते हैं, पर वे उनको अपने और अपने कुटुम्बियों के निमित्त तैयार करके निहायत आसक्ति के साथ उनका रस लेते हैं, और दूसरों को उस में, शरीक करना नहीं चाहते और एक दूसरे से, आपस में, उन्हीं भोगों के सबब से ईर्षा करते हैं, और विरोध पैदा करके कभी २ आपस में एक दूसरे पर ज़्यादती करते हैं। और ऐसी जबर पकड़ उनकी इन भोगों में हो जाती है कि उन्हीं को अपना सुखदाई मानते हैं। और जो कोई उनको उन भोगों से छुड़ावे, उसको बैरी के समान देखते हैं। और उन भोगों की प्राप्ति के सबब से निहायत दर्जे का

अहंकार और ग़फ़लत और बे-परवाही और सख़्ती उनके मन में बढ़ती जाती है कि जिसके सबब से वे अपने सच्चे मालिक और निज घर को भूल कर, दिन २ उससे दूर होते जाते हैं, और नीची-ऊँची योनियों में अपनी करनी का फल भोगते हैं ॥

६—जो वे भी होशियारी और एहतियात के साथ प्रेमी जन के मुवाफ़िक़ उन भोगों को, सच्चे मालिक और उसके भक्तों को अर्पण करके और प्रशादी करा कर, और आपस में बाँट कर भोगते, तो बजाय दूरी और दुख के, मालिक की नज़दीकी और विशेष दया हासिल करके, महा सुख को प्राप्त होते ॥

७—ज़ाहिर है कि मन और इन्द्रियों के कुल भोग जड़ हैं और जिस किसी की उनमें आसक्ति और वासना रही आवेगी, वह दिन-दिन उसके संग से मनुष्य की निस्बत कम चैतन्य और ज़्यादा कम चैतन्य, और बहुत ही ज़्यादा कम चैतन्य योनियों में उतर जावेगा। इस सबब से भोगी और रागी जीव अपनी नादानी और मन-हठ करके आप ही अपना नुक़सान करते हैं ॥

८—सवाल—ऐसी रचना कि जिसमें कोई दुखी और कोई सुखी और कोई अमीर और कोई ग़रीब और कोई मुफ़लिस है, किस वास्ते और किस क़ायदे से की गई, और सब एक से क्यों नहीं पैदा किये गये ?

जवाब—दयाल देश यानी निर्मल चैतन्य देश में

जिसकी हद सत्तलोक तक है और जहाँ काल और माया का दख़ल और गुज़र नहीं है, हर एक लोक में, सब रचना एकसी और सब हंस एक से रूप वाले और बराबर आनन्द लेने वाले हैं। और माया की हद में जिसमें ब्रह्मांड और पिंड की रचना शामिल है, दर्जे-ब-दर्जे, जैसे कुछ माया निर्मल और सूक्ष्म और स्थूल और मलीन होती गई, वैसे ही रचना में कमी-बेशी और फ़र्क़ होता गया, यानी निर्मल और सूक्ष्म माया के देश में सुख विशेष और दुख बहुत कम, और स्थूल और मलीन माया के देश में सुख कम और दुख ज़्यादा होता गया, और सतोगुणी जीव विशेष सुखी, और रजोगुणी उनसे कम, और तमोगुणी इनसे भी कम सुखी, यानी ज़्यादा दुखी होते गये, और कर्मों के सबब करके यह सुख-दुख की हालत बढ़ती गई और आपस में दर्जा यानी फ़र्क़ होता गया ॥

९—यहाँ के माया के मसले का यही स्वभाव है। और इसमें भी यहाँ की रचना पर दया है कि जो जीव ज़्यादा तमोगुणी हैं यानी अंधकार में पड़े हैं, उनकी ग़फ़लत और नादानी और सुस्ती किसी क़दर दुख पाकर दूर होती है और आइन्दा को या तो ज़्यादा सुख पाने के अधिकारी बनाये जाते हैं या अपनी करनी के मुवाफ़िक़ विशेष दुखी होने से उनका किसी क़दर बचाव हो जाता है ॥

१०—और मालूम होवे कि तमोगुण की ज़्यादती के सबब से, बहुत से जीव इस रचना में हरचंद दुखी भी हैं, पर जो उनको, उस दुख की हालत के दूर

करने और विशेष सुख प्राप्त होने का यत्न बताया जावे, तो इस क़दर ग़फ़लत और नादानी उन पर छाई हुई है कि वह उसको नहीं मानते और उसके मुवाफ़िक कार्रवाई करना नहीं चाहते और अपनी मौजूदा हालत में ही रहना पसंद करते हैं ॥

११—सवाल–मालिक जो रहीम और दयाल है तो जीवों पर ऐसी सख़्ती और तकलीफ़ जैसे अकाल और मरी वग़ैरा क्यों रवा रखता है ?

जवाब—सच्चा मालिक सदा दयाल है और तीनों लोकों की रचना की कार्रवाई काल-पुरुष यानी ब्रह्म के सुपुर्द है । वह जैसी जिसकी करनी होती है, उसी मुआफ़िक़ उसके साथ बर्ताव करता है ॥

१२—जब जीव कसरत से निपट संसारी भाव में बर्ताव करके और मालिक को भूल कर अपनी तमाम तवज्जह भोग-बिलास और देह के पालन-पोषण में खर्च करते हैं, और इस सबब से, वे नीचे की योनियों में कसरत से उतरते जाते हैं, तब वह मालिक दया करके अकाल डालता है । उस वक़्त सब जीवों की हालत, मय जानवरों के, भूख-प्यास और चिन्ता और दुख में परेशान और व्याकुल होकर बदलती है, यानी जिस रीति से कि तन, मन और इन्द्रियाँ शिथिल और निबल होकर ऊपर की तरफ़ को तवज्जह करें या उनका ऊपर की तरफ़ को खिंचाव होवे, और थोड़ी-बहुत सुरत की ताक़त जागे, उस रीति में, ये सब जीव, लाचार होकर, आप ही बर्तते हैं, और इस तरह सबकी सुरतों यानी

रूहों का घाट बदलता है, यानी नीचे से ऊँचे को चढ़ाई होती है । और इस तरह सिलसिलेवार, सब जीवों को दर्जे-ब-दर्जे फ़ायदा पहुँचता है, यानी ज़्यादा सुख का स्थान पाते हैं ॥

१३—इसमें ऐन दया ही दया है । सिर्फ़ इस क़दर फ़र्क़ है कि जो जीव सोच और समझ कर और बचन मान कर संसार में दुरुस्ती से बर्ताव करते हैं, उनका दर्जा सहज में चढ़ता जाता है और जो भूल और ग़फ़लत और नादानी और बे-परवाही और बे-ख़ौफ़ी से भोगों में लिपट कर और उन में निहायत आसक्त हो कर कार्रवाई करते हैं, वे उसी क़दर दुख और तकलीफ़ पाकर सम्हलते हैं ॥

१४—इसी तरह बीमारी और मरी का भी हाल समझना चाहिए । जब ओछी करनी वाले जीव संयोग से बहुत जमा हो जाते हैं, तब वे, किसी आम और सख़्त बीमारी में मुबतिला हो कर, क़रीब २ एक ही समय में देह छोड़ते हैं और ऐसी एकाएक और जल्दी-जल्दी मौत होने से बाक़ी जीव घबरा कर और अपनी-अपनी मौत का ख़ौफ़ खाकर थोड़ा-बहुत मालिक को याद करते हैं और अपनी चाल और चलन किसी क़दर दुरुस्त करते हैं । और बाज़े जीव मालिक की हस्ती का भी यक़ीन मन में लाकर पहले की निस्बत अपने व्यवहार और बर्ताव की किसी क़दर सम्हाल करते जाते हैं, और उनका घाट यानी दर्जा किसी क़दर बदल जाता है ॥

१५—और मालूम होवे कि अकाल और बीमारी और मरी के समय में बहुत से जीवों से पर-उपकार के थोड़े-बहुत अच्छे काम बन आते हैं कि जिसके सबब से वे विशेष सुख पाने के अधिकारी हो जाते हैं। और बहुतेरे जीव खौफ़ खाकर और दुनिया की बे-सबाती का हाल देख कर, कोई-कोई परमार्थ की खोज में और कोई-कोई उसकी कमाई में लग कर अपनी नर-देही सुफल करते हैं और ऊँचा दर्जा पाते हैं ॥

१६—सवाल—जो मालिक सर्व-समर्थ है, तो आपही हमारे मन को फेर कर हम से परमार्थी की करनी क्यों नहीं करा लेता ?

जवाब—मालूम होवे कि असल में बिना मालिक के हुक्म या मौज या मर्ज़ी के, काम नहीं होता है। जो दया-पात्र और अधिकारी जीव हैं, वे अपनी रोजमर्रा की हालत और दुनिया के हाल को देख कर, आपही अपने मन में सोच-विचार करके अच्छे काम और परमार्थ की खोज और कमाई में लग जाते हैं और उनको मेहर और दया से मालिक बराबर तरक़्क़ी के वास्ते मदद देता जाता है। ऐसे लोग क़ुदरती किताब से, बहुत करके, हिदायत लेते हैं। और फिर उनको, मौज और दया से, निज भेद और सच्चे मालिक और उससे मिलने की युक्ति के बताने वाले सतगुरु भी मिल जाते हैं और उनका कारज दिन-दिन बनता जाता है ॥

१७—और जो जीव कि आप से नहीं चेतते, उनको

मालिक अपनी मौज से चेते हुए जीवों की मारफ़त समझौती देकर होशियार करता है और उनका भी कारज आहिस्ता-आहिस्ता बनना शुरू हो जाता है ॥

१८—पर जो जीव कि आप से न चेतें, यानी आँख खोल कर अपने और जगत के हाल को न देखें, और उससे अपनी बेहतरी के वास्ते नतीजा और तद्बीर न निकालें, और जो उनको दूसरे लोग समझावें और चितावें तो भी समझ-बूझ नहीं लाते और होशियार नहीं होते, यानी संसार के कारोबार और भोग-बिलास में हैवानों की तरह से लिपटे रहना पसन्द करते हैं, तो ऐसे जीवों की सम्हाल और तरक़्क़ी के वास्ते वह मालिक, समर्थ दयाल, आप तद्बीर करता है। यानी जब ऐसे जीवों की कसरत हो जाती है, तब जैसा कि चौथे सवाल के जवाब में लिखा है, अकाल और मरी और बीमारी भेज कर, उन अचेत और ग़ाफ़िल जीवों को सम्हालता है, और जो काम कि परमार्थी जीव अपनी ख़ुशी और उमंग के साथ करके मालिक की दया और बख़्शिश हासिल करते हैं, वही काम थोड़े और बहुत इन ग़ाफ़िल जीवों से करा लेता है—जैसे कम खाना, और जागरन करना, और दुनिया और कुटुम्ब-परिवार का मोह कम करना, और भोगों में कम बर्तना, और मान और अहंकार को तोड़ना, और दीनता और ग़रीबी की चाल में बर्तना, और मालिक और मौत की याद करना, और दुनिया और अपनी देह और कुटुम्ब और सामान से किसी क़दर चित्त में बैराग रखना, या उदासीन रहना, वग़ैरा ॥

१९—अब जीवों को इख़्तियार है कि अपने-अपने भाग्य और अधिकार या समझ और बिचार के मुवाफ़िक़ अपने असली और हमेशा के सुख हासिल करने के लिये संत सतगुरु के बचन के मुआफ़िक़ कार्रवाई करें या न करें। क्योंकि जो वे अब, और आप से चेत कर, अपने जीव के कल्याण के निमित्त कुछ थोड़ी-बहुत तवज्जह और मेहनत करेंगे, तो उनके हक़ में हर तरह बेहतर होगा यानी वे सुख और आनन्द के साथ परमार्थ की दौलत आहिस्ता २ हासिल करेंगे। और जो अपने मान और अहंकार और नादानी के ग़लबे से आप से आप नहीं चेतेंगे और होश नहीं करेंगे, तो वक़्त और मौक़ा-ए-मुनासिब पर वह मालिक दयाल आप, उनके चेतने और परमार्थ की कार्रवाई करने का बन्दोबस्त, जिस तरह मुनासिब और उनके हक़ में बेहतर होगा, करेगा ॥

२०—मालूम होवे कि सिवाय ऊपर के लिखे हुए सवालों के, दो सवाल और भी हैं कि जिनका बयान खोल कर पिछले बचनों में हो चुका है और इस वास्ते उनके जवाब यहाँ पर दुबारा लिखना फ़िज़ूल समझा गया। और वे दो सवाल निसबत हस्ती सच्चे और कुल मालिक के, और जीव या सुरत उसकी अंश होने की बाबत हैं। सो बयान हो चुका है कि राधास्वामी दयाल कुल्ल मालिक और सर्व समर्थ हैं, और जीव उनकी अंश हैं, जैसे सूरज और सूरज की किरन। और ये दोनों अमर हैं ॥

बचन सैंतालीसवाँ

सवाल-जवाब

१—सवाल—जिन जीवों ने सच्चे दिल से ऐसी शरण ली है कि जो कुछ होता है वह मालिक की मौज से होता है और जो कि सच्ची ख़्वाहिश इस बात की रखते हैं कि वे कर्मों के बंधनों में न पड़ें, जो कुछ अच्छा और बुरा हो सब मालिक की मौज पर छोड़ दें, तो फिर भी जो नाक़िस कर्म उनसे बनेगा, उसका जवाब-देह कौन है ? या जो ख़्यालात ना-पसंदीदा कि एकाएक उनके दिल में पैदा हो जाते हैं, और वे सच्चे दिल से यह बात चाहते हैं कि ऐसे ख़्यालात या ऐसी हरकात उनसे मनसा, वाचा और कर्मना सरज़द न हों, तो इसकी निस्बत क्या ख़्याल हो सकता है ? अगर उनके ज़िम्मे डाला जावेगा तो वे नाहक़ मारे गये, क्योंकि वे तो बारम्बार तौबा कर रहे हैं कि हे मालिक हमारे हाथ से खोटी करनी न बने। और अगर मालिक के ज़िम्मे रक्खा जावे तो वह ऐसी कार्रवाइयाँ क्यों करावेगा? तो बावजूद कि दिल से ऐसी शरण इख़्तियार की है या करना चाहते हैं और फिर हरकात ना-पसंदीदा सरज़द हों, या एकाएक दिल में उनका ख़याल, बिना सोचे, पैदा हो, इसका क्या यत्न है, और ये ख़्यालात क्यों पैदा होते हैं ?

२—दूसरे, वे जीव जो शरण दृढ़ करना चाहते हैं, यह समझ लेकर कि जो सब कर्म, भले और बुरे, मालिक की मौज पर छोड़ दिये जावें, तो निस्बत बुरे कर्मों के

मालिक के ज़िम्मे दोष आता है और जो ऐसा अमल करें कि जो कोई नेक करनी भूल-चूक से (गो कि नेक कर्म इस जीव से सरज़द होना एक अमर-मुहाल बल्कि ना-मुमकिन है, मगर फ़र्ज़न अगर मालिक की दया से बन जावे) उनसे बन पड़े तो उसके वास्ते सच्चे दिल से यह एतक़ाद कि यह मालिक ने किया और जो नाक़िस कर्म उनसे (जो रोज़ाना बनते हैं) सरज़द हों, वे सच्चे दिल से अपने ऊपर ले लें कि यह हम से हुआ और बिल-फ़ौर सरज़द होने के, अपने मालिक से मुआफ़ी चाहें, तो उनके वास्ते सूरत माफ़ी है या नहीं ? मतलब यह है कि :—

(१)—वे जीव जो कर्मों का बंधन नहीं चाहते और शरण-चरण दृढ़ करना चाहते हैं और वे सब कर्म, भले और बुरे, मालिक के ज़िम्मे रख दें ।

(२)—वे जीव जो कर्मों का बंधन नहीं चाहते और शरण-चरण दृढ़ करना चाहते हैं, अगर कोई शुभ कर्म छः महीने में मालिक की दया से बन पड़े, तो वह मालिक के अर्पण, और जो ख़राब कारंवाई नित्य और हर घड़ी होती है वह अपने ज़िम्मे ले लें, तो इन दोनों क़िस्मों में से वह जुगत बतला दीजिये जिससे कि जीव का सहज गुज़ारा हो जावे कि किस हालत में मालिक की तरफ़ से ज़्यादा रक्षा होगी और जीवों का जल्दी काम बनेगा ॥

३—जवाब—यह हालत सिर्फ़ ऐसे प्रेमी की ही हो सकती है कि जिसके मन में कोई ख़्वाहिश या चाह भोग-बिलास की, या संसार के सामान और मान-बड़ाई की प्राप्ति की

नहीं रही है। और चाहे वह गृहस्थ में रहता है, पर उसके कुटुम्बी और सम्बन्धियों की चाह और ख़्वाहिश का भी असर उसके मन में नहीं होता है, यानी उसके पालन-पोषन के निमित्त चाहे थोड़ा-बहुत कर्म भी करे, पर सब करतूत उसकी राधास्वामी दयाल की मौज के आसरे होती है, और नफ़े और नुक़सान की हालत में कभी और किसी तरह पर उसका मन रूखा-फीका या राधास्वामी दयाल की तरफ़ से उदास या दुखी नहीं होता है। ऐसे प्रेमी की सुरत की पहुँच और बैठक ऊँचे स्थान पर होगी कि जहाँ संसार की हवा बहुत कम पहुँचती है, और जो कि उसके मन में कोई क़िस्म की चाह नहीं रही है, इस वास्ते, उससे कोई कार्रवाई ऐसी नहीं बनेगी कि जिस में किसी का असली नुक़सान होवे या वह कार्रवाई बिल्कुल उलटी और खिलाफ़ मौज और मर्ज़ी कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के होवे। इस वास्ते उस प्रेमी की यह समझ कि जो कुछ होता है कुल मालिक की मौज से होता है, सही और दुरुस्त समझनी चाहिए। उसके मन में किसी हालत में हर्ष या शोक नहीं होता है, और न किसी को नुक़सान या तकलीफ़ पहुँचाने का, जान कर या अनजाने, इरादा या ख़्वाहिश होती है। फिर ऐसे प्रेमी से, नाक़िस या पाप-कर्म कभी नहीं बनेंगे, और जो कभी कोई ऐसा काम कि जिसमें किसी तरह से कुछ पाप का ख़्याल या शुबहा किया जावे, ज़ाहिर भी होगा, तो वह मौज से होगा, और उसमें ज़रूर किसी न किसी का

फ़ायदा निकलेगा, चाहे वह फ़ायदा उसी वक़्त मालूम होवे या थोड़े अर्से के पीछे। ख़ुलासा यह है कि ऐसे प्रेमी और पूरी शरण वाले सतसंगी से कभी और किसी हालत में कोई काम पाप का, या किसी के नुक़सान या तकलीफ़ का, नहीं बन आवेगा। और जो अभी ऐसी हालत उस प्रेमी सतसंगी की नहीं है, यानी उसके मन में अनेक तरंगें, इन्द्रिय भोग और चाहें, संसार के फ़ायदे और मान-बढ़ाई की, अकसर उठती रहती हैं और उसको उनकी ख़बर भी नहीं होती या वह उनको रोक नहीं सकता है, तो समझना चाहिए कि अभी उसके पिछले-अगले कर्मों का चक्कर किसी क़दर बाक़ी है, और उसके मन और चित्त निर्मल और निश्चल नहीं हुए, यानी संसार और इन्द्रियों के भोग-विलास की मलीनता उसमें भरी हुई है, तो वह प्रेमी ऐसी समझ कि कुल अपनी करतूत को मालिक की मौज के साथ निस्बत देवे, ठीक-ठीक धारण नहीं कर सकता है। उसके अंतर में जो पाप या नाक़िस कर्म की वासना पैदा होती है, या उससे ऐसे कर्म अनजाने ज़ाहिर हो जाते हैं, तो अभी उसकी पुरानी आदत दूर नहीं हुई, और न उसके मन में पूरी सफ़ाई आई है, और न उसके मन और सुरत इस क़दर जागे हैं कि ऐसी तरंगों को उठने न देवें या फ़ौरन रोक लेवें, तो ऐसे प्रेमी को चाहिए कि नेक कामों को मौज और दया के आसरे और हवाले करके और जो करतूत नाकिस बने तो उसका ज़रूर अपने पिछले नाक़िस कर्मों के सबब से

या अपने मन की मलीनता की वजह से समझ कर, उस पर शर्मावे और पछतावे और चरणों में राधास्वामी दयाल के प्रार्थना करता रहे, और अपना अभ्यास ध्यान और भजन का, दुरुस्ती के साथ करता रहे, तो अलबत्ता उसकी हालत आहिस्ता २ बदलती जावेगी, और जो क़ुसूर उससे ऐसी सूरत में बनेंगे, वे भी राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से मुआफ़ फ़रमावेंगे। पर शर्त यह है कि यह अभ्यासी सच्चे मन से पछतावा करके मुआफ़ी चाहे और आइन्दा को थोड़ी-बहुत एहतियात करता जावे, और अपने मन और इन्द्रियों की चाल की, अंतर और बाहर, निरख और परख यानी चौकीदारी करता रहे, और उनको नाक़िस ख़्याल और तरंग उठाने या ऐसे कामों में बर्तने से, जहाँ तक मुमकिन होवे, रोकता रहे, और जब २ चूक जावे तब २ प्रार्थना करे और अपने मन में शर्मा कर मुआफ़ी और आइन्दा के वास्ते दया माँगे। हर एक प्रेमी सतसँगी को चाहिये कि राधास्वामी दयाल की शरण, जिस क़दर बन सके, दृढ़ करे। और शरण लेने से मतलब यह है कि सब कामों में उनकी दया और रक्षा का आसरा और भरोसा रक्खे, और जब २ और जैसे २ वे मेहर और दया करें, उसका शुक्राना अदा करता रहे, और जहाँ तक बन सके, अपनी चाह पेश न करे, और जो करे तो सिर्फ़ इत्तिला और अर्ज़ करने के तौर पर। फिर जैसे राधास्वामी दयाल अपनी मौज से उस काम को करें, उसमें, जहाँ तक बन सके, उनकी मौज के साथ राज़ी रहे, और जो मन, किसी

क़दर चक्कर लावे तो फिर अपना हाल अर्ज़ कर देवे। वे अपनी मेहर से जिस तरह मुनासिब होगा, मन की सम्हाल करेंगे ॥

४—मौज के ऊपर क़ायम रहना हर एक का काम नहीं है। यह बात पूरी २ तब ही बन आवेगी जब कोई बन्धन या चाह नहीं रहेगी। पर मौज की निरख-परख करते हुए चलना, और जहाँ तक बन सके, उसके साथ मुआफ़िक़त करना, यही अभ्यास है। भूल-चूक और क़ुसूर जब २ बनें, उन पर पछताना और शर्माना और आइन्दा के बचाव के वास्ते प्रार्थना करना, यही इलाज है। इससे मन का नाक़िस अंग आहिस्ता २ दूर होवेगा। और, उधर अभ्यास करके, मन और सुरत का घाट भी बदलता जावेगा, यानी ऊँचे और निर्मल देश में चढ़ाई होती जावेगी और मलीन देश छूटता जावेगा। तब, इसी तौर से एक दिन काम पूरा बन जावेगा। जल्दी करना और घबराना नहीं चाहिए और सच्चे प्रेमी और शरण लेने वालों के वास्ते मुआफ़ी की दया हमेशा तैयार है।

बचन अड़तालीसवाँ

सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल से जान-पहिचान और मुहब्बत करना

१—हर एक आदमी, जिस २ शख़्स से उसका कोई न कोई काम निकलता है, जान-पहिचान और मुहब्बत

करता है, जैसे गृहस्थी आदमी अपनी ज़रूरत के मुआफ़िक़ किसी डाक्टर या हकीम और साहूकार और क़िस्म २ के दूकानदार और हाकिम-वक़्त वग़ैरा से जान-पहिचान यानी मुलाक़ात और मुहब्बत पैदा करते हैं, इस मतलब से कि जब उनको किसी चीज की ज़रूरत होवे या किसी मुआ-मले में इन लोगों से मदद दरकार होवे, तो वह वक़्त पर आसानी से मिल जावे और किसी तरह का हर्ज और तकलीफ़ न होवे ॥

२—जैसे दुनिया के कामों के अंजाम देने के वास्ते, दुनिया के कारोबारी लोगों की जरूरत होती है और इस-लिए दुनियादार लोग उन कारोबारी शख़्सों से मेल और मुलाकात रखते हैं, ऐसी ही, परमार्थ के मुआमले में कुल्ल मालिक और उसके प्यारे संत और साध और भक्त जन की दया और मदद और सहायता, वक़्त तकलीफ़ और रंज और मौत के, दरकार होती है, और इस वास्ते उन से भी मुहब्बत और मेल रखना निहायत ज़रूरी है ॥

३—जान-पहिचान के अर्थ यह हैं कि किसी शख़्स का नाम और उसकी ताक़त और सामान और जौहर का हाल सुन कर मालूम किया कि फ़लाँ शख़्स ऐसा है, इसको "जानना" कहते हैं ॥ और जब उसकी ताक़त या सामान या जौहर से अपने तईं मदद लेने की ज़रूरत हुई, तो उस शख़्स का पता और भेद दरियाफ़्त करके, उससे चल कर मिलना, और मुहब्बत पैदा करना, इसको "पहिचानना" कहते हैं ॥

४—आम तौर पर सब लोग जानते हैं और कहते हैं कि कोई सच्चा मालिक इस रचना का है, और कुल्ल रचना उसी की ताक़त से पैदा हुई, और वही सब की सम्हाल कर रहा है, पर उनकी पहिचान सिर्फ़ ख़ासों को यानी प्रेमी और भक्त जन और साधुओं को, थोड़ी-बहुत आई, जिन्होंने अपने अन्तर में कुछ रास्ता तै करके, उसकी क़ुदरत और ताक़त और उस के नूर और जलवे को थोड़ा-बहुत देखा, और उसके चरणों से मेल और मुहब्बत पैदा की और ज़रूरत के वक़्त दया और मदद् हासिल करके कृतार्थ हुए, यानी तकलीफ़ के वक़्त उनकी सहायता मिली और भारी दुक्खों से बचाओ हो गया ॥

५—ऐसे ख़ास लोग जिनको अपने अंतर में सच्चे मालिक की थोड़ी-बहुत पहिचान आई, बहुत कम हैं। और बाक़ी जीव या तो नक़ल से मेल करते हैं, जैसे मूर्ति और निशानों के पूजने वाले, या उस मालिक की क़ुदरत और ताक़त का थोड़ा-बहुत हाल सुन कर इस क़दर जानते हैं कि कोई मालिक है, पर उसकी पहिचान कुछ भी नहीं आई, और इस सबब से, उसके चरणों की प्रीति और मुहब्बत उनके मन में नहीं पैदा होती, और उनका मालिक को इस क़दर जानना कि वह मौजूद है, क़ाबिल-ऐ-एतबार बहुत कम होता है, क्योंकि ज़रा सी बहस और हुज्जत में या वाक़े होने कोई सख़्त या ना-गहानी तक-लीफ़ वग़ैरा में, उनकी प्रतीत जल्द डिगमिग हो जाती है और कोई-कोई विद्यावान मालिक के मौजूद होने से इन-

कार करते हैं। वे सख़्त भूल और ग़लती में पड़े हैं और इस कसर का नुक़सान आइन्दा भोगेंगे ॥

६—जो जीव अपना, इस ज़िन्दगी में और आइन्दा, भला चाहते हैं, उनको मुनासिब है कि जैसे दुनिया के कामों के वास्ते, दुनिया के लोगों से जान-पहिचान और मेल और मुहब्बत करते हैं, ऐसे ही अपने जीव के कल्याण के वास्ते सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की, जो घट २ में मौजूद हैं, जान-पहिचान, और उनके चरणों में प्रीति और प्रतीत करें, तो इस लोक में भी उनके सब कारज, जिस क़दर कि राधास्वामी दयाल मुनासिब समझें, दुरुस्त हो जावें, और आइन्दा को जन्म-मरण और देहियों के दुख-सुख से नजात पाकर अपने निज देश में, जो कि अमर-अजर है, पूर्ण और अमर आनन्द को प्राप्त होवें ॥

७—यह जान-पहिचान, बग़ैर ख़ासों यानी पहिचान वालों से मिलने के, और उनके बचन सुनने और समझने के, और रास्ता चलने की जुगत उनसे दरियाफ़्त करके उसकी नित्य कमाई करने के, नहीं आवेगी। और इन ख़ासों का नाम संत सतगुरु और साध गुरु है। और जब तक ये न मिलें, तब तक इनके ख़ास प्रेमी सतसंगी से मिल कर भी थोड़ी-बहुत पहिचान, सच्चे मालिक की जुक्ति की कमाई करके आ सकती है ॥

८—इस वास्ते कुल्ल जीवों को, जो अपना सच्चा भला चाहते हैं, लाज़िम है कि पहले संत सतगुरु या साध गुरू का खोज करके कोई दिन उनका

सतसंग करें, और सच्चे मालिक का पता और भेद अपने घट में दरियाफ़्त करके, उसकी पहिचान और प्रतीत हासिल करने में कोशिश करें, यानी चलने की जुगत, सुरत-शब्द के अभ्यास को, लेकर हर रोज़, जिस क़दर बन सके, शौक़ और मेहनत के साथ उसकी कमाई करें, तो कोई दिन में थोड़ा-बहुत जलवा अंतर में नज़र आवेगा और उस सच्चे मालिक की दया और रक्षा के परचे अंतर और बाहर देख कर, उस की प्रतीत और मेहर की परख और पहिचान आवेगी, और फिर, दिन २ प्रीति चरणों में बढ़ती जावेगी और इस तौर से एक दिन सब कारज दुरुस्त हो जावेगा ॥

९—नक़ल या निशान की कुछ पहिचान नहीं हो सकती और न उसकी पहिचान और प्रतीत से कुछ मदद मिल सकती है । लेकिन जो सच्चा मालिक चैतन्य और जागता देव घट-घट में मौजूद है, उसकी पहिचान और प्रतीत और प्रीति से आदमी, जीते जी, घट में, रस और आनन्द पा सकता है, और कुल बैरियों के ख़ौफ़ से नजात पाकर, अपने प्यारे मालिक के बल और भरोसे पर, निर्भय हो सकता है और आइन्दा को काल और कर्म और माया के घेर से निकल कर अपने निज देश में जा सकता है ॥

१०—ऐसे जीवों का संग हरगिज़ नहीं करना चाहिये जो कि मालिक के मौजूद होने से इन्कार करते हैं, या दिल में शक लाते हैं, या उसके चरणों में प्रीति और प्रतीत करना ज़रूर नहीं समझते हैं, और जो संसार के पदार्थ और

इन्द्रियों के भोग-विलास को बड़ी न्यामत समझ कर उनको भोगते हैं, और उन्हीं के हासिल करने के लिए उम्र भर यत्न करके मुफ़्त जान दे देते हैं। ऐसे जीवों का जन्म-मरण कभी नहीं छूटेगा और वे, अपनी करनी का फल ऊँची-नीची योनियों में भोगते रहेंगे। और जो कोई उनका संग करेगा और बचन मानेगा, वह भी इसी तरह, उनके मुआफ़िक़, दुख-सुख भोगता रहेगा ॥

बचन उन्चासवाँ

सच्ची और पक्की प्रतीत और पहिचान सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल की, और अर्थ शब्द "गुरु अचरज खेल दिखाया"

१—प्रतीत और यक़ीन, यानी एतबार और एतक़ाद पर कुल कामों का दार-ओ-मदार है, चाहे वे काम परमार्थी होवें या स्वार्थी, यानी प्रतीत और एतबार मुआफ़िक़ मकान की नीव के हैं और बाक़ी कार्रवाई ऊपर की इमारत है। जो नीव दुरुस्त और मज़बूत नहीं है, तो ऊपर की इमारत भी पायदार और मज़बूत नहीं हो सकती। इस वास्ते, हर एक परमार्थी को चाहिए कि पहिले प्रतीत की सम्हाल और मज़बूती करे, तब परमार्थ का काम दुरुस्त चलेगा ॥

२—जैसे कि कोई शख़्स किसी से कहे कि तुम्हारे घर में फ़लानी जगह ख़ज़ाना गड़ा हुआ है, और वह उसका यक़ीन लाकर उसी वक़्त से उस मकान की, बहुत होशि-

यारी के साथ, हिफ़ाज़त रखता है और उस जगह को खोदना शुरू करता है ताकि जो ख़ज़ाना वहाँ रक्खा है, निकाल कर उससे फ़ायदा उठावे ॥

३—जैसे कि कोई शख़्स किसी से कहे कि तुम्हारे घर के फ़लाने हिस्से या मकान में साँप है, और वह शख़्स उसकी प्रतीत करके जब तक कि सर्प को निकाल न लेवे, तब तक आप भी ख़ौफ़ करके उस मकान में नहीं जाता है और अपने कुटुम्बियों को भी उस मकान में नहीं जाने देता है, और वह यत्न और तदबीर करता है कि जिससे, जिस क़दर जल्दी मुमकिन होवे, सर्प निकाला जावे और उसका ख़ौफ़ जाता रहे ॥

४—जैसे कि कोई शख़्स किसी को ख़बर देवे कि फ़लाने दिन या रात को उसके घर में चोर आने वाले हैं और वह शख़्स उस बात की प्रतीत करके उसी दिन से बन्दोबस्त अपने मकान की हिफ़ाज़त का करता है, और रात को बराबर होशियार और जागता रहता है, और जिस क़दर आदमी जमा कर सकता है, उनको अपने मकान पर मौजूद रखता है, और हर वक़्त चोरों का ख़्याल रख कर अपने मकान और असबाब की हिफ़ाज़त से नहीं चूकता है ॥

५—इसी तरह, जब कोई जीव संत सतगुरु राधास्वामी दयाल के सतसंग में आया और उसने राधास्वामी मत का निर्णय और राधास्वामी नाम और धाम का भेद और सिफ़त, चित्त से सुन कर, उसकी समझौती और प्रतीत

हासिल की, यानी इन सात बातों का यक़ीन उसके मन में अच्छी तरह से आया कि :—

(क) राधास्वामी दयाल कुल मालिक और सर्व-समर्थ और परम चैतन्य और पूर्ण आनन्द और दयाल स्वरूप हैं ॥

(ख) राधास्वामी दयाल के चरणों से जो आदि धार निकली, वही आदि-शब्द की धार है, और वही कुल रचना की कर्ता है यानी वही धार जगह २ ठहरती हुई और मंडल बाँध कर रचना करती चली आई है ॥

(ग) उसी चैतन्य धुन और धार का नाम सुरत है, और वही धार पिंड यानी देह में उतर कर जीव कहलाई ॥

(घ) उसी धुन और धार को पकड़ कर, जीव ऊपर को चढ़ कर और, एक दिन, अपने निज स्थान यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर, परम आनन्द को प्राप्त हो सकता है, और इसी चढ़ाई का नाम सुरत-शब्द योग है ॥

(ङ) माया और ब्रह्म (जिसको काल-पुरुष भी कहते हैं) सत्तलोक के नीचे से प्रकट हुए। और ब्रह्मांड में निर्मल माया, और पिंड में मलीन माया की रचना है। और जब तक जीव इन दोनों के घेर में रहेगा, तब तक देहियों के साथ दुख-सुख और जन्म-मरण भोगता

रहेगा, यानी जब तक कि सत्तलोक में, जो निर्माया देश है, नहीं पहुँचेगा, तब तक काल-क्लेश से छुटकारा नहीं होगा और पूर्ण और अमर आनन्द को प्राप्त नहीं होगा ॥

(च) यह दुनिया परदेस है और जिस क़दर सामान और भोग-बिलास यहाँ पर काल और माया ने रचे हैं, और भी जितने कि जीव के इस दुनिया में देह के संगी हैं, वे सब इसकी तवज्जह और ख़्वाहिश को अपनी तरफ़ खैंच कर, दिन-दिन, उसको अपने निज घर की तरफ़ से, यानी राधास्वामी दयाल के चरणों से, दूर डालते हैं। इस वास्ते इनमें केवल ज़रूरत के मुवाफ़िक़ बर्ताव करना और ज़रूरत के मुवाफ़िक़ ही हर एक से प्रीति-भाव रखना मुनासिब है। और मुख्य तवज्जह अपनी राधास्वामी दयाल के चरणों में लगाना ज़रूर और फ़ायदेमन्द है ॥

(छ) सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल को अपना सच्चा माता-पिता और रक्षक समझ कर, उनके चरणों की ओट और शरण लेकर, कार्रवाई परमार्थ की शुरू करना, और जिस क़दर तवज्जह और मेहनत हो सके, उनकी दया के बल और भरोसे के आसरे करना ॥

६—तो अब उसको मुनासिब और लाज़िम हुआ कि काल और माया के घेरे से, जिस क़दर जल्दी बन सके, निकल कर, अपने निज देश में, यानी अपने सच्चे माता और पिता राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँच कर अमर आनन्द को प्राप्त होवे, और देहियों के दुख-सुख और जन्म-मरण से अपना बचाओ करे।

७—मालूम होवे कि राधास्वामी मत में, ऊपर को लिखी हुई सात बातों का निर्णय इस तौर से किया जाता है कि जीव उस कैफ़ियत और हाल को अपने अंतर में, और भी हर एक देह में, निरख और परख कर, उसकी प्रतीत कर सकता है। किसी किताब या ग्रन्थ या किसी पिछले महात्मा के बचन की गवाही नहीं दी जाती है, बल्कि कुल क़ुदरत और रचना, जिस क़दर कि नज़र आती है, उन बातों की गवाही और सबूत देती है। और जो कोई चाहे, थोड़े दिन संतों की युक्ति का अभ्यास करके, अपने अंतर में उसका फल और नतीजा देख कर, सबूत इस बात का कि सिवाय सुरत-शब्द मार्ग के, और तरह सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होगा, हासिल कर सकता है।

८—फिर जब कि बुद्धि की समझ से, और अन्तर में थोड़ा अभ्यास करके, जिस जीव को थोड़ा-बहुत यक़ीन राधास्वामी मत का हासिल हुआ, तब उस पर फ़र्ज़ हुआ कि अब होशियार होकर, और इस दुनिया को परदेस और धोके की जगह समझ कर, अपने वतन की तरफ चलने की

युक्ति की कमाई, तवज्जह और कोशिश के साथ, रोज़मर्रा करता रहे ॥

९—जिस किसी को सतसँग करके ऐसा यक़ीन हासिल हुआ जैसा कि दफ़ा (२) और (३) और (४) में लिखा है, वह तो फ़ौरन भेद रास्ते का, और युक्ति चलने की लेकर, निहायत शौक़ के साथ अभ्यास करना शुरू कर देगा, और जो परहेज़ और संयम दरकार हैं, उन को दुरुस्ती और सचौटी के साथ अमल में लावेगा, और दुनिया और उसके कारोबार में मुनासिब और ज़रूरी तौर पर बर्ताव करेगा, और एहतियात रक्खेगा कि किसी चीज़ या मुआमले में उसका फँसाओ और गिरिफ़्तारी न हो जावे ॥

१०—यहाँ पर इस बात का बयान करना ज़रूरी है कि राधास्वामी मत में घरबार या उद्यम यानी रोज़गार और पेशे का छोड़ना ज़रूरी नहीं है। यानी जो जीव अपना परमार्थ सच्चे तौर पर बनाना चाहे, वह, बग़ैर छोड़ने घरबार और कुटुम्ब-परिवार और अपने पेशे और रोज़गार के, यह कार्रवाई कर सकता है। लेकिन शर्त यह है कि उसके मन में शौक़ और प्रेम राधास्वामी दयाल के चरणों में पहुँचने का, और इस दुनिया और देह की तकलीफ़ों से छूटने का सच्चा और तेज़ होवे, तो किसी क़दर तवज्जह और वक़्त इस तरफ़ लगाने से उसका काम आहिस्ता २ और दुरुस्ती के साथ बन सकता है ॥

११—हर एक शख़्स को, जो कि शौक़ के साथ सतसंग में शामिल होकर दो-तीन रोज़ बराबर बचन सुने, और

ग़ौर से उनको विचारे, और अपने में और कुल रचना में उनकी कैफ़ियत और हालत मुलाहिज़ा करे, तो उसको ज़रूर औसत दर्जे की प्रतीत उन सात बातों की, जिनका ज़िक्र ऊपर किया गया है, आ सकती है। पर जो कि सब जीवों का मन, युगान-युग और जन्मान-जन्म से कार्रवाई दुनिया की करता हुआ, और इन्द्रिय द्वारे भोगों का रस लेता चला आया है, और अनेक तरह के कारोबार, ज़रूरी और फ़िज़ूल, उसने अपने ज़िम्मे ले लिए हैं, इस सबब से, उसको इस क़दर फ़ुरसत और मौक़ा नहीं मिलता कि जो बचन परमार्थी सुने हैं, उनको विचार कर, अपना इरादा अभ्यास करने का मज़बूत करके कार्रवाई शुरू कर दे। या यह कि निन्दकों की झूठी-सच्ची बातें उसके मन को भ्रमा कर उस प्रतीत को, जो बचनों के सुनने से थोड़ी-बहुत आई है, डिगमिग कर देते हैं, या यह कि घर वाले और कुटुम्बी और यार-आश्ना और बिरादरी के लोग तान और तँज़ और धमकी और सड़की के बचन सुना कर, इसके मन को भ्रमा देते हैं, और उस प्रतीत को, जो थोड़ा-बहुत आई है, ठहरने नहीं देते, और तरह २ के खौफ़ दिला कर परमार्थी कार्रवाई करने से उसको बाज़ रखते हैं॥

१२—पर जानना चाहिए कि इन सब हालतों में, इस शख़्स की समझ और विचार और शौक़ और खौफ़ की कसर है। जो इसको सच्चा शौक़ होवे या सच्चा खौफ़ मौत और दुखों का, इसके दिल में पैदा होवे, तो यह उन सब बातों का, जो कि निंदक और निपट संसारी लोग अपनी

अनजानता से बनाते हैं, सतसंग में बैठ कर निर्णय कर सकता है, और तब, उन बातों का गलत और झूठा होना उसको साफ़ ज़ाहिर हो सकता है। और यह भी उसको रोशन हो जावेगा कि यह सब लोग, असल में, उसके जीव के कल्याण के विरोधी हैं और उस को परमार्थी कार्रवाई से बाज़ रखते हैं और ऐन अदावत उसके साथ कर रहे हैं। यानी वे सब अपनी जान के दुश्मन हैं और ऐसा ही दुश्मनी उसकी जान के साथ भी करते हैं। फिर ऐसे आदमियों की बातचीत और हरकत बेजा पर, अपने जीव के कल्याण की कार्रवाई को मुलतवी करना या छोड़ देना, इस शख़्स की भी भारी नादानी और ग़फ़लत का सबब है। और उसकी समझ-बूझ और विचार और निर्णय का भी ऐतबार नहीं हो सकता, क्योंकि जो इन क़ुव्वतों को वह काम में लाता तो हरगिज़ नादान और ज़ाहिर-बीं, यानी ऊपरी दिखावे के लोगों की बात पर अमल नहीं करता। ऐसे लोगों को प्रतीत, जो थोड़ी-बहुत वक़्त सतसंग के मालूम होती है, वह दबाओ और दिखावे की है और वह सतसंग से अलेहदा होते ही जाती रहती है। और इस सबब से, वे कुछ कार्रवाई परमार्थी नहीं कर सकते ॥

१३—प्रतीत उन्हीं शख़्सों की सही और दुरुस्त है कि जो उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई शुरू कर दें ॥

१४—जब कि परमार्थी कार्रवाई यानी अभ्यास, अन्तर और बाहर, शुरू किया जावेगा, तो अभ्यासी को अंतर में थोड़े-बहुत पर्चे ज़रूर मिलेंगे, और कुछ रस और आनन्द

भी आवेगा, जिससे कि उसका यक़ीन इस बात का कि कुल मालिक राधास्वामी दयाल सर्व-समर्थ, हाज़िर और नाज़िर हैं, और सिवाय मन और सुरत के अन्तर में ऊँचे देश की तरफ़ चढ़ाने के, और कोई जुगत सच्चे उद्धार की नहीं है, दिन २ बढ़ता जावेगा। और इस तरह सच्चे मालिक की पहिचान और सुरत-शब्द मार्ग की बड़ाई साबित होती जावेगी, और फिर उसी क़दर उसकी प्रीति राधास्वामी दयाल के चरणों में, और सुरत-शब्द की कमाई में बढ़ती जावेगी, और रफ़्ता २ एक दिन काम पूरा हो जावेगा ॥

१५—बिना पहिचान के, प्रीति और प्रतीत का पूरा भरोसा और ऐतबार नहीं हो सकता, और यह पहिचान बाहर के सतसंग और अन्तर के अभ्यास से आवेगी और दर्जे-ब-दर्जे बढ़ती जावेगी ॥

१६–सच्ची और पूरी प्रतीत की महिमा बहुत भारी है। जिस वक़्त जिस किसी को भाग से ऐसी प्रतीत आ गई, उसका उसी वक़्त से काम बनना शुरू हो गया। बल्कि जो सच कहा जावे, तो उसी वक़्त काम बन गया। यानी जिस वक़्त कि उसको सच्चे और कुल मालिक का हाज़िर और नाज़िर होने का दिल में यक़ीन हुआ, उसी वक़्त से उसके मन और इन्द्रियों की हालत बदल गई, कि वे फिर ना-मुनासिब चाहें और ना-मुनासिब कामों में रुजू नहीं करेंगे और अपने मालिक को हरदम अपने संग मौजूद समझ कर उसके चरणों में गहरी प्रीति लावेंगे ॥

१७—देखो, जब बाप बैठा है या उस्ताद या हाकिम

मौजूद है, उस वक़्त लड़के या नौकर कोई काम ख़िलाफ़ उनकी मर्ज़ी और हुक्म के नहीं कर सकते, और न खेल-कूद और ना-मुनासिब कामों की तरफ़ तवज्जह करते हैं। और जब ये तीनों नज़र से हट गये, तो उसी वक़्त लड़कों और नौकरों का मन बे-ख़ौफ़ होकर चाहे जिस काम में लग जाता है। इसी तरह परमार्थी जीव का मन, जब वह अपने सच्चे माता-पिता और मालिक और सतगुरु राधास्वामी दयाल को हर दम हाज़िर और नाज़िर देखता है, तब किस तरह, और कामों में, सिवाय उनके जो राधास्वामी दयाल को पसन्द हैं, जा सकता है? और सिवाय उनके और कौन ऐसा ज़बर है कि जिस में विशेष और गहरी प्रीति करेगा? जब ऐसी हालत मन की हो गई, तब और क्या करना बाक़ी रह गया? ऐसे परमार्थी जीव बहुत जल्द अभ्यास की मदद से रास्ता तै करते हुए अपने निज घर में यानी कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के सन्मुख पहुँच कर अपना काम पूरा कर सकते हैं॥

१८—जिस क़दर कार्रवाई परमार्थ की की जाती है, उस सब का मतलब यही है कि अभ्यासी को गहरी प्रतीत और प्रीति सच्चे मालिक के चरणों में हासिल होवे। तब उसका अभ्यास, सुरत के चढ़ाने का, सहज और सुखाला बनता जावेगा। और जब तक कि प्रतीत और प्रीति में कसर है, उसी क़दर मन और इन्द्रियाँ भी डावाँ-डोल रहती हैं और अभ्यास भी जैसा चाहिए, वैसा दुरुस्ती के साथ नहीं बनता। इस वास्ते कुल परमार्थियों को

मुनासिब है कि अंतर और बाहर सतसंग करके, अपनी प्रतीत और प्रीति को मज़बूत करें, और दिन २ बढ़ाते जावें, तो उनको अभ्यास का भी रस आता जावेगा और मन और इन्द्रियाँ भी सहज में भोगों की तरफ़ से किसी क़द्र हट कर, अन्तर में शब्द और स्वरूप के आसरे उलटती जावेंगी, और राधास्वामी दयाल की दया और रक्षा और क़ुद्रत के पर्चे मिलते जावेंगे कि जिनसे प्रीति और प्रतीत दिन-दिन बढ़ती जावेगी और एक दिन काम पूरा हो जावेगा ॥

१६—अभ्यासी को चाहिए कि मन और माया और काल और कर्म के चरित्रों और झकोलों से होशियार रहे। ये सब, अभ्यासी को, अपने पदार्थ और तमाशे पेश करके रास्ते में रोकना और अटकाना चाहते हैं। सो जो कोई सतगुरु राधास्वामी दयाल को अगुआ करके, और उनकी दया का बल लेकर चलेगा, उस पर किसी का ज़ोर या छल पेश नहीं जावेगा, और आख़िर सब थक कर रास्ते में रह जावेंगे, और वह मैदान जीत कर उनके घेर से, सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया से निकल कर, बे-ख़ौफ़, अपने निज देश में पहुँच जावेगा ॥

२०—मालूम होना चाहिए कि प्रतीत के दो दर्जे हैं। पहिले दर्जे की प्रतीत तवज्जह के साथ बचन सुन कर, और बुद्धि से ग़ौर के साथ विचार और निर्णय करके हासिल होती है। यह प्रतीत सतसंग के बचनों का रस देने वाली और अन्तर में अभ्यास शुरू कराने वाली है।

और दूसरे दर्जे की प्रतीत वह है कि जो अन्तर में अभ्यास करके रस और आनन्द और दया और मेहर के पर्चे पाकर मज़बूत होती जावे ॥

२१—यह दूसरे दर्जे की प्रतीत अडिग्ग है और इसको किसी क़िस्म के झकोले, मन और इन्द्रियों के, या निन्दक और विरोधी जीवों के, घटा नहीं सकते, बल्कि ज़्यादा मज़बूत और पक्का करते हैं, क्योंकि अभ्यासी को अपने अन्तर की कार्रवाई का नतीजा और राधास्वामी दयाल की दया और रक्षा मुलाहज़ा करके, इस क़दर ताक़त हासिल हो जाती है कि वह, मन और इन्द्रियों की चाल-कुचाल और निंदक और विरोधी जीवों की बात-चीत और हाल को समझ कर, फ़ौरन होशियार हो जाता है, और इनको काल का विघ्न जान कर, अपने सतसंग की समझ के बल से, इनका मुँह तोड़ देता है, और फिर आइन्दा, वे ऐसी हरकत उसके साथ रोज़-ब-रोज़ कम करते हैं, बल्कि शर्मा कर और थक कर चुप हो जाते हैं, और फिर यह प्रतीत अभ्यास की, दिन-दिन बढ़ती और गहरी होती जाती है, और एक दिन सच्चे और कुल मालिक के दरबार में पहुँचा देती है ॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१ शब्द १९ के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

कड़ी

गुरु अचरज खेल दिखाया । सुर्त नाम रतन घट पाया ॥ १ ॥

अर्थ—गुरु ने दया करके अचरज रूपी खेल घट में दिखाया । सुरत का नाम-रूपी रत्न यानी दसवें द्वार का शब्द प्राप्त हुआ ॥

कड़ी

बकरी ने हाथी मारा । गउ कीन्हा सिंह अहारा ॥ २ ॥

अर्थ—सुरत ने मन को जीता और फिर सुरत ने काल को मारा ॥

कड़ी

चींटी चढ़ गगन समाई । पिंगला चढ़ पर्वत आई ॥ ३ ॥

अर्थ—सुरत चढ़ करके गगन में पहुँची । जो मन कि दौड़ना यानी चंचलता छोड़ कर निश्चल हो गया, वही पर्वत पर चढ़ गया, यानी त्रिकुटी में पहुँचा ॥

कड़ी

गूँगा सब राग सुनावे । अन्धा सब रूप निहारे ॥ ४ ॥

अर्थ—जो शख़्स कि दुनिया की तरफ़ और अंतर में बोलने से चुप हुआ, वही शब्द की धुनें सुनने लगा । और जिस किसी ने बाहर से अपनी दृष्टि बन्द की, वही अंतर में रूप देखने लगा ॥

कड़ी

मक्खी ने मकड़ी खाई । भुन्गे ने धरन तुलाई ॥ ५ ॥

अर्थ--मक्खी नाम सुरत का है जो मकड़ी यानी माया के घेर में जब तक थी, उसका खाजा हो रही थी, और जबकि दसवें द्वार की तरफ़ उलट कर पहुँची तब माया को निगल गई। भुन्गे यानी जीव या सुरत ने, सूक्ष्म शरीर को समेट कर आकाश में उठा लिया ॥

कड़ी

धरती चढ़ वृक्षा बैठी। पक्षी ने पवन चुगाई ॥ ६ ॥

अर्थ–सुरत चढ़ करके त्रिकुटी में पहुँची। मन जो कि सैलानी था, जब चढ़ कर त्रिकुटी में पहुँचा, तब प्राण पवन को निगलता चला गया ॥

कड़ी

जंगल में बस्ती ब्याई। बस्ती सब खिलक़त खाई ॥ ७ ॥

अर्थ--बस्ती यानी रचना, और रचना करने वाली नाम सुरत का है, सो उसने पिंड रूपी जंगल में उतर कर रचना की, और फिर जब उलट कर त्रिकुटी या दसवें द्वार में पहुँची, तब पिंड और ब्रह्मांड की रचना को निगल गई यानी समेट गई ॥

कड़ी

मूसे से बिल्ली भागी। पानी में अगिनी लागी ॥ ८ ॥

अर्थ—चढ़ने वाली सुरत को देख कर माया हट गई। अमी की धार जो सहसदलकँवल के मक़ाम पर आई, वही ज्योति स्वरूप होकर रोशन हो रही है और वही माया का स्वरूप है और वही अग्नि है ॥

कड़ी

कउवा धुन मधुरी बोले। मेंडक अब सागर तोले ॥ ९ ॥

अर्थ—जो मन कि पहले कड़ुवा वाक्य बोलता था, और अपने मतलब के लिए औरों को दुःख देता था, वही त्रिकुटी में चढ़ कर, मीठी बोली के साथ, राग-रागिनी सुनाता है। पिंड में नीचे का मन जो मेंडक के मुआफ़िक़ थोड़ी ही हद में उछलता-कूदता था, त्रिकुटी में चढ़ कर भौसागर की तौल और नाप करता है॥

कड़ी

मूरख से चतुरा हारा। धरती में गगन पुकारा॥ १०॥

अर्थ—मन जो कि पिंड में बैठ कर मूर्खता से भोगों में फँस रहा था, जब गुरु कृपा से घट में चढ़ कर त्रिकुटी में पहुँचा, तब काल, जिसने चतुराई करके जाल बिछाया था, उससे हार गया और फिर धरती, यानी पिंड में, त्रिकुटी से शब्द की धुनें फैलीं॥

कड़ी

राधास्वामी उलटी गाई। उल्लू को सूर दिखाई॥ ११॥

अर्थ—राधास्वामी ने सुरत और मन के उलटने का यह हाल वर्णन किया, और जो जीव कि उल्लू के मुआफ़िक़ ब्रह्म रूपी सूरज का दर्शन नहीं कर सकते थे, उनको त्रिकुटी में चढ़ा कर ब्रह्म का दर्शन कराया॥

———

वचन पचासवाँ

राधास्वामी अथवा संत मत की निंदा का सबब, और निन्दकों का हाल

१—मालूम होवे कि संत अथवा राधास्वामी मत

(१) केवल प्रेम का मार्ग है, और (२) इस मत में अभ्यास अन्तर के अन्तर मे यानी निज घट में किया जाता है, और (३) बाहर सिवाय सतगुरु या साध के सतसँग के, और सतगुरु और साध प्रेमी जन की सेवा के, और कोई रस्म या किसी क़िस्म का बर्ताओ और व्यवहार जारी नहीं है, और (४) जो अभ्यास कि इस मत में कराया जाता है वह मन और रूह यानी सुरत के साथ किया जाता है, और (५) इष्ट और निशान सच्चे और कुल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों का, ऊँचे से ऊँचे देश में बाँध कर, और शब्द की डोरी (जिसकी धुन घट-घट में हर दम और हर वक़्त हो रही है) पकड़ कर, मन और सुरत को चढ़ाया जाता है, ताकि महा निर्मल और निर्माया, परम चैतन्य के देश में पहुँच कर, सुरत, अपने सच्चे माता-पिता राधा-स्वामी दयाल के चरणों का दर्शन पाकर अमर और अजर आनन्द को प्राप्त होवे, और काल और माया के जाल और कष्ट और क्लेश और जन्म-मरण के दुख-सुख से पूरी और सच्ची रिहाई पावे, और (६) इसी नज़र से अभ्यासी को, शुरू से, धुर पद में पहुँचने और अपने सच्चे और कुल मालिक के चरणों के दर्शन का प्राप्ति की अभिलाषा और आशा बँधवाई जाती है, और दूसरी इच्छा की ख़्वाहिश का, चाहे किसी किस्म की होवे, अभाव कराया जाता है, और (७) संसार और उसके भोग-बिलास और माया के सामान और पदार्थों की तरफ़ से, उनकी नाशमानता और तुच्छ क़ीमत और क़दर समझा कर, सच्चे परमार्थी के चित्त

The amo
service o
attractin

Trans

में थोड़ा-बहुत सच्चा वैराग दिलाया जाता है, और (८) सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु अथवा साधगुरु के चरणों की सच्ची प्रीति और इस तरह की प्रतीत दिल में पैदा की जाती है कि वे हर वक़्त परमार्थी जीव के अंग-संग और अंतर में हाज़िर और नाज़िर और हर दम रक्षक और सहाई मौजूद हैं, और यह कि प्रीति और प्रतीत सिर्फ़ ज़बानी बातों और उपदेश से नहीं आती है, बल्कि थोड़ा-बहुत अभ्यास, सुरत-शब्द मार्ग का, करके और अंतर में आनन्द और रस और परचे पाकर आप ही आप सच्चे अभ्यासी के हृदय में जागती है और दिन-दिन बढ़ती और पकती जाती है। और उसके साथ ही अभ्यासी की हालत और उसका बर्ताओ और व्यवहार भी थोड़ा-बहुत अन्तर और बाहर बदलता जाता है। यानी कुल्ल मालिक और सतगुरु और सतसंग में प्रीति ज़्यादा होती जाती है, और उसी क़दर संसार और संसारियों से मेल-मिलाप कम होता जाता है।

२—अब मालूम होवे कि यही सबब है कि राधास्वामी मत के सच्चे परमार्थी जीवों से, संसारी जीवों का मेल दिन-दिन कम होता जाता है और ऐसी हालत उनकी, यानी संसार के भोग-बिलास और नामवरी और धन और स्त्री और औलाद में उनकी तवज्जह कम देख कर, संसारी जीव अचरज करते हैं और घबरा जाते हैं कि कहीं ऐसा न होवे कि रफ़्ता-रफ़्ता वह परमार्थी जीव घरबार छोड़ कर दुनिया से क़तई अलेहदा हो जावे, और जो मतलब उनका उससे

बरामद होता है, वह ख़ब्त हो जावे। इस वास्ते, तरह-तरह के यत्न और उपाय सोचते हैं कि जिससे उस परमार्थी की प्रीति और प्रतीत में ख़लल आ जावे और वह राधास्वामी मत को छोड़ देवे या यह कि सतसंग में जाना मौक़ूफ़ कर देवे। और जो उनका कहना कुछ उस पर असर नहीं करता है, तो अनेक तरह के इल्ज़ाम सतसंग और सतसंगियों और सतसंगिनों पर लगा कर, और अपने मन से नई-नई हिजो की बातें पैदा करके, मशहूर करते हैं और उनको बदनामी देते हैं, और धमकाते हैं, और डराते हैं, कि इसी शर्म और ख़ौफ़ के मारे वह सतसंग छोड़ देवे, और जो जीव कि अभी सतसंग में शामिल नहीं हुए हैं, वे ख़ौफ़ और बदनामी के सबब से, वहाँ के जाने और शामिल होने से परहेज करें और रुक जावें॥

३—अनेक तरह की निन्दा की बातें जो ये लोग बनाते हैं और मर्दों और औरतों को बे-तकल्लुफ़ सुनाते हैं, इस जगह तफ़सील के साथ कहना फ़िज़ूल समझ कर सिर्फ़ दो-चार बातें कि जिन पर ये साहब ज़्यादा ज़ोर देते हैं, लिखी जाती हैं कि जिससे सच्चे परमार्थी को ख़ास कर, और आम परमार्थियों को भी, उन बातों की असलियत मालूम हो जावे कि आया वे निन्दा में दाख़िल हो सकती हैं, या ऐन परमार्थ की चाल हैं, और भक्ति मार्ग में ज़रूर दरकार हैं और पुराने से पुराने वक़्तों से सब मतों में जारी है।

४—पहिला, जात-पाँत का भेद—परमार्थ में आम

तौर पर, और भक्ति मार्ग में ख़ास कर, ज़ात-पांत का भेद करना पाप में दाख़िल है । यह क़ौल है कि—

जात पाँत पूछे नहिं कोय, हर को भजे सो हर का होय ॥

बड़े-बड़े महात्मा जो पिछले वक़्त में हुए, और जिनको कुल हिन्दू बड़ा मानते हैं, जैसे वशिष्ठ जी और व्यास जी और नारद जी और सूत पैरानिक । अब मालूम करो कि इनकी क्या ज़ात थी । वशिष्ठ जी गनिका (कसबी) के पुत्र थे, व्यास जी मच्छोदरी (मछली पकड़ने वाले की लड़की) के, और नारद जी और सूतजी दासी (लौंडी) के सुत थे । फिर परमार्थ की कमाई करके इनकी इस क़दर महिमा बढ़ी कि अब तक इनको सब कोई बड़ा मानते हैं । और अपने वक़्त में, ये, बड़े-बड़े महात्माओं के गुरू हुए और उनके बचन और बानी अब तक सब लोग मानते हैं और भाव के साथ पढ़ते हैं और सुनाते हैं ॥

५—भीलनी कैसी नीची जात की थी, मगर आप महाराज रामचन्द्र जी ने उसके झूंठे बेर खाये, और जिन पंडितों और भेषों ने कि उसका, नीची ज़ात के सबब से निरादर किया था, उन्हीं से, महाराज ने उसका आदर और भाव करवाया, और उसी के चरण, ताल में धुलवा कर, उसके जल को, जो सड़ गया था, शुद्ध कराया ॥

६—सुपच भक्त को जो जात का भंगी था, कृष्णचन्द्र महाराज ने पाँडवों के यज्ञ में, युधिष्ठिर जी को भेज कर, बड़ी महिमा और आदर के साथ बुलवा कर, और द्रोपदी

के हाथ से रसोई बनवा कर, चौके में बिठला कर, भोजन करवाया, तब घंटा बजा और यज्ञ सुफल हुआ ॥

७—महाराज कृष्णचन्द्र ने अहीर के घर में परवरिश पाई और ग्वालों के संग, अर्से तक, उनका बर्ताओ रहा, और अब, सब जात के लोग उनकी पूजा करते हैं और उनकी प्रशादी और चरणामृत मन्दिरों में लेते हैं। रामचन्द्र जी महाराज जाति के क्षत्रिय थे। उनकी भी पूजा तमाम ज़माने में जारी है ॥

८—सिवाय इनके, बहुत से भक्त, हिन्दू और मुसलमान, कलियुग के ज़माने में पैदा हुए, और उनमें से अकसरों की पूजा और भाव जगह-जगह जारी है। और कबीर साहब ज़ात के जुलाहे यानी कोली, बनारस (वाराणसी) में, और पलटू साहब जात के बनिया, अयोध्या में, और दादू साहब जात के धुनिया, राजपूताने में, और ग़रीब दास जी, जात के जाट, बाँगर में, और नानक साहब, जात के खत्री, और नामदेव छीपी, और सेना नाई, और सरवर सुल्तान, मुल्क पंजाब में, और चैतन्य स्वामी, बंगाल में, और गूँगा पीर जो पहिले क्षत्रिय थे और फिर पीछे मुसलमान हो गये, और मैनपुरी के ज़िले में जखइया भंगी, और अमरोहा और जलेसर में मियाँ साहब, और आगरे में कमालखाँ, और कुएँ वाला भंगी मसानिया, और ज़ाहिर पीर मुसलमान, और बूढ़ाबाबू धोबी, और ख़्वाजाजी अजमेर में, और अनेक भक्त और अनेक भूत-प्रेत, जगह-जगह, सर्व जात वाले पुज

रहे हैं । यह हाल सिर्फ़ इस मुल्क में ही नहीं है, बल्कि तमाम पृथ्वी पर यही दस्तूर भक्तों, और भी भूत-प्रेतों की पूजा का जारी है ।।

९—विलायतों में जगह २ भक्तों के और शहीदों के मज़ार बने हुए हैं जहाँ हर साल एक या दो दफ़े हर जगह मेले होते हैं और सैकड़ों कोसों से लोग दर्शन के वास्ते आते हैं और भेंट-पूजा करते हैं और दुआयें माँगते हैं ।।

१०—इस मुल्क यानी हिन्दुस्तान में भी कोई ऐसा प्रदेश नहीं है, जैसे पंजाब, गुजरात, दक्षिण, राजपूताना, बंगाल और हिन्दुस्तान ख़ास, यानी अम्बाले से लगाकर बनारस तक, और उड़ीसा वग़ैरा, कि जहाँ ऐसे स्थान न होवें और पूजा जारी न होवे । हज़ारहा हिन्दू-मुसलमान, भक्तों और फ़क़ीरों और शहीदों की ज़ियारत और पूजा के वास्ते जाते हैं ।।

११–सिवाय मालिक के भक्तों के, और बहुत से कम-ज़ात देवता और सिद्ध और भूत-प्रेत बने हुए, जा-ब-जा पुज रहे हैं और कोई मर्द या औरत या पंडित या ब्राह्मण या भेष ऐसी पूजा पर तान नहीं मार सकते हैं, बल्कि आप उस पूजा में शामिल होते हैं, और जो चीज़ें कि उनके देखने और छूने के क़ाबिल नहीं हैं, उनमें बे-तकल्लुफ़ बर्तते हैं, जैसे सुअर के बच्चे और बकरे और भैंसे कटवाते हैं, और शराब की बोतल भोग में ले जाते हैं, और ख़ून का टीका माथे पर लगवाते हैं, और गोश्त का प्रशाद बँटता है ।।

१२—जो लोग कि वेद और शास्त्र की पक्ष करते हैं, और उनको कभी आँख से भी नहीं देखा और न पढ़ा और सुना, उन्हीं के घरों में, ऊपर की लिखी हुई नाक़िस पूजा जारी हैं। और वहाँ वे दम भी नहीं मार सकते, बल्कि जोरू और लड़कों के साथ, आप उस नाक़िस पूजा में शामिल होते हैं और जो प्रशाद वहाँ तक़सीम होता है, वह माँग २ कर लेते हैं और अपने बच्चों को खिलाते हैं ॥

१३—दूसरा, प्रशादी देने और लेने पर एतराज़। ज़ाहिर है कि यह रस्म गुरु की प्रशादी लेने की सब मतों में क़दीम से जारी है। और उसी मुआफ़िक़ मंदिरों में प्रशादी और चरणामृत बाँटने का दस्तूर जारी है। अब समझना चाहिए कि जिस वक़्त, वे महात्मा जिन की मूर्ति कि मन्दिर में पधराई गई है, मौजूद होंगे, तो उस वक़्त, वे भोग लगा कर यानी झूंठा करके प्रशाद सेवकों और भाव वालों को बाँटते होंगे, क्योंकि वे अपने वक़्त के गुरु और मालिक से मिलने का रास्ता बताने वाले थे ॥

१४—इसी तरह से हर एक स्थान पर जहाँ कि महात्मा और भक्तों की समाध या कोई निशान मौजूद है, और उसके दर्शन और पूजा के वास्ते सैकड़ों कोसों से लोग आते हैं, तो वहाँ पर भी प्रशाद ब-दस्तूर बाँटा जाता है। और बाँटने से पहले, ध्यान करके, उन महात्माओं को भोग लगाया जाता है। तो अब विचारना चाहिए कि जिस वक़्त वे महात्मा जिन्दा थे, उस वक़्त उनके भाव वाले, पहले उनको खिला कर प्रशादी लेते होंगे, और उन महात्माओं की

ज़ात-पाँत का कुछ ख़्याल कोई नहीं करता होगा ॥

१५—और ज़ाहिर है कि जितने औतार और सन्त और साध और भक्त और महात्मा पिछले वक़्तों में पैदा हुए, और जिनकी पूजा आम तौर पर जा-ब-जा हर एक देश में (जैसा कि ऊपर की दफ़ा में ज़िक्र हो चुका है) जारी है, इन में से कोई भी जात का ब्राह्मण नहीं था, बल्कि बहुत से नीची ज़ातों में प्रकट हुए। पर उनकी प्रशादी गुरु-भाव करके उनकी मौजूदगी में, और भी बाद उनके चोला छोड़ने के, सब सेवक और भाव वाले जाव लेते चले आये हैं। और इस ज़माने में भी हर कोई औरत और मर्द अपने २ गुरु की प्रशादी, चाहे वे कबीर-पन्थी हैं या नानक-पन्थी या दादू-पन्थी या कोई और भेष और पन्थ में से हैं, या गुसाँई वग़ैरा, बग़ैर दरियाफ़्त करने उनकी ज़ात-पाँत के, लेते हैं, बल्कि गोकुलस्थी गुसाँइयों का उगाल भी बड़े शौक़ और भाव के साथ, गहरी भेंट और पूजा देकर, लेते हैं। और जगन्नाथ जी में हर एक ज़ात के यात्रियों की झूठन ख़ुद वहाँ के पुजारी और पंडे और सब कोई आपस में खाते हैं और उसको प्रशाद समझ कर दूर-दूर अपने घरों में ले जाकर खाते हैं और अपने कुटुम्बियों को बाँटते हैं ॥

१६—और मथुरा-वृन्दावन में सब ज़ात वाले, मन्दिरों में एक जगह बैठ कर दाल-रोटी और कढ़ी-चावल और खिचड़ी वग़ैरा की प्रशादी खाते हैं और सखरन-निखरन का बिल्कुल भेद नहीं करते, और बहुतेरे आदमियों के हाथ

अपने मकान पर मँगवा लेते हैं, और और कभी २ गुसाईं लोग अपने आदमियों के हाथ घरों पर भिजवा देते हैं और मंदिर से अपने घरों पर भी ले जाते हैं ॥

१७—बहुतेरे लोग जो भेष नेष्ठा रखते हैं, वे कुल भेषों की, बग़ैर दरियाफ़्त करने ज़ात और पाँत के, चरणामृत प्रशादी लेते हैं और यह दस्तूर पंजाब और सिंध वग़ैरा में आम तौर पर जारी है ॥

१८—और मुसलमानों में भी गुरु का उलिश यानी झूंठन, भाव के साथ लेकर खाते हैं ॥

१९—खुलासा यह है कि गुरु और साध और महात्मा और गुसाईं और साहब-ज़ादे और हर एक पन्थ के महन्तों और गद्दी-नशीनों की प्रशादी खाना, आम तौर पर, सब देशों और सब मतों में जारी है । फिर जो लोग कि उसको बुरा समझते हैं और इसकी निंदा करते हैं, वे परमार्थ के हाल और चाल से बिलकुल बे-ख़बर हैं, और आप कुछ भी परमार्थ की करनी नहीं करते, और ज़ात-पाँत या विद्या और बुद्धि या धन और हुकूमत के मान और अहंकार में डूबे हुए हैं । फिर ऐसे लोगों की निंदा और तान और हंसी के बचनों का, सच्चे परमार्थियों को किसी सूरत में, ख़्याल करना, अपनी भक्ति और परमार्थ की कमाई में ख़लल डालना है ॥

२०—देखो तमाश-बीनों को कि मुसलमानी और ईसायन और नीच ज़ात वाली औरतों के साथ मुहब्बत करते हैं, और उनके घरों पर रात-दिन पड़े रहते हैं और

वहीं खाते-पीते हैं, या ऐसी औरतों को अपने घरों में लाकर रखते हैं। और जो उनके औलाद पैदा होता हैं,उसके साथ वैसा ही वर्ताव करते हैं, जैसा कि शादी की हुई बीबी की ओलाद् के साथ बर्तते हैं। और अपनी बिरादरी और जात वालों का कुछ भी ख़ौफ़ या ख़्याल न करके, खुला-खुली ऐसे काम करते हैं, और फिर उनसे कोई कुछ नहीं कहता और न उनको ऐसे काम से रोक सकता है ॥

२१—इसी तरह, बहुत से ऊंची ज़ात वाले लोग, गोश्त और शराब खाने-पीने के वास्ते, डाक-बंगले और अंगरेज़ी होटल यानी मुसाफ़िर-घर में, जहाँ मुसलमान बावरची सब तरह का गोश्त और खाना पकाते हैं, जाकर खाना खाते हैं और बे-ख़ौफ़ इस काम में वर्ताओ करते हैं।

२२—बाज़े, गोश्तवालों की दुकान से क़लिया और कबाब खरीद् करके अपने मकान पर लाकर खाते हैं। इन लोगों पर कोई बिरादरी के लोग तान नहीं मारते हैं, और न उनको इस काम से रोकने का यत्न करते हैं।

२३—और बहुतेरे ऊंची ज़ातवाले, नौकरी की हालत में, उन चीज़ों को, जिनका छूना उनकी बिरादरी में पाप और निहायत नापाक समझा जाता है, रोज़मर्रा अपने हाथ से उठाते और धरते हैं, और वे काम जो उन्हें नहीं करने चाहिये, हर रोज़ करते हैं, और कुछ छूत उसमें नहीं मानते। पर परमार्थ के स्थान में पहुँच कर और सच्चे परमार्थियों से बातचीत करने के वक़्त, बड़ा अहंकार अपनी ज़ात का दिखाते हैं, और अपने तईं महा पवित्र समझते हैं, और

धन के लिये, नीच से नीच जगह पर दीनता और आधीनता के साथ बर्ताओ करते हैं, लेकिन परमार्थ के फ़ायदे के वास्ते कभी सिर भी नहीं झुकाते और जो कुछ लाभ न होवे तो ऐसी जगह क़दम भी नहीं रखते हैं ॥

२४—फिर जो लोग कि गुरु-भक्ति, अपने जीव की कल्याण के वास्ते, कर रहे हैं, उनको, अपनी भक्ति की चाल के बर्ताओ में मूर्ख और नादान और परमार्थ के विरोधी जीवों की निन्दा का ख़्याल करना किस तरह दुरुस्त हो सकता है ?

२५—वेद और शास्त्र के हुक्म के मुआफ़िक़, पिछले वक़्तों में, सब जीव, पहले ब्रह्मचर्य अवस्था धारण करते थे, और उस अवस्था में बराबर गुरु के पास रह कर उनकी सेवा करते थे और प्रशादी खाते थे और ब्रह्म-विद्या पढ़ते थे और गुरु से उपदेश लेकर अभ्यास करते थे। पर इस वक़्त में वह चाल बहुत कम जारी है, बल्कि बन्द हो गई है। और इस सबब से लोग गुरु और गुरु-भक्ति की महिमा से बे-ख़बर हैं और अपनी ओछी समझ और अनजानता से सच्चे परमार्थी अभ्यासियों की कार्रवाई पर तान और तिश्ना लगा कर पापी और निन्दक बनते हैं ॥

२६—अब जो कोई कि सच्चा परमार्थ कमाना चाहता है, वह ख़ुद विचार ले कि ऐसे नादान, अहंकारी और निगुरे संसारियों की बात, क़ाबिल सुनने और मानने के है या नहीं। ये लोग रात-दिन चूहों, बिल्लियों, कुत्तों,

मक्खियों, चींटियों और चिड़ियों का झूठा खाते हैं और गुरु और भक्त जन की प्रशादी लेने वालों पर तान मारते हैं। इस जगह पर तुलसी दास जी का एक शब्द जो उन्होंने ऐसे लोगों की निस्बत कहा है, लिखा जाता है :-

ऐसी चतुरता पर छार ।। टेक ।।
हरत पर धन धरत रुच रुच, भरत उद्र अहार ।
नेकहू नहिं प्रीति गुरु से, महा लम्पट जार ।।
ऐसी चतुरता० ।। १ ।।

मात मरि है, पितहु मरि है, मरि है कुल परिवार ।
जानत एक दिन हमहु मरि हैं, तऊ न तजत विकार ।।
ऐसी चतुरता० ।। २ ।।

गुरु प्रशाद में छूत लावत, करत लोकाचार ।
नारि का मुख धाय चूमत, अधर (होंठ) लिपटी लार (थूक) ।।
ऐसी चतुरता० ।। ३ ।।

संत जन से द्रोह राखत, नात साढ़ू सार ।
तुलसी ऐसे पतित जन को, तजत न कीजे बार ।।
ऐसी चतुरता० ।। ४ ।।

२७-और एक पद दूसरा भी तुलसीदासजी ने निस्बत परमार्थ के विरोधियों के लिखा है, उसकी भी दो-तीन कड़ियाँ लिखी जाती हैं। इसमें समझाया है कि चाहे कैसे ही नजदीक के रिश्तेदार होवें, और जो वे परमार्थ में विरोध करें तो उनको दुश्मन के मुआफ़िक़ जान कर क़तई छोड़ देवे ।।

जिनके प्रिय न राम वैदेही ।।टेक।।
तजिये तिनहिं, कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ।। १ ।।

पिता तजे प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तजे, नाह (पति) बृजबनिता, भए जग मंगलकारी ॥ २ ॥

२८—सतगुरु राधास्वामी दयाल ने भी ऐसे बाब (विषय) में एक शब्द फ़रमाया है जिसमें हुक्म है कि जहाँ तक बने कुटुम्बी और रिश्तेदारों से मेल रखते हुए भक्ति करे, तो इसमें दोनों का फ़ायदा होगा। लेकिन जो उनमें से कोई परमार्थ में बे-मतलब विघ्न डाले और सख़्त विरोधी मालिक के भजन और गुरु भक्ति का होवे, और इसी तरह उस पर अपना क़ाबू न चले, तो दीनता और मुलायमियत के साथ उससे अलेहदा हो जाने में किसी तरह का पाप और दोष नहीं है। क्योंकि इस बात का बड़ा ख़्याल रखना चाहिये कि मूर्ख जीव जो अपनी अनजानता से परमार्थ में विघ्न डालते हैं, उनके संग और सबब करके, किसी तरह अपनी भक्ति में ख़लल न पड़े। नहीं तो जनमानजन्म पछताना पड़ेगा और उनका भी ऐसे चाल-चलन से भारी नुक़सान होगा। यानी बजाय उनके जीव के कारज होने के, सच्चे परमार्थी के संग-साथ से, उनके सिर पर निन्दक और विघ्न-कारक होने का पाप का पहाड़ चढ़ेगा। और उसके ऐवज़ में बहुत दुख उनको सहने पड़ेंगे। क्योंकि जैसे एक आदमी को सच्चे परमार्थ में लगाने का भारी पुन्य होता है, और उपकारक पर मालिक की दया आती है और उसका उद्धार जल्दी होता है, ऐसे ही परमार्थ से हटाने वाले या परमार्थ की करनी में विघ्न डालने वाले का ऐसा भारी पाप होता है कि जिसके सबब से उसको

इस जन्म में और भी आगे के जन्मों में दुख भोगने पड़ते हैं ॥

शब्द

धोका मत खाना जग आय पियारे ।
धोका मत खाना जग आय ॥ १ ॥

कोई मीत न जानो अपना ।
सब ठग बैठे फाँसी लाय ॥ २ ॥

जब सच्चा होय चले डगर गुरु ।
तबही चौंकें रोकें आय ॥ ३ ॥

ऊँच नीच कहें बचन तोख के ।
मति को तेरी दें भर्माय ॥ ४ ॥

इन से रहना समझ बूझ कर ।
हैं ये बैरी हित दिखलाय ॥ ५ ॥

तेरी हानि लाभ नहिं सोचें ।
अपने स्वार्थ रहें लिपटाय ॥ ६ ॥

तू भी चतुरा गुरु का प्यारा ।
उन संग रहु गुरु चरण समाय ॥ ७ ॥

उनको भी इस भाँति भलाई ।
तेरी भक्ति न थकती जाय ॥ ८ ॥

जो बेमुख गुरु भक्ति नाम से ।
कोई तरह क़ाबू नहिं पाय ॥ ९ ॥

तो युक्ति से दीन विधी से।
छोड़ चलो सँग दोष न ताय ॥ १० ॥

जो सन्मुख गुरु भक्ति नाम से।
होय कदाचित मेल मिलाय ॥ ११ ॥

राधास्वामी कहत बनाई।
बहुर बहुर तू भक्ति कमाय ॥ १२ ॥

भक्ति न छूटे कोई युक्ति से।
नहिं तो बहु विधि रहो पछिताय ॥ १३ ॥

२६—तीसरा, पुरुष और स्त्रियों को एक गुरु धारण करके दूसरा गुरु करना। यह निहायत कम समझ और ओछी बुद्धि वालों की बात है। वे कहते हैं कि स्त्रियों का गुरु उनका पति है, और दूसरा गुरु धारण करने की उनको ज़रूरत नहीं है। और इसी तरह से पुरुषों का गुरु वह पंडित या पुरोहित है कि जिसने उनको यज्ञोपवीत यानी जनेऊ पहिनाया। जो यही बात दुरुस्त है तो फिर परमार्थ की समझ और करनी तो ख़त्म हुई, क्योंकि पुरुष अपनी २ स्त्रियों से, सिवाय दुनिया के कारोबार के या निहायत नीचे दर्जे की सेवा और ख़िदमत के, जैसे रोटी पकाना, मकान और बर्तन साफ़ करना और लड़कों को खिलाना या अपने भोग-बिलास के, और कोई काम नहीं लेता, और न उनको परमार्थ की बात सुनाता और समझाता है। फिर ऐसे गुरु से क्या फ़ायदा परमार्थ का, या अंतर की आँख खुलने का, या मालिक की पहिचान और उसके

मुनासिब भजन और बंदगी करने का हासिल हो सकता है ? जैसे कि वह पुरुष परमार्थ और परमार्थी विद्या से ख़ाली है, ऐसे ही उसकी स्त्री भी ख़ाली रहेगी। और जो हर एक ऊँचो क़ौम का दस्तूर, जो इस वक़्त में जारी है, देखा जाता है तो मालूम होता है कि बहुत सी जगह कुल्ल स्त्रियाँ, बेवा और सुहागिन, बराबर गुरु धारण करती हैं, और कहीं २ सिर्फ़ बेवा स्त्रियाँ गुरु धारण करती हैं। जो निन्दकों की यह बात सही है कि स्त्रियों को मुतलक़ गुरु करना ज़रूर नहीं, तो फिर बेवा होने पर उनको भेषों या पंडितों या साहबजादों या गुसाँइयों से क्यों उपदेश दिलाया जाता है ? उनके पति का ही उपदेश क्यों नहीं काफ़ी समझा जाता ? पर, किसी को भी अपने पति से कुछ परमार्थी मदद नहीं मिलती, नहीं तो बेवा होने पर वह उसी की कार्रवाई करती। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि उन लोगों की यह निन्दा की बातें बिल्कुल नादानी और बे-ख़बरी के सबब से हैं कि अपने और बिरादरी के घरों के हाल से अच्छी तरह से वाक़िफ़ नहीं हैं और दूसरों पर तान मारने को तैयार होते हैं ॥

३०—इसी तरह, जो पुरुषों को जनेऊ देने वाले से उपदेश काफ़ी मिल जाता, तो फिर वे उसी के मुवाफ़िक़ कार्रवाई करते, और परमार्थी फ़ायदा उससे उठाते। पर सब जगह यह बात देखने में आती है कि सिवाय उन लोगों के (कि जिनका मत यह है कि दुनिया के भोग-विलास करना और जैसे-तैसे धन जमा कर के अपने मन

की दुनियावी चाहों के पूरा करने में ख़र्च करना, और जिनका ख़ुदा और परमेश्वर धन है कि उस की प्राप्ति के वास्ते जैसी-तैसी ख़िदमत और चाहें, जिसकी नौकरी होवे, बड़ी ख़ुशी और उमंग के साथ बजा लाना और और जिनका गुरु स्त्री है कि जैसे वह हुक्म करे, उसकी दिल और जान से तामील करना) और जितने ऊँची ज़ात वाले लोग हैं, वे ज़रूर दूसरा गुरु धारण करते हैं। यानी जो टेकी हैं, वे अपने घराने की चाल और रस्म के मुआफ़िक़ वंशावली गुरु धारण करते हैं। और जो सच्चे खोजी परमार्थ के हैं, चाहे ऐसी खोज उनके मन में वंशावली गुरु करने से पहले ही पैदा होवे या पीछे, वे सच्चा और भेदी गुरु तलाश करके, चाहे जिस मत और पंथ में मिले, उसको अपना गुरु धारण करके अपना जन्म सुफल करते हैं। फिर इस मुआमले में भी उन निन्दक साहबों की बे-ख़बरी और नादानी, अपनी बिरादरी और कुल्ल ऊँची क़ौमों की रस्म और चाल से, ज़ाहिर है॥

३१—अब समझना चाहिये कि गुरु नाम परमार्थ का रास्ता बताने वाले और अन्धेरे में प्रकाश कराने वाले का है। सो जब कि यह ताक़त किसी में पाई नहीं जाती, तो उसका नाम गुरु किस तरह हो सकता है? जो लोग कि टेकी हैं और सच्चे परमार्थ से बे-ख़बर, वे अपने बाप-दादों के गुरु की औलाद से जो कोई मिले, चाहे वह कुछ जानता है या नहीं, उसी को गुरु बनाते हैं। लेकिन जब उनके दिल में सच्चा खोज पैदा होता है, तब वे देखते हैं

कि जिसको उन्होंने गुरु बनाया, वह मुतलक़ गुरुवाई की चाल से और असली परमार्थ से आप बे-ख़बर हैं, फिर दूसरे को वह क्या बतावेगा और जीव के कल्याण के मामले में उसकी क्या मदद करेगा, तब लाचार होकर वे भेदी और अभ्यासी गुरु खोज कर उसकी शरण लेते हैं और अपने जीव का कारज उसके वसीले से बनवाते हैं। तो अब समझना चाहिये कि ऐसे नादान गुरु के छोड़ने में क्या पाप और बुराई हुई ? जो कोई अपने लड़के को पढ़ाना चाहता है और किसी उस्ताद के पास उसको भेजता है, तो जो वह उस्ताद पढ़ाने के क़ाबिल है तो ख़ैर, नहीं तो फ़ौरन उसको दूसरा उस्ताद तलाश करके उसके सुपुर्द करता है। और जो विद्यार्थी कि एक उस्ताद से पढ़ता है और जब उसको ज़्यादा इल्म की चाह होती है या बड़ी-बड़ी कितावें पढ़ना चाहता है कि जो वह उस्ताद नहीं पढ़ा सकता और समझा सकता है, तो वह दूसरे उस्ताद की, जो उससे ज़्यादा इल्म रखता है, तलाश करके, उससे इल्म पढ़ना शुरू करता है। जो वह यह टेक बाँधता कि एक उस्ताद करके दूसरा नहीं करना चाहिए या जो लड़के मदरसे में एक दर्जे में पढ़ते हैं, वे उम्र भर उसी उस्ताद से पढ़ने का इरादा करें और ऊँचे दर्जे में चढ़ना न चाहें या दर्जा चढ़ने पर भी उस उस्ताद को न छोड़ें, तो ये सब कौदन और मूर्ख रहेंगे और उनको, तरक़्क़ी इल्म की, कभी हासिल न होगी। इसी तरह जो वंशावली गुरू या अपने पति को गुरु मान कर बैठ रहेंगे,

वे परमार्थ में हमेशा कौदन और मूर्ख बने रहेंगे, और उनको कुछ परमार्थी फ़ायदा हासिल न होगा। संतों ने कहा है कि:—

सुरत-शब्द बिन जो गुरु होई।
ताको छोड़ो पाप कटा॥

झूठे गुरु की टेक को, तजत न कीजे बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥
गुरू मिला है हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले, तब लगे ठिकाना ठौर॥

गुरू सोई जो शब्द सनेही।
शब्द बिना दूसर नहिं सेई॥
शब्द कमावे सो गुरु पूरा।
उन चरणन की होजा धूरा॥
और पहिचान करो मत कोई।
लच्छ अलच्छ न देखो सोई॥
शब्द भेद लेकर तुम उनसे।
शब्द कमाओ तुम तन मन से॥

३२—अब जो कोई ऐसी टेक बाँधते हैं कि एक गुरु करके दूसरा नहीं करना चाहिये, तो उनको जानना चाहिये कि उनके मन में परमार्थ की चाह बिलकुल नहीं है, नहीं तो वह परख कर गुरु धारण करते, या जो गुरु, पुरानी रस्म के मुआफ़िक़, उन दिनों में कि परमार्थ का खोज और शौक़ नहीं था, कर लिया था, तो फिर

सच्चा और पूरा गुरु खोज कर धारण करते। लेकिन संत अथवा राधास्वामी मत का उपदेश संसारी और टेकी जीवों के वास्ते नहीं है। यह सिर्फ़ उन लोगों के वास्ते है कि जिनको अपनी और दुनिया की हालत देख कर सच्ची विरह और ख़्वाहिश अपने जीव के कल्याण की, हृदय में, उपजी है। ऐसों की शान्ति, सिवाय सच्चे और पूरे गुरु के, कोई दूसरा नहीं कर सकता है और इन्हीं जीवों को पूरे गुरु की क़दर और पहिचान भी आवेगी ॥

३३—कहा है कि

गुरु कीजे जान और पानी पीजे छान

जिसने बे-जाने और बे-समझे, गुरु कर लिया, उसे अन्त में पछताना पड़ेगा ॥

३४—आज-कल के वंशावली गुरुओं का यह हाल है कि अपने चेले को वसीयत करते हैं कि बाद उनके मरने के उनकी गया करे, ताकि उनके जीव को स्वर्ग मिले। जब ऐसे गुरु मिले कि वे आप चेले की गया करने पर अपने जीव का कुछ कल्याण समझते हैं, तो अफ़सोस है ऐसी गुरुवाई के नाम पर, और हज़ार अफ़सोस है ऐसे मूर्खों की समझ पर, कि जो ऐसे नादानों को अपना गुरू बनाते हैं। ऐसे गुरु और चेले ज़रूर संतों की और उनके सेवकों की निन्दा करेंगे। और उस निन्दा के बचनों को वे जीव सुनेंगे और मानेंगे, जो कि इन नादान मूर्ख गुरु-चेलों से भी बढ़ कर मूर्ख और निपट संसारी हैं ॥

३५—चौथा, औरतों के सतसंग में शामिल होने से लिहाज़ पर्दे का न रहना। मालूम होवे कि औरत और मर्द में सूरत बराबर मौजूद है और उनकी ताक़त भी, सिवाय जिस्मानी यानी देही की क़ुव्वत के (जिसमें थोड़ी कमी-बेशी है), बराबर है ॥

३६—देखो, आज-कल लड़कियाँ मदरसे में पढ़ कर मिस्ल लड़कों के, बी. ए. और एम. ए. और डाक्टरी का दर्जा हासिल करती हैं। और इसी तरह भक्तमाल की पोथी के पढ़ने से मालूम होगा कि पिछले वक़्तों में बहुत सी स्त्रियाँ भक्त हुईं और उनको भारी दर्जा मालिक के दरबार में मिला कि अब तक लोग उनका नाम बड़े भाव और प्रेम के साथ लेते हैं ॥

३७—अब विचारना चाहिए कि यह दर्जे, विद्या या भक्ति और परमार्थ के, पर्दे में रहने से, कभी हासिल नहीं हो सकते। और जो स्त्रियाँ कि शुरू से बराबर पर्दे में रहती हैं, उनकी समझ और अक़्ल निहायत मोटी और ओछी होती है और अपने जीव के कल्याण की उनको कुछ भी ख़बर नहीं होती ॥

३८—किस क़दर अफ़सोस की बात है कि जो औरतें क़ाबिल विद्या के पढ़ने और भक्ति की कमाई करने के हैं, वे सिर्फ़ नीच से नीच कामों में, जो कि दो-चार रुपये महीने को मजदूरनी कर सकती है, लगाई जावें, और विद्या और भक्ति के फ़ायदे से महरूम रही आवें, बल्कि ऐसी

अटकें उनके वास्ते लगाई जावें कि वे इस दौलत के बिलकुल बे-नसीब रहें ?

३९—बहुत विद्या पढ़ने की इस क़द्र ज़रूरत नहीं है। लेकिन इतना ज़रूर चाहिए कि जिससे वे अपनी माँ-बाप, भाई-बन्धु और खाविन्द और लड़के को चिट्ठी लिख-पढ़ सकें और अपने घर का हिसाब-किताब लिख लेवें और अपने मत की परमार्थी पोथियाँ पढ़ कर समझ लेवें।

४०–अब ख़्याल करो कि जो उनको इस क़द्र ताक़त हासिल हो गई और रास्ता भी परमार्थी अभ्यास का बता दिया गया, तो चाहे वे घर में रहें और चाहे परदेस में अपने पति के साथ उनको अकेले रहना पड़े, उनके पास हमेशा सच्चा और निर्मल प्रेम पैदा करने और बढ़ाने वाला संगी, पोथी स्वरूप में, मौजूद रहेगा। जब, सब कारोबार घर के से फ़ुरसत हुई, उसी वक़्त पोथी को पढ़ने लगें, तो किस क़द्र फ़ायदा होगा कि उनका वक़्त मालिक की याद या अपने मन और इन्द्रियों की सम्हाल के ख़्याल में बसर होगा, और निन्दा-स्तुति के पाप और फ़िज़ूल इधर उधर की बातें और इसकी-उसकी गिलह और चबाव करने से बच जावेंगी ॥

४१—स्त्रियों के जाहिल और मूर्ख रखने का सारा पाप और भार उनके पुरुषों की गर्दन पर है, क्योंकि जो पुरुष आप सच्चा परमार्थी होगा, वह अपनी स्त्री को भी ज़रूर शरीक करेगा, और जो आप थोड़ी विद्या की क़द्र जानेगा कि जिनसे उसकी स्त्री उसको, और वह अपनी स्त्री को,

चिट्ठी-पत्री भेज सके और घर का हिसाब-किताब लिख सके, तो वह ज़रूर अपनी स्त्री को इस क़दर विद्या ज़ोर देकर पढ़वावेगा और उसको पोथी पढ़ने और परमार्थी अभ्यास करने की तवज्जह दिलाता रहेगा कि जिस से उस स्त्री का, और भी उस पुरुष का, इस दुनिया में और फिर परलोक में भला होवे और पाप कर्मों से बचें ॥

४२—और जो आप पूरे गुरु से नहीं मिले और कुछ परमार्थ की कार नहीं करते और अपने वक़्त और अपनी नर देही की क़दर नहीं जानते, वे आप ही अभागी रहेंगे और अपनी स्त्री भी अभागी बनावेंगे, और इस पाप का फल आगे भोगेंगे। क्योंकि जिसने नर देही पाकर, उसको पशु की तरह मेहनत-मज़दूरी और खान-पान में खर्च किया, वह मनुष्य, चाहे स्त्री होवे चाहे पुरुष, पशु के समान है ॥

४३—अब पर्दे के मामले में ख़्याल करो कि किस क़दर स्त्रियों की पर्दे-दारी लोग कर सकते हैं ? जब स्त्रियाँ गँगा-यमुना नहाने जाती हैं या तीर्थों के मेले और तमाशे में जाती हैं और जा-ब-जा तीर्थों के मक़ामों पर, मन्दिरों में, दर्शन करती फिरती हैं, या अपनी ज़ात और बिरादरी में तीज-त्यौहार और ज्योनार और सियापा और मुहकान वग़ैरा में जाती हैं, या जब अपने गुरू या इष्ट-देव की सवारी के साथ बाज़ार में निकलती हैं, या शीतला और बराही और देवी-भवानी या और कोई देवता की की खास २ वक़्त पर पूजा की जाती हैं, तो उस वक़्त सर-ए-

बाज़ार और गली-कूचों में तो वे, बे-तकल्लुफ़ मुँह खोले हुए और उमदा-उमदा पोशाक और ज़ेवर पहने हुए बराबर निकलती हैं। और सब की नज़र उन पर पड़ती है। और मंदिरों में और मेलों में बराबर औरतों और मर्दों की भीड़-भाड़ में धक्के खाती हैं। और दरिया में सैकड़ों मर्दों और औरतों के रू-ब-रू नहाती हैं। अब विचारो कि वहाँ किस क़दर पर्दा क़ायम रहता है और किस क़दर ग़ैर आदमियों की रोक और अटक हो सकती है? सिवाय इसके, जब रेल में सवार होकर पहरों और दिनों का सफ़र दिन और रात में करती हैं और उसी रेल गाड़ी में ग़ैर मर्द, ऊँची और नीची ज़ात वाले, और ग़ैर क़ौम वाले, भी बैठे हुए हैं, और स्टेशन पर उतर कर भीड़-भाड़ में होकर गुज़रती हैं, वहाँ किस कदर पर्दा हो सकता है? और शादी और ग़मी के वक़्त अपने घरों में किस क़दर मर्द जमा होते हैं और वहाँ औरतें और मर्द मिल कर कार्रवाई करते हैं?

४४—और अब सतसंग का हाल सुनिये कि वहाँ सिर्फ़ उम्र-रसीदा यानी बूढ़ी औरतें ख़ास कर शामिल होती हैं और उनके साथ भी कोई न कोई उनका ख़ास रिश्तेदार संग होता है। और पहिले तो नौ-जवान औरतें आम सतसंग में शामिल नहीं की जाती हैं, और फिर अलेहदा पर्दे में बिठाई जाती हैं कि जहाँ से पर्दे में वे बचन सुन सकती हैं। और जो कोई सतसंग में कभी-कभी बैठती हैं तो उनके ख़ाविन्द या माँ-बाप या भाई या लड़के उनके

संग होते हैं। एक तरफ़, जो औरतों के वास्ते मुक़र्रर है और जहाँ कोई मर्द नहीं बैठता है, उनकी बैठक रहती है। और जब सतसंग बरख़ास्त होता है, तब उसी वक़्त अपने रिश्तेदारों के साथ, बाद उठ जाने मर्दों के, अपने अपने घर चली जाती हैं। और जो कोई ठहरती हैं तो वे ज़नाने मकान में बैठती हैं। मर्दों की सफ़ में कोई औरत नहीं बैठती और न किसी की आपस में बात-चीत होती है। बल्कि मर्दों की भी आपस में बात-चीत बहुत कम होती है, क्योंकि सब के सब या तो सतसंग के बचनों के सुनने में मश्ग़ूल रहते हैं, और बाद सतसंग के, अपने अभ्यास में अलेहदा बैठ जाते हैं, औरतें ज़नाने मक़ान में, और मर्द मर्दाने मक़ान में। और जब सतसंग में बैठती हैं, तो चादर ओढ़ कर कि जिससे उनके सर्व अंग ढके रहते हैं। और सिवाय चन्द पुरानी और बूढ़ी औरतों के, बाक़ी औरतें, और ख़ास कर जवान औरतें, कभी-कभी रात के सतसंग में आती हैं। हर रोज़ कोई नहीं आती, और जब आती हैं तो अपने ख़ास रिश्तेदारों के संग, और उन्हीं के संग घर को, बाद सतसंग के, वापस जाती हैं। और दिन के वक़्त जवान औरतें बहुत कम सतसंग में शामिल होती हैं और जो कभी होती हैं तो वे पर्दे के मकान में, जो सतसंग घर से मिला हुआ है, बैठती हैं। कोई-कोई साहब अपनी स्त्री व रिश्तेदार औरत का दूर और पर्दे में बैठना पसन्द नहीं करते, तो उनकी स्त्री या रिश्तेदार औरत, उनकी ख़ास इजाज़त से, चादर ओढ़ कर सतसंग में बैठती हैं। मगर

ऐसी सूरत बहुत कम होती है। यानी जब परदेसी लोग आते हैं और हफ़्ता अशरा या दो हफ़्ता ठहरते हैं या कोई कभी एक या दो महीने ठहरते हैं, तो उनके संग जो औरतें ख़ास सतसंग और भजन के वास्ते आती हैं वे अलबत्ता अपने परमार्थी शौक़ और उमंग के साथ सतसंग में बैठती हैं। मगर उनकी नज़र हमेशा दर्शन पर जमी रहती है। और इसी तरह कुल मर्द और औरतें अपनी नज़र सतसंग में बचन कहने वाले पर जमाये रखते हैं। यह एक क़िस्म का ख़ास अभ्यास सतसंग में जारी है कि या तो नज़र जमा कर बैठते हैं या आँखें बन्द करके ध्यान की हालत में बैठते हैं। फिर बहुत कम ऐसा होता है कि मर्द या औरत एक दूसरे को देखे। सब अपने अपने अंतरी आनंद और फ़ायदे के वास्ते, ध्यान के क़ायदे के मुआफ़िक़, अपनी नज़र बाहर बचन सुनाने वाले पर और अंतर में ध्यान के स्वरूप पर जमा कर बैठते हैं। अब ख़्याल करो कि इस में किस क़दर बे-पर्दगी है? सिर्फ़ मालिक की दया और दर्शन की प्राप्ति के वास्ते यह सब काम किया जाता है और दुनिया और उसके ख़्यालात उस वक़्त वहाँ बहुत दूर रहते हैं। और दूसरे मक़ामों और मौक़ों पर जहाँ औरतें बाहर निकलती हैं, वहाँ कोई काम ख़ास परमार्थी नहीं करती हैं, बल्कि सैर और तमाशे देखती हैं। फिर ख़्याल करो कि उस हालत में और सतसंग की हालत में, किस क़दर भारी फ़र्क़ है? और वहाँ के और यहाँ के फ़ायदे में किस क़दर भारी तफ़ावत है?

४५—ऐसे सतसंग में, जो कोई मर्द या औरत जावेंगे,

वे अपना परलोक का फ़ायदा हासिल कर सकते हैं, और वह युक्ति उनको मालूम हो सकती है जिसकी कमाई घर बैठे करके मालिक के चरणों का रस और आनंद अपने घट में ले सकते हैं। कभी-कभी सतसंग में जाना उनका ज़रूर होगा कि जिससे वे अपने अभ्यास में मदद और तरक़्क़ी के वास्ते हिदायत हासिल करें, और जो कुछ कमाई बनी है, उसका हाल ज़ाहिर करके, जो कुछ उसमें कोई बात इसलाह-तलब होवे, उसकी दुरुस्ती करावें। यह घट में अभ्यास करने की युक्ति, जो संतों ने, और ख़ास कर इस ज़माने में, सतगुरु राधास्वामी दयाल ने अब दया करके जारी फ़रमाई, और जिसको औरत और मर्द, और लड़का और जवान और बूढ़ा आसानी के साथ, वग़ैर किसी ख़ौफ़ और ख़तरे के, करके, अपने जीव का कल्याण होता हुआ, जीते-जी अपनी आँखों से, देख सकता है। अन्य किसी मत या पंथ या समाज में, जो आज-कल जारी हैं, वह आसान युक्ति किसी को नहीं मालूम है। वह सिर्फ़ राधास्वामी मत की संगत में ही मालूम हो सकती है। जिस मर्द या औरत को, अपने जीव के कल्याण की सच्ची चाह और ज़रूरत होवे, वह उस युक्ति को, राधास्वामी संगत में दरियाफ़्त करके, उसका अभ्यास गुप्त अपने घर में बैठ-कर, कर सकता है, और अपनी नर देही, जीते-जी, घट का आनन्द और रस लेकर, सुफल कर सकता है। और जो इस बात को नहीं मानते, उनको इख़्तियार है, पर अंत में

उनको बहुत पछताना पड़ेगा, और उस वक़्त अफ़सोस करके हाथ मलने से कुछ फ़ायदा न होगा ॥

४६—अब ख़्याल करो कि ऐसे सतसंग में शामिल होने, और ऐसे सच्चे और पूरे मत की पोथियों के पढ़ने, या उसकी युक्ति का अन्तरमुख अभ्यास करने से, किसी मर्द या औरत और ख़ास कर बेवा औरत के रोकने में किस क़दर उस जीव का नुक़सान और हर्ज होगा ? और ऐसे रोकने और अटक करने वालों को किस क़दर पाप होगा ?

४७—अलबत्ता एहतियात और सम्हाल हर काम में ज़रूर है। चाहे मर्द होवे या औरत, उसको एहतियात और होशियारी और सम्हाल के साथ, अपना बर्ताव सतसंग में, और भी अपने मकान पर, करना चाहिये। और जो इस में किसी क़दर ग़फ़लत या बे-परवाही नज़र आवे और जो कोई उसको होशियार करे, और एहतियात का तरीक़ा बतावे, वह सच्चा हितकारी है और उसका बचन मानना ज़रूर और मुनासिब है, क्योंकि परमार्थियों पर भी फ़र्ज़ है कि जहाँ तक मुमकिन होवे, ऐसी चाल-ढाल इख़्तियार करें कि जिसमें दुनिया के कारोबार में भी ख़लल न पड़े और परमार्थ भी उनका बनता जावे। और इस वास्ते औसत यानी मध्य के दर्जे की चाल चलना, हर काम में, चाहे परमार्थी होवे या दुनियावी, हमेशा फायदेमंद होता है। और खैंच और तान में, इस सिरे पर या उस सिरे पर, हमेशा दुख या तकलीफ़ पैदा होती है। जिस क़दर मुना-सिब और ज़रूरी एहतियात और पर्दा औरतों को चाहिये,

वह उनको रखना चाहिये, और जिस क़दर मर्दों को एह-तियात ज़रूर और मुनासिब है, उसके मुआफ़िक़ उनको बर्ताव करना चाहिये। मगर सतसंग, और युक्ति लेकर अभ्यास करना हर एक को मुनासिब और ज़रूर है। संतों ने कहा है कि—

लाज जग काज बिगाड़ा री। मोह जग फन्दा डारा री॥

जो कामिन पर्दे रहें, और सुनें न गुरुमुख बात।
सो तो होंगी शूकरी, फिरें उघाड़े गात॥

४८—मुनासिब दर्जे की लाज और एहतियात दुनिया की ज़रूर है, ग़ैर-वाजिब और फ़िज़ूल लाज और पर्दा, कि जिस में परमार्थ का अकाज होवे, नहीं करना चाहिये। अलबत्ता गहरे प्रेमी परमार्थियों की चाल सब से निराली होगी। और इसी तरह दुनिया में जिस किसी को किसी बात का गहरा शौक़ हो गया है, उसका बर्ताओ भी और सब से न्यारा होगा। पर ऐसे लोग क्या परमार्थ और क्या दुनिया में, बहुत कम और बिरले होते हैं, और उन पर किसी का हुक्म नहीं चल सकता, और न वे किसी क़ायदे के पाबंद हो सकते हैं॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१, शब्द २० के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

अंत हुआ जग माहिं। आदि घर अपना भूली॥ १॥

अर्थ—सुरत, भोगों में फँस कर, जड़खान में उतर गई, और संतों के दसवें द्वार को, जो तीन लोक की रचना का

आदि है, और जहाँ से सुरत, पिंड में उतरी थी, भूल गई ॥

मध्य गही पुनि आय । अन्त को फिर ले तोली ॥ २ ॥

अर्थ—और फिर मध्य यानी मृत्यु लोक में नर देह पाकर त्रिलोकी के अंत पद की, जो कि दसवाँ द्वार है, सुरत ने खबर ली ॥

आदि अंत मध छोड़ । गही जा अपनी मूली ॥ ३ ॥

अर्थ—और फिर, इन तीनों स्थानों यानी दसवाँ द्वार और मृत्युलोक में जड़ खान को छोड़कर अपने मूल पद यानी सत्तपुरुष राधास्वामी देश में पहुँची, या उस का निशाना और इष्ट बाँधकर उस तरफ़ को चलने लगी ॥

जीवन पदवी मिले । चढ़े जो अब के सूली ॥ ४ ॥

अर्थ—सूली मतलब उस धार से है जो सहसदल-कँवल से गुदा चक्र तक आई है । सो जो कोई इस धार को पकड़ कर ऊपर को चढ़े, वही छठे चक्र के पार जा कर, मौत को जीत लेगा और फिर सत्तलोक में पहुँच कर अमर हो जावेगा ।

ससे मारिया सिंह । कौन यह समझे बोली ॥ ५ ॥

अर्थ—और फिर वही सुरत, जो कि मुआफ़िक़ ख़रगोश के, पिंड में ग़रीब और निबल थी, दसवे द्वार में पहुँच कर, सिंह यानी काल को मार लेगी ॥

मात पिता दोउ जने । पूत ने बैठ खटोली ॥ ६ ॥

अर्थ—जब सुरत, गर्भ में यानी षट चक्र के देश में आई, तब उसने पहिले ब्रह्मांड और पिंड की रचना करी, यानी माया और ब्रह्म के पद उसी से प्रकट हुए ।

और जब सुरत जन्मी, यानी जीव गर्भ से बाहर आया, तब वही जीव, पिंड में उतर कर बैठने से, माया और ब्रह्म का पुत्र हो गया ॥

मछली चढ़ी अकाश । धरन कर डारी पोली ॥ ७ ॥

अर्थ—और जब सुरत मछली की तरह, शब्द की धार को पकड़ कर उल्टी, यानी ऊपर को चढ़ी, तब वह धरन यानी पिंड को पोला या ख़ाली कर गई ॥

चान्द सूर पाताल से । निकले पट खोली ॥ ८ ॥

अर्थ—जब चढ़ते चढ़ते दसवें द्वार के परे गई, तब सूरज और चाँद यानी त्रिकुटी और सुन्न स्थान दोनों, पाताल यानी नीचे नज़राई पड़े ॥

चोरन पकड़ा साह । साह ने पहरी चोली ॥ ९ ॥

अर्थ—जब सुरत यानी जीव का उतार हुआ तब काल और कर्म, और काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार वग़ैरा चोरों ने इसको घेर कर बन्द, यानी चोले में गिरफ़्तार कर लिया ॥

अमृत पी पी मरें । ज़हर की गाँठी खोली ॥१०॥

अर्थ—और जब वही जीव यानी सुरत उलट कर अपने घर की तरफ़ को चली और ब्रह्मांड के परे चढ़ गई और अमी की धारा बहाने लगी, तब वही सब चोर, अमृत पी कर, मर गये, और उनकी ज़हर की गाँठ खुल कर भस्म हो गई ॥

राधास्वामी गाइया । यह भेद अमोली ॥११॥

अर्थ—राधास्वामी ने यह अमोल पद का अमोल भेद गाया ॥

संत बिन को बूझि है। यह मर्म अतोली ॥ १२ ॥

अर्थ—और इसको बिना संत के, कोई नहीं समझ सकता है ॥

अजा मारिया भेड़िया। ले मिर्गन टोली ॥ १३ ॥

अर्थ—अजा बकरी को कहते हैं, सो यह सूरत, सुरत की, पिंड में थी, यानी काल भेड़िये का खाजा हो रही थी। सो जब सतगुरु की कृपा से उलट कर ब्रह्मांड और उस के परे पहुँची, तो मन और इन्द्रियों को संग लेकर, काल-भेड़िये पर चढ़ आई और उसको मार दिया ॥

सुरत शब्द मेला भया। ले अनरस घोली ॥ १४ ॥

अर्थ—और तब, सुरत का, शब्द के साथ मेला हो गया, यानी अमृत का भंडार खोल दिया ॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१, शब्द २१ के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

गुरु उलटी बात बताई। मूरखता खूब सिखाई ॥ १ ॥

अर्थ—गुरु ने यह उलटी बात बताई कि संसार में मूर्ख हो करके बर्त, यानी चतुराई छोड़ दे, तो तेरा कोई दामन नहीं पकड़ सकेगा ॥

और दूसरे यह कि मूर यानी मूल पद की रक्षा और सम्हाल रख, यानी इस तरफ़ से उलट कर, राधास्वामी के चरणों को दृढ़ करके पकड़ ॥

सोते ने जमा कमाई। जगते ने माल गँवाई ॥ २ ॥

अर्थ—जिस किसी ने संसार की तरफ़ से उदास होकर, इसके कारोबार में दख़ल देना छोड़ दिया, यानी इस तरफ़ से सो गया, और परमार्थ में लग गया, उसी ने जमा हासिल की, यानी परमार्थ की कमाई करके प्रेम की दौलत पाई। और जो संसार की तरफ़ मुतवज्जह रहा, और बहुत होशियारी और शौक़ से उसके कारोबार करता रहा, उसी ने परमार्थ की दौलत खोई और अपनी चैतन्यता मुफ़्त गँवा दी ॥

बैठे ने रस्ता काटा। चलते ने बाट न पाई ॥ ३ ॥

अर्थ—जो मन कि निश्चल हो करके घट में बैठा, वही ऊँचे की तरफ़ चढ़ने लगा, और परमार्थ का रास्ता तै करता हुआ, घर की तरफ़ चला। और जो मन कि चंचल रहा, और इधर-उधर संसार में दौड़ता रहा, उसको घर का रास्ता नहीं मिला, और न वह उस तरफ़ को चला ॥

धरती चढ़ गगना आई। सुन्नी पाताल समाई ॥ ४ ॥

अर्थ—जो सुरत कि अभ्यास करके ब्रह्मांड में और उसके परे पहुँची, उसके सँग धरती, यानी माया भी, जिसका आदि निकास त्रिकुटी से हुआ है, उलट कर, अपने असल में जा मिली। और जो सुरत कि संसार में लिपट रही, वह माया के साथ, नीचे से नीचे के मक़ाम तक, उतरती चली गई ॥

चोरी से ख़ाविन्द रीझा। सच्चे की मार खपाई ॥ ५ ॥

अर्थ—जो शख़्स कि अपने परमार्थ की कमाई और

तरक्क़ी को जगत से छिपाये हुए चला, उससे मालिक प्रसन्न हुआ। और जिस किसी ने कि सचौटी के साथ अपने परमार्थ का भेद और कमाई का हाल जगत के जीवों से खोल कर कहा, उसी को अनेक तरह के विघ्नों से मुक़ाबिला करना पड़ा, और सख़्त तकलीफ़ उठानी पड़ी, और उसी के परमार्थ में घाटा हुआ ॥

अग्नी को जाड़ा लगा। वर्षा से सूखी साखा ॥ ६ ॥

अर्थ—जब सुरत, गगन की तरफ़ को चढ़ने लगी, तब अग्नि यानी माया (जो सुरत की मदद से चैतन्य थी) कांपने लगी, यानी उसकी चैतन्यता खिंच गई। और जब अमृत की वर्षा, अंतर में चढ़ने वाली सुरत पर, होने लगी, तब ब-सबब खिंचाव और सिमटाव सुरत के, जो उसकी धारें नीचे की तरफ़ जारी थीं, वे सूखने लगीं और सिमटती चलीं ॥

रोटी नित भूखी तरसे। पानी अब प्यासा तड़पे ॥ ७ ॥

अर्थ—और तब रोटी यानी माया और उसके पदार्थ जो कि सुरत की धार से चैतन्य थे, अब उस चैतन्यता के के लिए भूखे तड़पते हैं। और इसी तरह पानी यानी मन, सुरत की चैतन्य धार के वास्ते, प्यासा तड़पने लगा ॥

सोते पर खाट बिछाई। जगते को सुषुपति आई ॥ ८ ॥

अर्थ—जो परमार्थ की तरफ़ से ग़ाफ़िल यानी सोता रहा, वह माया के तले यानी षट चक्कर में दबा और फँसा रहा। और जो परमार्थ की कमाई, चेत कर और होशि-

यारी के साथ, करने लगा, वह पिंड और संसार की तरफ़ से बे-ख़बर होता गया ॥

बंझा नित जन्ती हारी । जन्ती पुन बांझ कहाई ॥ ९ ॥

अर्थ—बंझा यानी माया से (जबकि सुरत उसके घेर में उतर कर आई), अनेक प्रकार की रचना और अनेक पदार्थ पैदा हुए। और जब सुरत यानी जन्ती और असल कर्ता उलट कर पिंड और ब्रह्मांड के परे पहुँची, तब सब रचना सिमट गई, और वह अकेली अपने घर की तरफ़ सिधारी ॥

घोड़े पर पृथ्वी दौड़ी । ऊँटन चढ़ गगना फोड़ी ॥ १० ॥

अर्थ—जब कि सुरत, जो पिंड में फँस कर देह यानी पृथ्वी रूप हो रही थी, उलट कर ब्रह्मांड की तरफ़ चली, तो वह मन रूपी घोड़े पर सवार होकर दौड़ी, और तब ही ऊँट यानी स्वाँसा अथवा प्राण को उलट कर और गगन को फोड़ कर चढ़ गई ॥

राधास्वामी मौज दिखाई । सुरत अब शब्द लगाई ॥११॥

अर्थ—खुलासा इस शब्द का यह है कि राधास्वामी ने अपनी मेहर और मौज से, सुरत को चढ़ा कर, शब्द से मिला दिया ॥

सार बचन छन्द बन्द, भाग दूसरा, बचन ४१, शब्द २२ के अर्थ नीचे लिखे जाते हैं

सुनरी सखी इक मर्म जनाऊँ । नई बात अब तोहि सुनाऊँ ॥ १ ॥

अर्थ—हे सखी, तुझको एक भेद जनाता हूँ और नई बात सुनाता हूँ ॥

दिन बिच नाचत चन्द दिखाऊँ । रैन उदय दिनकर दरशाऊँ ॥ २ ॥

अर्थ—सुन्न में जहाँ कि सदा रोशनी रहती है यानी दिन रहता है, चन्द्रमा स्वरूप नज़र आता है, और त्रिकुटी के मक़ाम पर जहाँ से कि माया यानी अन्धेरा और रात शुरू हुई, सूरज रूप रोशनी देता है ॥

अग्नि पूतरी जल से सिंचाऊँ । जल की रम्भा अग्नि नचाऊँ ॥ ३ ॥

अर्थ—सहसदलकँवल में जोति स्वरूप अमृत की जल-धार से (जो ऊंचे से आती है) रोशन है, और अमृत धार के संग जो धुन सहसदलकंवल से नीचे उतरी, वह अग्नि यानी माया के घेर में केल कर रही है ॥

गगन माहिं पृथ्वी चलवाऊँ । पृथ्वी मध्य गगन लखवाऊँ ॥ ४ ॥

अर्थ—आकाश में पृथ्वी यानी देह की वासी सुरत को चढ़ाऊँ, और पृथ्वी यानी देही में गगन यानी आकाश का लखाओ करूं ॥

व्यौम चलाय पवन थमवाऊँ । सिंह मार और स्यार जिताऊँ ॥ ५ ॥

अर्थ—व्यौम यानी मन-आकाश जब सुरत की चढ़ाई के वक़्त ऊपर को सिमटे, तब प्राण यानी पवन धीमी होकर ठहर जाती है । स्यार जो जीव से मुराद है, वह गगन में चढ़ कर, सिंह यानी काल को जीत लेता है ॥

दुर्बल से बलवान गिराऊँ । त्रिकुटी चढ़ यह धूम मचाऊँ ॥ ६ ॥

अर्थ—दुर्बल उसी जीव या सुरत से मतलब है, जो पिंड में उतर कर निहायत बे-ताक़त हो जाती है, और

त्रिकुटी में चढ़.कर काल बली को पछाड़ कर ज़ेर कर लेती है ॥

कागन झुन्ड हंस करवाऊँ । लूकन को अब सूर दिखाऊँ ॥ ७ ॥

अर्थ–अनेक जीवों को, जो पिंड में, निपट काग यानी मन रूप होकर बर्त रहे हैं, दसवें द्वार में पहुंचा कर, हंस स्वरूप बनाऊं। और निपट संसारी, जो उल्लू के मुआफ़िक़ मालिक की तरफ़ से अन्धे और अजान हो रहे हैं, त्रिकुटी मेंपहुंचा कर सूरज-ब्रह्म का दर्शन कराऊं ॥

उलटी बात सभी कह गाऊँ । ऐसे समरथ राधास्वामी पाऊँ ॥ ८ ॥

अर्थ—यह सब उलटी बातें समर्थ सतगुरु राधास्वामी दयाल की दया से सही करके दिखाई जा सकती हैं ॥

———

बचन इक्यावनवाँ

राधास्वामी मत का अभ्यास और उसका फल

१–जो कोई सच्चे शौक़ के साथ, राधास्वामी मत में इस मतलब से शामिल हुआ कि अपने जीव का सच्चा कल्याण यानी उद्धार करावे, और देह के दुख-सुख और जन्म-मरण के दुख से बच कर, परम और अमर आनन्द को प्राप्त होवे, उसको चाहिए कि शब्द-भेदी और शब्द-अभ्यासी गुरु ढूंढ़ कर, सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल और उनके सतसंग की सच्ची शरण लेवे, और शब्द मार्ग की तरकीब दरियाफ़्त कर के, नियम के साथ, हर रोज़, दो बार या तीन बार या चार बार अभ्यास करे, तो उसको ज़रूर थोड़ा-बहुत रस मिलता रहेगा, और उसके मन और

सुरत, दिन-दिन पिंड देश से, आहिस्ता-आहिस्ता अलेहदा होकर आकाश में और उसके परे घट में चढ़ेंगे। और एक दिन पिंड और ब्रह्मांड यानी माया की हद के पार पहुँच कर, सुरत, निर्माया देश यानी संतों के धाम में प्राप्त होकर अमर और अजर आनन्द पावेगी, और तब जन्म-मरण और देह के दुख-सुख से सच्ची रिहाई हो जावेगी।

२—सुरत-शब्द मार्ग के अभ्यासी को घबराहट के साथ जल्दी करनी या निराश होकर अभ्यास छोड़ देना, किसी सूरत में मुनासिब नहीं है॥

३—देखो, दुनिया में जिसको जिस काम का सच्चा शौक़ होता है वह उसको थोड़ा या बहुत दुरुस्ती के साथ अंजाम देता है, और कोई विघ्न या ज़ाहिरी तक़लीफ़, उसको, उस काम के करने से रोक नहीं सकती। बल्कि जो मेहनत और तवज्जह वह उस काम के करने में करता है, उस मेहनत में उसको रस आता है और वह ना-गवार नहीं मालूम होती। और चाहे जिस क़दर उस काम के पूरे होने में देर लगे, वह जल्दी के सबब से निराश होकर उसको नहीं छोड़ता है। इसी तरह परमार्थ के अभ्यासियों को मज़बूती के साथ अपना अभ्यास जारी रखना चाहिये, और जो प्रतीत के साथ, कि एक दिन दया ज़रूर होगी, इस काम को प्रीति के संग करे जावेगा, तो वह कभी ख़ाली नहीं रहेगा, और राधास्वामी दयाल उसको जब-तब, जैसा-जैसा मुनासिब समझेंगे, दया करके, अंतर में रस और आनंद बख़्शते जावेंगे॥

४–जो लड़का कि मद्रसे में पढ़ने को भेजा जाता है उसको फ़ौरन पढ़ने का रस नहीं आता है। पर जो वह, खौफ़ और दबाओ के साथ पढ़ना, कुछ अर्से तक हर रोज़ जारी रखता है, तो रफ़्ता-रफ़्ता उसको मज़ा आता जाता है, और फिर इस क़दर शौक़ बढ़ जाता है कि जो कोई उसको रोके तो वह अपने काम को नहीं छोड़ता है, बल्कि दिन दिन उसको बढ़ाता जाता है। इसी तरह परमार्थ में भी, पहिले, खौफ़, चौरासी और नर्कों के दुख और जन्म-मरण और देह की तकलीफ़ों का, और शौक़, अपने जीव के कल्याण और मालिक से मिलने का, चाहिए। जो यह शौक़ और खौफ़ सच्चा होगा (चाहे शुरू में थोड़ा होवे) तो जरूर परमार्थी कार्रवाई यानी अभ्यास हर रोज़ बनता जावेगा, और उसमें थोड़ा-बहुत रस भी आवेगा। और जिस क़दर दुरुस्ती से अभ्यास बनेगा यानी दुनिया के खयालात छोड़ कर, मन और सुरत, वक़्त ध्यान के, स्वरूप में, और वक़्त भजन के, शब्द में लगेंगे, उसी क़दर दिन-दिन रस बढ़ता जावेगा और अभ्यास करने की आदत मज़बूत होती जावेगी॥

५—जैसे वर्ष-छः महीने के बालक को किसी खाने-पीने की चीज़ का स्वाद ख़ास कर मालूम नहीं होता है, पर हर रोज़ या अक्सर ख़ास-ख़ास चीज़ों के खाने-पीने से उसको अनेक स्वाद की ख़बर पड़ती जाती है, और फिर स्वभाव और आदत के मुआफ़िक़ उन्हीं चीज़ों का खाना उसको पसन्द आता है, इसी तरह, शुरू अभ्यास में, सब जीव, बालकों के मुआफ़िक़, अभ्यास के रस और आनन्द

की तमीज़ कम कर सकते हैं। और यहाँ उसका सबब यह है कि पुरानी आदत के मुआफ़िक़ दुनिया के ख़यालात उनको घेरे रहते हैं। पर, जब कोई दिन इसी तरह अभ्यास जारी रक्खेंगे और दुनिया के ख़यालों को हटाते रहेंगे, तो कुछ-कुछ रस आने लगेगा, और फिर आदत के मुआफ़िक़ उन को, बग़ैर हर रोज़ अभ्यास करने के, कल नहीं पड़ेगी। तो इस क़द्र अर्से तक कि आदत मज़बूत और क़ायम हो जावे, हर एक परमार्थी को, चाहे तेज़ या सुस्त शौक़ वाला होवे, अपना अभ्यास जारी रखना ज़रूर और मुनासिब है॥

६—मालूम होवे कि जैसे कुल रचना और हर चीज़ में तीन दर्जे हैं–उत्तम, मध्यम, और निष्कृट, यानी आला औसत, और अदना, ऐसे ही आदमियों में भी तीन दर्जे या क़िस्में हैं। जो उत्तम लोग हैं, वे, बचन जल्द समझते और पकड़ते हैं और सन्देह और भ्रम भी उनके जल्द दूर हो जाते हैं, और जब वे करनी यानी अभ्यास में लगते हैं, तब उनको अन्तर में उसका फ़ायदा भी जल्द नज़र आता है, क्योंकि वे जो काम करते हैं, उसमें सर्व-अंग करके लगते हैं॥

७—और जो मध्यम जीव हैं, उनको यह सब बातें थोड़े अर्से में हासिल होंगी॥

८—और जो निष्कृट जीव हैं, उनकी समझ भी बहुत मंद और सुस्त होगी और संशय-भ्रम भी उनके मन में अक्सर पैदा होते रहेंगे, और वक़्त अभ्यास के, दुनिया के

ख़याल भी उनको बहुत सतावेंगे । इस सबब से, शुरू में, भजन और ध्यान का रस भी उनको कभी २ और बहुत कम आवेगा । पर, जो वे नियम से हर रोज़ अभ्यास करे जावेंगे तो थोड़े अर्से में आदत पड़ जावेगी, और जो विघ्न या मुश्किलें, मन के लगने और रस के मिलने में, पेश आवेंगी, वे भी हलकी और दूर होती जावेंगी ॥

९–मालूम होवे कि बिना सुरत और मन के अन्तर में लगने और ठहरने के, रस और आनन्द नहीं आ सकता है । इस वास्ते परमार्थी अभ्यासी को मुनासिब है कि इस बात का ख़याल और होशियारी ज़्यादा रक्खे कि मन, दुनिया के गुनावन और ख़यालों में, वक़्त अभ्यास के, न पड़ जावे, नहीं तो अभ्यास का रस नहीं आवेगा ॥

१०–ग़ौर करने की बात है कि जब कोई शख़्स खाना खाता है और कई तरह की चीज़ें खाने में मौजूद हैं, तो उस वक़्त, जो उसका मन किसी और फ़िक्र और ख़्याल में लग जावे, तो किसी चीज़ का स्वाद उसको मालूम नहीं होता है यानी हर एक चीज़ को खाया भी और फिर ख़बर न पड़ी कि क्या चीज़ खाई और उसका कैसा स्वाद था ॥

११–फिर संतों का परमार्थी अभ्यास, जो कि निहायत नाज़ुक है, बग़ैर मन और सुरत के लगाये, कैसे रसीला लग सकता है ? जैसे कि खाते वक़्त हर एक चीज़ ज़बान से मिली, पर तवज्जह दूसरी तरफ़ होने से, स्वाद नहीं मालूम हुआ, इसी तरह से अभ्यासी के मन और सुरत भी मक़ाम के स्वरूप तक पहुँचे या शब्द की धार

से भी थोड़े-बहुत मिले, पर तवज्जह दूसरी तरफ़ यानी दुनिया के ख़्यालों में लगी होने से, भजन और ध्यान का रस बिलकुल नहीं मालूम हो सकता है। इस वास्ते, यह बात ज़रूर है कि तवज्जह की सम्हाल, अभ्यास के वक़्त रक्खी जावे यानी स्वरूप और शब्द में ध्यान लगा रहे तो रस आवेगा, नहीं तो ख़ाली उठना पड़ेगा और मन दुखी होवेगा ॥

१२—बाज़े लोग जल्दबाज़ी करते हैं कि हमको जल्द अभ्यास का रस आवे और नहीं तो निराश होकर मत पर या अभ्यास के फ़ायदे पर या गुरु पर तान मारते हैं, और अपनी हालत और लियाक़त के दर्जे की परख नहीं करते हैं और न अपनी कसर दूर करते हैं। फिर कैसे रस आवे ? वे लोग यह चाहा करते हैं कि राधास्वामी दयाल अपनी दया से उनका कारज बनावें, यानी उनके मन और इन्द्रियों को मोड़ कर परमार्थ में लगावें, और अभ्यास के वक़्त उनके अंतर में तरंगें न उठने देवें, और अपनी मेहर और दया से आप उनको अंतर में रस देवें। लेकिन जो युक्ति कि उनको, वास्ते हटाने और विघ्नों के, और लगाने मन के, बताई जाती है, उसमें तवज्जह कम करते हैं। और उनका अमल-दरामद भी दुरुस्ती से नहीं करते। फिर ऐसे लोगों की दुआ कैसे जल्द मंजूर हो सकती है ? पर, जो वे अभ्यास नियम से करे जावेंगे, और कुछ मन और इन्द्रियों की भी सम्हाल रक्खेंगे, और जो नई युक्ति उनको समझाई जावे, थोड़ी-बहुत उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करेंगे,

तो थोड़े अर्से में ज़रूर उनको भजन का रस मिलने लगेगा ॥

१३—ज़ाहिर है कि कुल कार्रवाई अन्तर और बाहर की, सुरत और मन की धार के वसीले से होती है, और जिस तरफ़ कि आदमी सच्ची तवज्जह करे, उसी तरफ़ को धार उठ कर रवाँ होती है, और जैसी कार्रवाई होवे, करती है। फिर जो कोई परमार्थी, अभ्यास के वक़्त, तवज्जह अपनी अंतर में ऊपर की तरफ़, जैसे कि संतों ने फ़रमाया है, स्वरूप में या शब्द में या किसी मक़ाम पर, जमावेगा, तो ज़रूर उस तरफ़ मन और सुरत और दृष्टि की धार उठ कर रवाँ होगी। और जब तक कि दूसरा ख़्याल पैदा न होगा यानी दूसरी धार नहीं जारी होगी, तब तक, उस धार का मुख, ऊँचे की तरफ़, अंतर में रहेगा और इस खिंचाओ और तनाओ का ज़रूर थोड़ा-बहुत रस आवेगा, क्योंकि ऊँचा देश, ब-निस्बत उस मक़ाम के, जहाँ कि जाग्रत में सुरत की बैठक है, ज़्यादा रसीला और आनन्द का स्थान है, जैसे कि इस कड़ी में कहा है:—
उलट घट झाँको गुरु प्यारी। नैन दोऊ तानो हो न्यारी ॥

१४—आदमी की तवज्जह के साथ ही कि वह जिस तरफ़ को होवे, सुरत और मन और नज़र की धार, उसी तरफ़ को रवाँ होती है ॥

१५—इस वास्ते, राधास्वामी मत के किसी परमार्थी अभ्यासी को, किसी हालत में भी, निराश नहीं होना चाहिये

बल्कि होशियारी के साथ अभ्यास में, मन और इन्द्रियाँ को, थोड़ा-बहुत रोक कर रखना चाहिये। और जो कोई कसर होवे, उसके दूर करने का यत्न दरियाफ़्त करके, उसके मुआफ़िक़ कार्रवाई करना चाहिये। थोड़े से अर्से में हालत बदलनी शुरू होगी। और जब मन और इन्द्रियाँ थोड़े-बहुत रस के आदी हो जावेंगे, तब वे आप ही अभ्यास के मुक़र्रर किये हुए वक़्त पर, उस तरफ़ को तवज्जह के साथ लगेंगे और सब विघ्न आहिस्ता-आहिस्ता दूर होते जावेंगे और आनन्द और रस मिलता जावेगा।

बचन बावनवाँ

राधास्वामी मत के अभ्यासियों को, दुनियादारों, और दूसरे मतों के लोगों से, और ख़ास कर वाचक ज्ञानियों और सूफ़ियों से, किस तरह बर्ताओ करना चाहिये

१—दुनियादारों के साथ बर्ताओ—राधास्वामी मत के अभ्यासियों को दुनियादारों और बिरादरी के लोगों से ज़रूरत के मुवाफ़िक़ वर्तना चाहिए, यानी गहरी प्रीति के साथ इनसे जल्द २ मिलना और बहुत देर इनके साथ बैठना नहीं चाहिये। सिर्फ़ इस क़दर कि जितनी ज़रूरत है, इनसे मिलना और बातचीत करना मुनासिब है। और ज़्यादा बर्ताओ इनसे नहीं चाहिये, नहीं तो इनके स्वभाव और आदत और संसारी चाहें, परमार्थी के मन में असर

करेंगी, और उसके अभ्यास में ख़लल और हर्ज डालेंगी, और उसके प्रेम और भक्ति के क़ायदे और रीति के वर्ताओ में भी कसर पड़ेगी ।

२—बाहरमुखी पूजा वालों के साथ बर्ताओ–जो पिछले संतों के मत या और किसी मत के लोग बाहरमुखी मूर्त या किसी निशान या ग्रन्थ या पोथी या किताब की पूजा करते हैं, और सिवाय पोथी या ग्रन्थ या किताब के पढ़ने और सुनने के, दूसरा काम नहीं करते, और ग्रन्थ या पोथी या किताब के अंतरी अर्थ और घट के भेद से बिल्कुल वाक़िफ़ नहीं हैं और न उनकी तलाश और तह-क़ीक़ात करते हैं, बल्कि जो कोई उनको भेद की बात सुनावे तो मन और चित्त से सुनना भी नहीं चाहते हैं—ऐसे लोग सब टेकी हैं । उनसे भी राधास्वामी मत वालों को बचना चाहिये, यानी उनके साथ मेल और दोस्ती मुनासिब नहीं हैं, क्योंकि ये लोग भी संसारी हैं और मालिक का खोज और प्यार इनके मन में बिलकुल नहीं है । और जो कोई उनसे मेल-मिलाप रक्खेगा, उसको भी संसार की तरफ़ झुकावेंगे और सच्चे परमार्थ की तरफ़ से, अपने मुवाफ़िक़, बे-परवाह कर देंगे, और तरह २ के शक, सच्चे परमार्थी के मन में, डालने को तैयार होवेंगे, और कहेंगे कि संसार में रहकर जिस किसी ने मन और इन्द्रियों के भोगों को नहीं भोगा या भोगना नहीं चाहता है, वह नादान और अभागी है, या यह कि परमार्थ के ख़्याली सुखों के वास्ते, दुनिया के मौजूदा मज़ों और रसों

को छोड़ देना, बिल्कुल बे-समझी की बात है ॥

३—कर्मकांडी और हठयोग के करनेवालों के साथ बर्ताओ, जो कि अनेक तरह के देही के दुख और कष्ट भोगते हैं—कर्मकांडी लोग अनेक तरह के सुखों की आशा, इस लोक की या स्वर्ग या बैकुण्ठ लोक की, बाँध कर, बाहर-मुखी कर्म और करतूत करते हैं, और हठयोगी जो कोई-कोई अंग की सफ़ाई के वास्ते या बीमारी दूर करने को या कोई सिद्धि हासिल करने के लिए काष्टा और तकलीफ़ उठाते हैं, इन सब से भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों को दूर रहना चाहिए। और किसी हालत में भी इन से परमार्थी मेल और मिलाप रखना मुनासिब नहीं। बल्कि जो संसारी भाव से, इन से रिश्तेदारी या पिछली मुहब्बत या संग होवे, तो उस को आहिस्ता २ कम करना और सिर्फ़ ज़रूरत के मुआफ़िक़ मिलना और बातचीत, व्यवहार की, करना चाहिए। परमार्थी बात इन लोगों से करना ज़रूर नहीं, क्योंकि इनके मन में सच्चे मालिक का भाव और प्यार नहीं है और न उसकी खोज और तलाश है। यह तो संसार के या स्वर्ग और बैकुण्ठ के भोग-विलास के चाहने वाले हैं या दुनिया में तमाशा और खेल दिखा कर, धन और मान-बड़ाई के पैदा करने वाले हैं। सच्चे परमार्थ की चाह इनके मन में बिल्कुल नहीं है और न पैदा हो सकती है। इस वास्ते जो बचन, बिलास या मेहनत इनके समझाने के वास्ते की जावेगी, वह मुफ़्त बरबाद जावेगी और फिर क़ायल होकर ये योग अपनी नादानी से संत मत की निन्दा और हँसी करेंगे ॥

४–अन्तरी सुमिरन और ध्यानवालों के साथ बर्ताओ–ये लोग अन्तर में नाफ़ या हृदय के स्थान पर सुमिरन और ध्यान करते हैं, या नाम की ज़र्ब लगाते हैं, या नाम की धुन नीचे से उठा कर दोनों आँखों या दोनों भवों के मध्य तक पहुँचाते हैं, या दाँये-बाँये सुर से पूरक-रेचक करके गायत्री मंत्र या दूसरे नामों का, कुम्भक के साथ, सुमिरन करते हैं। मगर इस अभ्यास में ठहराओ दो, तीन या चार मिनट से ज़्यादा नहीं होता। और जो कि ध्यान करते हैं, उसमें भी स्वरूप या स्थान का भेद सही-सही नहीं जानते। इस वास्ते, इन सबका अभ्यास इन्हीं स्थानों में, पिंड के अन्दर, ख़त्म हो जाता है ॥

५—ये सब लोग अपने तईं अन्तरमुख अभ्यासी समझते हैं। और इस क़दर सही है कि इनके अभ्यास से सफ़ाई और कुछ रस अन्तरी हासिल होता है, पर संत-मत में ये भी बाहरमुखी शुमार किये जाते हैं, क्योंकि इनका अभ्यास नीचे के घट यानी छः चक्रों की हद में है। इन लोगों से भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों को परमार्थी मेल-मिलाप रखना जरूर नहीं है ॥

३—मुद्राओं का साधन करने वालों से बर्ताओ–इन लोगों में से दृष्टि और शब्द का साधन करने वाले बेहतर हैं, पर उनका भी अभ्यास सहसदलकँवल के नीचे ख़त्म हो जाता है और आइन्दा का भेद और पता उनको मालूम नहीं है, और इन्होंने शब्द और स्वरूप का अभ्यास, सिर्फ़ मन के एकाग्र करने और ठहराने के वास्ते जारी रक्खा है,

चढ़ाई बिल्कुल नहीं है, और न शब्द और न शब्द का भेद बयान करते हैं, और न उसकी खोज और तलाश है। इस वास्ते, इन लोगों के साथ भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों का मेल नहीं हो सकता। ये सब लोग थोड़ा २ आनन्द पाकर और कुछ प्रकाश देख कर तृप्त हो गये, और ब-सबब न मिलने पूरे गुरु के, इतने ही में इस क़दर अहंकार इनको हो जाता है कि इससे ज़्यादा का भेद सुनना, समझना और उसके मुआफ़िक़ करनी करना नहीं चाहते। और जो ऊंचे का भेद, मुआफ़िक़ संत मत, उनको सुनाया जावे, तो हंसी करने को तैयार हो जाते हैं॥

७—अष्टांग योग के अभ्यासी—अष्टांग योग या प्राणायाम करने वाले, इस वक़्त में बहुत कम होंगे, बल्कि ऐसा मालूम होता है कि इस योग का पूरा अभ्यासी इस वक़्त में बिल्कुल नाथाव है। जिस किसी ने यह अभ्यास शुरू भी किया, तो कोई न कोई विघ्न या ख़तरे के सबब से उसका अभ्यास बन्द हो गया, या सख़्त बीमार पड़ गया। जो कोई पूरा योगी मिले, तो वह संत मत की महिमा जल्द समझ कर उसके अभ्यास में शामिल हो जावेगा। पर जो शुरू करने वाले इस अभ्यास के मिलते हैं और उन्होंने प्राणायाम के वसीले से कोई चक्र भी नहीं बेधे, वे निहायत दर्जे के अहंकारी हो जाते हैं, और इस सबब से राधास्वामी मत के अभ्यासियों से उनका मेल किसी तरह नहीं हो सकता॥

८—बाम-मार्गी और भैरवी चक्र वाले— इस फ़िरक़े में अभ्यासी बहुत कमयाब हैं। खान-पान में सब के सब भूल रहे हैं। और जो जो ज़ाहिरी रस्में इन्होंने जारी करी हैं, वे भी इस समय में निहायत नाक़िस फल देने वाली हैं, क्योंकि महात्मा और समर्थ अभ्यासी की गत और है, और जीवों की गत और। जो जीव महात्मा पुरुषों की चाल की, बग़ैर उनका अभ्यास किये, यानी बग़ैर मन और इन्द्रियों को बस किये, नक़ल करेंगे, वे धोखा खावेंगे, और माया के घेर में पड़े रहेंगे। पस यही हाल इस मत के लोगों का सुना जाता है। संत मत के अभ्यासियों को इनसे हमेशा दूर रहना, और इनके संग से क़तई परहेज़ करना चाहिए। और इनसे किसी किस्म की चर्चा या परमार्थी बचन-बिलास करना नहीं चाहिये, क्योंकि ये संतों के बचन को हरगिज़ नहीं मानेंगे। इनकी कार्रवाई बहुत नीचे के दर्जे की है और सच्चे परमार्थ, यानी जीव के उद्धार का फ़िक्र इस फ़िरक़े में बहुत कम, बल्कि बिल्कुल मालूम नहीं होता है॥

९—वाचक ज्ञानी और सूफ़ी—इन लोगों से भी राधास्वामी मत के अभ्यासियों को मेल रखना मुनासिब नहीं है, क्योंकि इन साहबों ने सच्चे और पूरे ज्ञानियों के बचन पढकर, और अपनी एकता ब्रह्म के साथ, बुद्धि से मान कर, अभ्यास छोड़ दिया। और जो कोई इनको मिलता है, उसको यकताई के बचन सुना कर और समझा कर

ब्रह्म बना देते हैं और चौरासी और नर्कों के डर से आज़ाद कर देते हैं ॥

१०—जो कोई संत-मत के मुआफ़िक़, इनसे अभ्यास की निस्बत चर्चा करे और दरियाफ़्त करे कि तुमको ब्रह्म पद की प्राप्ति किस तरह हुई, जो जवाब देते हैं कि जाना-आना कहाँ है, ब्रह्म सब जगह व्यापक है, और देह और जिस क़दर नाम रूप की रचना नज़र आती है, सब मिथ्या और भ्रम है, सिर्फ़ इसी क़दर काम करना है कि ज्ञान के बचन को अच्छी तरह से समझ कर, अपने तईं ब्रह्म मानना, और इसी निश्चय को पकाना और मज़बूत करना, और मन और इन्द्रिय और देही और सब पदार्थों जो जड़ समझना ।

११—इन सब से ब्रह्म न्यारा है और निर्लेप है और पाप और पुण्य उसको नहीं लगते या छू सकते हैं, और जब ऐसा निश्चय पुख़्ता हो गया, तब विदेह मुक्ति का अधिकारी हो गया । यानी जब देह छूटेगी, तब अपने निश्चय के मुआफ़िक़ जीव चैतन्य, देही वग़ैरा के बन्धन से छूट कर, व्यापक चैतन्य से मिल जावेगा ॥

१२—अब समझना चाहिए कि जो चैतन्य इस मलीन माया के देश में व्यापक है, वह सदा देहियों के बन्धन में गिरफ़्तार रहता है, और जब तक कि देहियों के ख़ोल यानी आवरण अभ्यास करके दूर न किये जावेंगे, तब तक आज़ाद यानी विदेह नहीं हो सकता है ॥

१३—वेदांत शास्त्र में दो दर्जे माया के लिखे हैं— एक शुद्ध सत्य प्रधान, दूसरा मलीन सत्य प्रधान। और शुद्ध ब्रह्म अथवा पार-ब्रह्म पद इन दोनों दर्जों के परे कहा है। और वास्ते जुदा होने माया के देश से, योग-अभ्यास की हिदायत की है कि अपने प्राणों को छः चक्रों के पार चढ़ा कर, ब्रह्म का दर्शन करे, और फिर वहाँ से पार-ब्रह्म पद में पहुँचे, तब सच्ची मुक्ति हासिल होगी और तब ही शुद्ध-ब्रह्म के साथ एकता होगी। उस वक़्त जो बचन कि ये वाचक ज्ञानी, पोथियों को पढ़ पढ़ के, कहते हैं, सच्चे दरसेंगे, यानी सच्चा योगी अपने आपको वहाँ ब्रह्म स्वरूप देखेगा और वही ब्रह्म तमाम नीचे के देश यानी रचना में व्यापक नज़र आवेगा। और जब तक कि कोई अभ्यास करके ब्रह्म और पार-ब्रह्म पद तक न पहुँचे, तब तक एक-ताई के बचन कहना सिर्फ़ ज़बानी जमा-ख़र्च है। असल में उनकी हालत नहीं बदलती, यानी अज्ञानियों के मुआफ़िक़, ये वाचक ज्ञानी भी अविद्या के घेर में रह कर मन और इन्द्रियों के कहे में चल रहे हैं, और ब्रह्म या आत्मा का आनन्द एक ज़र्रा भी इनको प्राप्त नहीं होता, और न ये अपने रूप को देख सकते हैं और न ब्रह्म का दर्शन पाते हैं॥

१४—सिवाय इसके, वेदान्त शास्त्र में यह भी लिखा है कि तीन शरीर हैं, यानी स्थूल, सूक्ष्म और कारण, और इन्हीं तीनों शरीरों के अन्तरगत पाँच कोश हैं। और जीव, चैतन्य की बैठक पाँचवें कोश--अन्नमई—में है, जो कि सब

से नीचे और बाहर है। और वे पाँचों कोश ये हैं– अन्नमई कोश यानी स्थूल शरीर, प्राण मई कोश, मनोमई कोश और ज्ञान मई कोश, ये तीनों कोश सूक्ष्म शरीर में दाख़िल हैं, और आनन्दमई कोश कारण शरीर कहलाता है, और चौथा जीव साक्षी यानी तुरिया पद है। कारण को प्राग, और सूक्ष्म को तेजस और स्थूल को विश्व कहते हैं ॥

१५––अब ख़्याल करो कि पाँच कोश यानी तीनों शरीरों के अन्दर मनुष्य का निज रूप यानी आत्मा पोशीदा है। और जब तक इन इन कोशों या शरीरों यानी ग़िलाफ़ों को, अभ्यास करके, नहीं छेदेगा, तब तक अपने स्वरूप यानी आत्मा का दर्शन नहीं पावेगा। ये सब ग़िलाफ़ पिंड में हैं, जो कि मलीन माया का देश है और जिसकी हद छः चक्रों में है। इसी तरह ब्रह्मांड में, जहाँ कि शुद्ध माया है, ब्रह्म के भी चार स्वरूप हैं–एक वैराट यानी माया सबल ब्रह्म जो माया से मिल कर रचना कर रहा है, दूसरा हिरण्य-गर्भ जो माया सबल को मदद दे रहा है और जहाँ से सूक्ष्म मसाला रचना का प्रकट हुआ, और तीसरा अव्याकृत जहाँ से बीज रूप माया ज़ाहिर हुई, और चौथा शुद्ध ब्रह्म है। जब इन सब ग़िलाफ़ों को, अभ्यास की मदद से तोड़ कर, पार जावे, तब शुद्ध ब्रह्म से मेला होवे और वहाँ जो बचन सच्चे ज्ञानियों और योगेश्वरों ने एकताई के कहे हैं, सब सही और दुरुस्त मालूम पड़ेंगे। और कोई बिना अभ्यास किये हुए, नीचे के देश में, चाहे शुद्ध माया

होवे चाहे मलीन, उन बचनों को सुन कर और पढ़ कर, अपने तईं शुद्ध ब्रह्म स्वरूप मानता है, तो यह बड़ी ग़लती है। और देखने में आता है कि ऐसे कहने वालों की हालत बिलकुल नहीं बदलती। यानी उनके स्वभाव और आदत, मुआफ़िक़ संसारी जीवों के हैं, और मन और इन्द्रियाँ उन पर सवार रहते हैं, और मेलों और तमाशों और शहरों और क़सबों में उनको नचाते रहते हैं। क्या ब्रह्म या आत्मा-आनन्द में इस क़दर गति भी नहीं कि जो एक स्थान पर ठहर कर अपने अन्तर में रस लेकर शान्ति हासिल करें ?

१६—यह बात भी ग़ौर करने के लायक़ है कि जो चैतन्य सर्व-व्यापक है, वह सब जगह माया के खोलों में, चाहे वे भारी हैं या हल्के, ढका हुआ है। और इस में जो मलीन माया का स्थान है, वह व्यापक चैतन्य बहुत भारी खोलों में छिप रहा है, और इस सबब से उसकी ताक़त भी गुप्त है। अब, जब तक कि विशेष चैतन्य की, जिस पर कि खोल हलके हैं, मदद न पहुँचे, तब तक यह व्यापक चैतन्य कुछ कारँवाई नहीं कर सकता है, और अचेत पड़ा हुआ है। इसका नमूना इसी लोक में जाहिर है, यानी जो व्यापक चैतन्य इस लोक में मौजूद है, वह आप कुछ काम नहीं कर सकता, जब तक कि विशेष सूरज के चैतन्य की धार, किरनियों के वसीले से, इस अचेत चैतन्य को ताक़त देकर न जगावे। इसी तरह ऊपर और नीचे के लोकों का हाल समझ लो। महा-विशेष चैतन्य वह है कि जो बिल्कुल बे-पर्दा

और बे-ख़ोल है, जिसको निर्मल और निर्माया चैतन्य कहना चाहिए। ऐसे देश में पहुँच कर, जीव-चैतन्य जिसको संत, सुरत कहते हैं, ग़िलाफ़ों यानी देहियों के बंधन से छूट कर, अपने अमर और पूर्ण आनन्द स्वरूप को प्राप्त होगा। और जन्म-मरण और काल-क्लेश और देहियों के साथ के दुख-सुख के फंदे सब कट जावेंगे और बिल्कुल दूर हो जावेंगे ।।

१७–संत उस रास्ते का, और एक से एक विशेष चैतन्य के मंडलों का, और फिर महा विशेष चैतन्य के धुर मंडल तक का भेद बताते हैं, और फ़रमाते हैं कि जिस डोरी या धार पर कि सुरत-चैतन्य उतरी है (क्योंकि कुल्ल रचना धारों की है, चाहे वे धारें सूक्ष्म हैं या स्थूल और चाहे वे नज़र आवें या नहीं) उसी डोरी या धार को पकड़ कर अपने निज देश में उलट कर जा सकती है। और मालूम होवे कि महा विशेष चैतन्य के मंडल के नीचे जिस क़दर रचना कि निर्माया और शुद्ध माया और मलीन माया के देश में हुई, वह उस धार ने करी जो महा विशेष चैतन्य के मंडल के नीचे की तरफ़ से निकली, और फिर किसी क़दर फ़ासले पर ठहरती हुई, और मंडल बाँध कर रचना करती हुई चली आई है। फिर वही धार, जिसको सुरत कहते हैं, और पिंड में उतर कर जाग्रत अवस्था में जिसका नेत्रों में वासा है, संतों की दया से, उनकी जुगत यानी सुरत-शब्द योग की कमाई करके अपने निज देश में, पिंड और ब्रह्मांड के परे उलट कर, जा सकती है, और वहाँ

पहुँच कर जन्म-मरण और दुख-सुख से सच्ची रिहाई हासिल कर सकती है। इसी का नाम सच्चा उद्धार है। और जब तक कोई भेद लेकर और अभ्यास करके, घर की तरफ़ नहीं उलटेगा, तब तक ख़ाली बातें बनाने से उद्धार होना किसी सूरत में मुमकिन नहीं है। इसी सबब से वाचक ज्ञानी और सूफ़ी ख़ाली रह गये और पार-ब्रह्म पद तक, कि जो ब्रह्मांड में है, न पहुँचे। और संतों का देश तो एक दर्जे उसके ऊपर रहा, जिसका भेद और पता योगी और योगेश्वर ज्ञानियों को नहीं मिला। उसका हाल सिर्फ़ संतों ने प्रकट किया। और जो कोई उनकी शरण लेकर चलना चाहे, वह उनकी दया से, उनकी युक्ति की कमाई करके, पहुँच सकता है॥